अध्ययन सामग्री
(सीमित संचलन)

भारत का संविधान

प्रवीण प्रकाश अम्बष्ठ
उप निदेशक
स.प्र.प्र.सं.

द्वारा
संकलित एवं
30.04.2013 तक अद्यतन किया गया ।

अनुक्रमणिका

अध्याय सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	परिचय	
2.	प्रस्तावना	
3.	संघ एवं उसके प्रदेश	
4.	नागरिकता	
5.	मूलभूत अधिकार	
6.	राज्य नीति के निदेषात्मक सिद्धांत	
7.	संघीय कार्यपालिका	
8.	संसद	
9.	राज्य कार्यपालिका	
10.	केन्द्र–राज्य संबंध	
11.	वित्त आयोग	
12.	संघ शासित राज्य/प्रदेश	
13.	न्यायपालिका	
14.	प्रशासनिक अधिकरण	
15.	पंचायती राज	
16.	निर्वाचकीय प्रणाली/पद्धति	
17.	आपातकालीन प्रावधान	

भारत का संविधान

परिचय

1.1.1 संविधान की सार्थकता

संविधान लोगों के विष्वास एवं अभिलाषाओं का एक ऐसा दस्तावेज है जिसकी एक विषेष कानूनी पवित्रता है। यह देष का मूलभूत कानून है। विष्व भर में विभिन्न प्रकार की सरकारों का प्रचलन है। राष्ट्र के संविधान में निहित चिंतन दर्षन से, वहां की सरकार किस प्रकार की है, इसका निर्धारत होता है। संविधानवाद का विचार सरकारी ढांचे के कार्य करने के अर्थोपाय सुझाता है कि किस प्रकार शक्ति का प्रयोग करने के साथ–साथ व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं अधिकार को सुनिश्चित् किया जाता है। वैसे भी, यह सरकारी संस्थान समाज द्वारा सुचारू रूप से कार्य करने के लिए आवश्यक हैं। परन्तु राज्य की शक्ति निरपेक्ष नहीं होनी चाहिए।

संविधानवाद, राज्य को संगठित करने के सिद्धांतों का निर्धारण करके, व्यक्तिगत अधिकार के साथ, राज्य की शक्ति के मिलन का मार्ग सुझाता है। संविधान राज्य के दृष्टिकोण को रेखांकित करता है और एक अत्यन्त महत्वपूर्ण दस्तावेज़ होता है। यह लोगों की राज्य से, आषाओं एवं विश्वास की अभिव्यक्ति और वचनबद्धता है जिसे वे भविष्य में पूरी करना चाहते हैं। संविधान, नागरिकों के कतिपय अधिकारों के साथ–साथ उनके कर्तव्यों को भी परिभाषित करना सुनिष्चित करता है। उदाहरण के लिए भारतीय संविधान का भाग–III

1. क्या संविधान स्थिर है?

i. संविधान भविष्य में, दार्षनिक दृष्टिकोण एवं संगठनात्मक ढांचे की प्रक्रिया का विस्तार होता है। परन्तु राज्य को, समाज में परिवर्तनषील, सामाजिक, आर्थिक

एवं राजनैतिक चुनौतियों को झेलना होता है। सभी वर्तमान संविधान, संषोधनों के माध्यम से परिवर्तनों की प्रक्रियाओं को उपलब्ध कराते हैं। अतः संविधान स्थिर नहीं है।

2. लिखित एवं अलिखित संविधान

i. दस्तावेज़ के रूप में संविधान होने के, सचेतन निर्णय के परिणाम स्वरूप, अधिकांष देषों में संविधान का अस्तित्व आया। यह ''लिखित'' संविधान होते हैं जो संस्थागत व्यवस्थाओं एवं प्रक्रियाओं को परिभाषित करते हैं। परन्तु ब्रिटिष संविधान की संस्थागत प्रथाएं एवं कानून शताब्दियों में क्रमिक तौर पर विकसित हुए हैं। ब्रिटिष संविधान एक अलिखित संविधान है। इसमें वे संवैधानिक परंपराएं समाहित हैं जो कि संस्थानों की कार्यप्रणाली के लिए संसद के अधिनियमों एवं विधानों के रूप में अन्य दस्तावेज़ों के रूप में उदाहरणों के तौर पर कार्य करती हैं। यहां संसद सर्वोच्च होती है, न कि 'लिखित' संविधान वाले राष्ट्रों की तरह, जहां संविधान ही सर्वोच्च माना जाता है।

ii. ब्रिटेन में, संसद द्वारा पारित किये गये कानून के माध्यम से संविधान में कोई परिवर्तन करना संभव है। यह संविधान के अत्यन्त लचीले होने का एक उदाहरण है।

3. वर्तमान संविधान की रचना

i. भारतीय संविधान, भारत की संविधान परिषद् द्वारा तैयार किया गया तथा अपनाया गया था। 1946 के मंत्रिमंडल मिषन प्लान के अनुसार, संविधान परिषद् की स्थापना 1946, नवंबर माह में की गई थी। यह संप्रभु निकाय नहीं

था, क्योंकि इसे मंत्रिमंडल मिषन द्वारा बांधी गई सीमाओं के भीतर कार्य करना था। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के देषांतरणी के बाद, भारत को स्वतंत्रता प्रदान की गई, संविधान परिषद् का संप्रभु स्वरूप स्थापित हुआ था।

ii. संविधान परिषद् के सदस्य, प्रति एक दषलक्ष जनसंख्या पर एक सदस्य के अनुपात में प्रांतीय विधानपरिष्दों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुने गए थे। संविधान परिषद् में कुल 389 सदस्य थे जिनमें से 296 प्रांतीय विधान परिषदों के माध्यम से चुने गए थे तथा बाकी राजसी–रजवाड़े वाले राज्यों से नामित किए गए थे। संविधान परिषद् की प्रथम बैठक 9 दिसम्बर, 1946 को आयोजित की गई थी जिसमें डॉ0 सच्चिदानंद सिन्हा को अंतरिम अध्यक्ष चुना गया था बाद में, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद को परिषद् का अध्यक्ष चुना गया था।

i. संविधान को तैयार करने के लिए संविधान परिषद् द्वारा 13 महत्वपूर्ण समितियां गठित की गई थीं। प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ0 बी.आर.अम्बेडकर थे तथा संविधान का प्रथम प्रारूप जनवरी, 1948 में प्रकाषित किया गया था। संविधान परिषद् ने प्रारूप पर विचार–विमर्ष किया तथा 26 नवम्बर 1949 को संविधान को अंतिम तौर पर अपनाया गया। संविधान को 26 जनवरी 1950 से लागू किया गया।

4. भारतीय संविधान की प्रकृति

i. यद्यपि संविधान परिषद् की प्रारूप समिति के सदस्य भारतीय संविधान को संघीय (फैडरल) कहते थे, संविधान में यह बात स्वतः कहीं भी स्पष्टता से उद्धृत नहीं की गई है, कुछ विधिवेत्ता इस विषय पर विवाद करते हैं। पष्चिम के विद्वान प्रायः संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान को सर्वोत्तम संविधान अथवा संघीय संविधान की कसौटी के रूप में मानते हैं तथा उन संविधानों को

नहीं मानते जो कि 'फेडरेषन' अर्थात् 'संघ' की नामावली के सदृष नहीं हैं। परन्तु अब, इस सोच में वृद्धि हो रही है कि ऐसे वर्गीकरण भ्रमक हैं तथा सामान्यतः इस बात पर सहमति जताई जा रही है कि यह प्रश्न कि राज्य एकात्मक है अथवा संघीय, यह बात कई अंषों में से एक है तथा क्या ये संघ हैं अथवा नहीं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि इसमें कितनी संघीय विषेषताएं शामिल हैं।

1.6 संघ क्या है?

1.6.1 यह प्रदेषों अथवा राज्यों का समूह है जो कि केन्द्र सरकार अथवा संघ सरकार के साथ संयुक्त होता है। संघ की एक सुस्थापित द्विविध राज्य व्यवस्था अथवा द्विविध प्रकार की सरकार होती है, अर्थात् शासन व्यवस्था के क्षेत्र संघ एवं राज्य सरकारों के बीच बंटे होते हैं, जोकि एक दूसरे के अधीनस्थ नहीं होते अपितु, अपने आवंटित क्षेत्रों के भीतर स्वतंत्र होते हैं। इसलिए स्वतंत्र प्रभारियों के पारस्परिक समन्वय का अस्तित्व, संघीय सिद्धांत का आधार है।

1.6.2 संघ की आवष्यक विशिष्टताएं

क) **<u>शक्तियों का विभाजनः</u>** संघ के संविधान का एक आवश्यक लक्षण हे केन्द्र सरकार एवं संघ की विभिन्न इकाईयों की सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन।

ख) **<u>संविधान की सर्वोच्चताः</u>** संघीय एवं राज्य सरकारों द्वारा संविधान का अनुपालन करना बाध्यता है। केन्द्र सरकार के साथ–साथ राज्य सरकारें अपनी शक्तियां संविधान से प्राप्त करती हैं। यह भी कि दोनों सरकारों में से किसी को भी अन्य द्वारा उपयोग की जा रही राजकीय प्रतिष्ठा एवं शक्तियों से संबंधित संविधान के प्रावधानों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

ग) **<u>लिखित संविधानः</u>** संविधान आवश्यक तौर पर लिखित रूप में होना चाहिए। यह मूलतः केन्द्र एवं राज्य सरकारों के बीच शक्तियों के स्पष्टतः निर्धारण करने के साथ–साथ संविधान की सर्वोच्चता के बारे में किसी प्रकार के संदेह को दूर करने के लिए आवश्यक है।

घ) **<u>संविधान की कठोरताः</u>** यह लक्षण संविधान की सर्वोच्चता का उप सिद्धांत है। कठोरता से तात्पर्य संविधान की संशोधन न करने की प्रक्रिया से नहीं है, अपितु सरल अर्थों में संविधान में संशोधन करने की शक्ति से है, विशेषकर, जो संशोधन संघीय एवं राज्य सरकारों की प्रतिष्ठा एवं शक्तियों को नियंत्रित करते हैं, या तो संघीय तक अथवा राज्य सरकार तक ही विशेष रूप से सीमित नहीं रहने चाहिए।

ड) **<u>न्यायलयों का प्राधिकारः</u>** एक ऐसा प्राधिकरण अवश्य होना चाहिए जो संघीय तथा राज्य सरकारों को एक दूसरे के शक्तियों पर अधिक्रमण करने से बचा सके। दूसरे, एक अंतिम एक सर्वोच्च न्यायलय होना चाहिए जो फैडरल अथवा राज्य सरकारों पर निर्भर नहीं होना चाहिए तथा संवैधानिक मामलों से संबंधित विषयों में उसका निर्णय अंतिम होना चाहिए।

1.7 भारतीय परिस्थिति

1.7.1 भारतीय संविधान के प्रावधानों के अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि इसके द्वारा आरंभ की गई राजनैतिक पद्धति, उक्त कथित सभी संघीय राज्य व्यवस्था की आवश्यक बातों को समाहित करती है।

1.7.2 भारतीय संविधान, केन्द्र में संघीय शासन तथा बाह्य परिधि पर राज्यों द्वारा शासन की द्विविधि राज्य व्यवस्था स्थापित करता है जिसमें प्रत्येक को संविधान द्वारा स्पष्ट रूप से निर्धारित शक्तियों को प्रयोग करने का अधिकार दिया गया है। यह संविधान लिखित रूप में है तथा सर्वोच्च है जिसमें संघ अथवा राज्य विधानमंडलों की शक्तियों के आधिक्य को अधिकारातीत रूप में, अधिनियम घोषित करने की पर्याप्त शक्ति दी गई ह जोकि केशवानन्द भारती बनाम केरल सरकार, 1973 मामले में, सर्वोच्च न्यायालय के 13 न्यायधीशों की संवैधानिक पीठ द्वारा दिए गए ऐतिहासिक निर्णय के बाद दृढ़ता से लागू किया गया है। इसके अलावा, राज्यों की सहभागिता के बिना (अनु0 368) केन्द्र तथा राज्यों की शक्तियों की स्थिति में कोई परिवर्तन करके संशोधन करना संभव नहीं है। अंततः सर्वोच्च न्यायालय, भारत के संविधान की व्याख्या करने के साथ–साथ केन्द्र राज्य संबंधों से उत्पन्न, किसी भी विवाद का निर्णय करने के लिए शीर्ष निकाय है।

1.7.3 यद्यपि भारतीय संविधान में सभी पांच आवश्यक विशिष्टताएं मौजूद हैं, कुछ परिस्थितियों में, संविधान में, राज्यों के मामलों में केन्द्र को हस्तक्षेप करने की शक्तियां दी गई हैं, जिससे कि राज्यों को अधीनस्थ स्थिति में ला दिया गया है। यह संघीय (फैडरल) सिद्धान्तो का उल्लंघन है।

1.7.4 **भारतीय संविधान के प्रावधान जो कि कठोर संघीय विषिष्टता वाले नहीं है:** संघवाद की सीमा का प्रश्न एक अलग मामला है और इस संबंध में भारत के संविधान में कुछ विशिष्ट लक्षण हैं जो केन्द्र के प्रति पूर्वाग्रही हैं। समग्र तौर पर देश की राजनैतिक प्रणाली, परिस्थितियों के परिणाम, जोकि एक देश

से दूसरे देश से भिन्न होते हैं। भारतीय संविधान में निम्नलिखित प्रावधान हैं जोकि पक्के संघीय (फैडरल) नहीं हैः

क) संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ऑस्ट्रेलिया में, राज्यों के अपने संविधान हैं जो कि संघीय (फैडरल) संविधान के रूप में बराबर के मजबूत हैं, परन्तु भारत में, सदस्य राज्य के लिए कोई अलग संविधान नहीं है।

ख) भारत में एक समान तथा एकल नागरिकता के सिद्धन्त का पालन किया जाता है परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ऑस्ट्रेलिया में दोहरी नागरिकता नियम का अनुपालन किया जाता है।

ग) संयुक्त राज्य अमेरिका में संघीय सरकार के लिए यह संभव नहीं है कि वे राज्य के क्षेत्राधिकार वाले क्षेत्र में एक तरफा परिवर्तन कर दे परन्तु भारत में, संसद ऐसा कर सकती है वह भी संबंधित राज्य की सहमति लिए बिना। वस्तुतः भारत में राज्यों को प्रादेशिक अखंडता का अधिकार नहीं है।

घ) यदि राष्ट्रपति, अनुच्छेद 352 के अंतर्गत समग्र भारत में अथवा उसके किसी एक भाग में राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा करते हैं, तो संसद इस विषय में कानून बना सकती है जबकि यह विषय राज्य सरकार की सूची में विशेष रूप से शामिल है। संसद, राज्यों को, उनके प्रभार के भीतर प्रयोग करने वाले मामलों में, उनके कार्यपालक प्राधिकारी को, किस प्रकार नियमों का पालन निष्पादित करना है, इस संबंध में निर्देष दे सकती है। वित्तीय प्रावधानों को भी निलंबित किया जा सकता है। वस्तुतः भारतीय संघ एकात्मक किस्म का है। लेकिन ऐसी स्थिति अन्य संघीय संविधानों में संभव नहीं है।

ड) भारतीय संविधान की VII अनुसूची में विधायी विषयों का विभाजन दिया गया है जिन पर संसद एवं राज्य विधान मंडल तीन सूचियों के अन्तर्गत कानून को अधिनियमित कर सकते हैं वे हैं, संघ, राज्य तथा समवर्ती। संघीय सूची में 99 विषय हैं जिन पर संसद का अनन्य नियंत्रण है, जबकि राज्य सूची में केवल 66 विषय शामिल है जिन पर राज्य विधान मंडलों का नियंत्रण है। और तो और सभी अत्यन्त महत्पूर्ण विषय, सिवाय केवल एक के अर्थात् राज्य कर,

संघीय सूची के अन्तर्गत आते है। आगे, समवर्ती विषयों पर संघ एवं राज्य के कानूनों के बीच विवाद होने की स्थिति में, राज्य को ऐसे विरोधाभास के लिए संघ के लिए मार्ग प्रशस्त करना चाहिए। इससे भी आगे, अवशिष्ट शक्ति अर्थात् तीन सूचियों में से किसी एक के अर्न्तगत न आने वाले विषयों पर कानून अधिनियमन की शक्ति केन्द्र के पास है (कनाडा मॉडल) न कि राज्यों के पास जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ऑस्ट्रेलिया में होता है।

च) संसद के पास संघीय सूची (अनुसूची VII) के 99 विषयों पर कानून बनाने का अनन्य प्राधिकार है, परन्तु राज्यों के पास, राज्य सूची के अर्न्तगत आने वाले विषयों पर कानून बनाने का अनन्य अधिकार नहीं है। कुछ परिस्थितियों एवं हालातों के अर्न्तगत संसद राज्य सूची के विषयों पर कानून बना सकती है। नीचे ऐसी पांच परिस्थितियां उद्धृत की गई हैः–

(i) अनुच्छेद 249 के अर्न्तगत, यदि राज्यसभा 2/3 बहमुत से कम न हो, तो ऐसे मत से प्रस्ताव पारित करके, किसी राज्य से संबंधित विषय पर, संसद को इस आधार पर, कि यह राष्ट्रीय हित में आवश्यक है अथवा समीचीन है, कानून बनाने के लिए प्राधिकृत कर सकती है। ऐसे कानूनों को केवल एक वर्ष तक के लिए लागू किया जा सकता है और अनगिनत बार बढ़ाया जा सकता है, परन्तु उस कानून को एक बार में, एक वर्ष से अधिक लागू नहीं रखा जाएगा।

(ii) यदि अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा होती है तो संसद के अनुच्छेद 250 के अन्तर्गत, राज्य सूची के सभी 66 विषयों के संबंध में कानून बनाने का अधिकार स्वतः ही प्राप्त हो जाएगा अर्थात् राज्य सूची समवर्ती सूची में परिवर्तित हो जाएगी।

(iii) अनुच्छेद 252 के अन्तर्गत, यदि दो अथवा अधिक राज्यों के विधान मंडल, संसद से किसी विषय विशेष पर कानून बनाने का अनुरोध करते हैं तो, संसद ऐसा कर सकती है। लेकिन, ऐसे विधान केवल संसद द्वारा ही संशोधित अथवा निरस्त किए जा सकते हैं।

(iv) अनुच्छेद 253, के अन्तर्गत, संसद उस राज्य सूची के विषय पर भी कानून बना सकती है, जिसमें भारत एक पक्षकार के रूप में है तथा जहां अन्तरराष्ट्रीय करारों का अनुपालन करना हो । राज्य इसका विरोध नहीं कर सकते। इसका एक उदाहरण 1 से 5 दिसम्बर 1992 को बीजिंग में एशिया एवं प्रशांत क्षेत्र के लिए आर्थिक एवं सामाजिक आयोग द्वारा आयोजित एशिया एवं प्रशांत क्षेत्र में अपंग व्यक्तियों की पूर्ण भागीदारी एवं समानता पर घोषणापत्र को प्रभावी रूप से लागू कराने हेतु अपंगता अधिनियम, 1995 (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण एवं पूर्ण भागीदारी) है।

(v) अनुच्छेद 356, के अन्तर्गत यदि किसी राज्य में राष्ट्रपति का शासन लगाया जाता है तो उस राज्य के विधान मंडल की शक्ति संसद के प्राधिकार के अन्तर्गत अथवा उसके द्वारा प्रयोग करने योग्य हो जाती है। इससे संसद को राज्य सूची में शामिल किसी मामले पर नियम/कानून बनाने की पूर्ण शक्तियां प्राप्त हो जाती है।

च) अनुच्छेद 155, के अन्तर्गत राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और राज्यपाल राज्य विधानमंडल के लिए उत्तरदायी नहीं है। वस्तुतः अप्रत्यक्ष तौर पर, केन्द्र, राज्यपाल की नियुक्ति करने के द्वारा राज्य पर नियंत्रण कर अपना वर्चस्व रखता है।

छ) यदि अनुच्छेद 360, के अर्न्तगत राष्ट्रपति द्वारा वित्तीय आपातकाल की घोषणा, इस आधार पर कि भारत अथवा इसकी किन्हीं इकाईयों की वित्तीय स्थिरता अथवा साख जोखिम में है, तो वित्तीय आपातकाल की अवधि के दौरान, राज्य विधानमंडल द्वारा पारित धन विधेयक, केन्द्र के नियंत्रण में भी होंगे।

ज) अनुच्छेद 256 के अन्तर्गत केन्द्र, राज्यों को प्रषासनिक निर्देष दे सकता है जिन्हें राज्य सरकार को मानना बाध्य होगा। निर्देषों के साथ, संविधान, ऐसे अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए, केन्द्र द्वारा अपनाए जाने हेतु उपायों को भी उपलब्ध कराता है।

झ) अनुच्छेद 312 के अन्तर्गत, अखिल भारतीय सेवा के अधिकारी भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय वन सेवा (वन) केन्द्र द्वारा नियुक्त किए जाते हैं परन्तु उन पर नियंत्रण एवं वेतन भुगतान राज्य द्वारा किया जाता है लेकिन यदि अधिकारी द्वारा कोई अनियमितता बरती जाती है अथवा कदाचार किया जाता हैं तो राज्य कोई अनुशासनिक कार्यवाई नहीं कर सकता, सिवाय उसे निलंबित करने के।

ञ) उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति, राष्ट्रपति द्वारा, राज्यपाल के परामर्श से, अनुच्छेद 217 के अर्न्तगत की जाती है और राज्य की इसमें कोई भूमिका नहीं होती।

1.7.5 वस्तुतः संघ की और कुछ प्रावधानों के पूर्वाग्रही होने के अलावा, भारत का संविधान, सामान्य तौर पर फैडरल प्रणाली के रूप में कार्य करने के लिए तैयार किया गया है। परन्तु युद्ध तथा अन्य आपातकालों के समय में, यह एकात्मक रूप में कार्य करने वाला बनाया गया है। संयुक्त राज्य अमेरिका एवं ऑस्ट्रेलिया के फैडरल संविधान, जो कि फैडरलवाद के सख्त ढांचे में कसे गए हैं वे अपने स्वरूप को नहीं बदल सकते। वे कभी भी अपने संविधान के प्रावधानों के अनुसार एकात्मक रूप में कार्य करने वाले नहीं हो सकते। परन्तु भारतीय संविधान, परिसंघ का लचीला रूप है– एक अपनी ही किस्म का परिसंघ। इसलिए ही भारतीय परिसंघ को अद्वितीय कहा जाता है।

परिसंघ तथा महासंघ के बीच अंतर

1. परिसंघ में दो अथवा अधिक इकाईयों के बीच निकट साहचर्य होता है, जबकि महासंघ में दो अथवा अधिक राज्यों के बीच बंधन मुक्त साहचर्य होता है।
2. परिसंघ में इकाईयों को सामान्यतः संबंध विच्छेद का अधिकार नहीं होता (जैसा कि भारत तथा पाकिस्तान में है) परन्तु महासंघ के मामले में राज्यों को हमेशा संबंध विच्छेद का अधिकार होता है (उदाहरणतः सी.आई.एस., पूर्व में यू एस एस आर)।

3. परिसंघ एक प्रभुतासंपन्न निकाय है जबकि महासंघ में इकाईयां अथवा राज्य प्रभुतासंपन्न होते हैं।

4. परिसंघ में, परिसंघ एवं उसकी जनता के बीच कानूनी संबंध होते है, परन्तु महासंघ में, महासंघ की संबंधित इकाईयों के नागरिक ही जनता होते हैं।

1. <u>हमारे संविधान के विभिन्न स्रोत</u>

i. सबसे अधिक गहन प्रभाव, भारत सरकार अधिनियम, 1935 द्वारा लिया गया था। फैडरल योजना, राज्यपाल का कार्यालय, फैडरल न्यायपालिका की शक्तियां, आपात्कालीन शक्तियां, आदि इस अधिनियम से ली गई थी।

ii. कानून बनाने की प्रक्रिया, कानून लागू करना एकल नागरिकता की प्रणाली के अलावा, शासन करने की संसदीय प्रणाली का प्रतिमान, निश्चित तौर पर ब्रिटिश संसदीय प्रणाली से प्रभावित है।

iii. संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान से न्यायपालिका की स्वतंत्रता, न्यायिक समीक्षा, मौलिक अधिकार तथा उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाने के नियमों की प्रेरणा ली गई है।

iv. नीतिनिर्देशक सिद्धांत, राष्ट्रपति के चयन की प्रणाली, तथा राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा के सदस्यों का नामांकन करने का स्रोत आइरिश संविधान था।

v. मजबूत केन्द्र होने के साथ परिसंघ का विचार तथा केन्द्र के पास अवशिष्ट शक्तियां होने की प्रेरणा, कनाडा के संविधान से ली गई है।

vi. आपातकाल के दौरान मौलिक अधिकारों को निलंबित करने संबंधी प्रावधानों का स्रोत जर्मनी का वेमर संविधान था।

vii. समवर्ती सूची का विचार ऑस्ट्रेलिया के संविधान से लिया गया था।

i. हमारे संविधान के मूलभूत निर्माताओं ने विश्व के सभी जाने–माने संविधानों की कार्यप्रणाली के अनुभव संचित किए थे और वे उन संविधानों की कार्य प्रणाली में आने वाली कठिनाइयों से अवगत थे। अतः अन्य संविधानों से कुछ प्रावधानों को शामिल करने के अलावा इन संविधानों की कार्य प्रणाली में अनुभव में आई कुछ कठिनाईयों से बचने के लिए अन्य कई प्रावधानों को शामिल किया था। यह महत्वपूर्ण कारण है जिससे हमारा संविधान विश्व के लिखित सभी संविधानों में सबसे अधिक बड़ा एवं अत्यन्त व्यापक स्तर पर तैयार किया गया है।

5. प्रस्तावना

हम, भारत के लोग, सत्यनिष्ठा से संप्रभु (समाजवादी धर्मनिरपेक्ष) लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में भारत के गठन का संकल्प लेते हैं तथा इसके सभी नागरिकों के हितों को सुरक्षित करने हेतु

न्यायः सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक

स्वतंत्रताः विचारों की, अभिव्यक्ति की, विश्वास की, आस्था की तथा धार्मिकता की

रहन सहन तथा अवसर की समानता तथा उसे सभी के मध्य में बढ़ावा देना व्यक्ति के सम्मान की आस्था वाले भाईचारे तथा राष्ट्र की एकता (तथा अखंडता) के लिए आश्वासन की, हमारी संघटक सभा में, नवम्बर 1949 के 26वें दिवस पर एतद्द्वारा इस संविधान को अपनाया, अधिनियमित एवं स्वयं को प्रदान किया जाता है।

1. प्रस्तावना तैयार करना

i. संविधान की प्रस्तावना तैयार करना उन मुख्य उद्देश्यों को व्यवस्थित करना था जिन्हें संघटक सभा प्राप्त करने की इच्छुक थी। पंडित नेहरू द्वारा प्रस्तावित 'वस्तुपरक संकल्प' तथा संघटक सभा द्वारा पारित, अंततः भारत के संविधान की

प्रस्तावना बन गया। जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने परखा, प्रस्तावना, संविधान के निर्माताओं के मस्तिष्क को सुलझाने की कुंजी है। यह भारत के लोगों की अभिलाषाओं एवं आदर्शों को भी समाहित करता है।

ii. संविधान अधिनियम, 1976 (42वां संशोधन) द्वारा प्रस्तावना में संशोधन करके, प्रस्तावना में समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं अखंडता शब्दों को जोड़ा गया था। प्रस्तावना की प्रकृति गैर–वाद योग्य है, जैसा कि राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांत हैं और उन्हें कानून की अदालत में लागू नहीं किया जा सकता। यह संविधान के प्रावधानों के अन्तर्गत ना तो राज्य के तीन अंगों को पर्याप्त शक्ति (निशचित एवं वास्तविक शक्ति) उपलब्ध करा सकती है और न ही उनकी शक्तियों को सीमित कर सकती है। प्रस्तावना संविधान के विशिष्ट प्रावधानों को अध्यारोह नहीं कर सकते। दो के बीच किसी विवाद के मामले में, बाद वाला प्रचलित होगा। अतः इसकी भूमिका बहुत संक्षिप्त है। जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा परखा गया है, प्रस्तावना, संविधान के प्रावधानों के चारों ओर फैली अस्पष्टताओं को हटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

2.2 **<u>क्या प्रस्तावना संविधान का एक भाग हैः</u>**

2.2.1 उच्चतम न्यायालय ने केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य (1973) मामलें में, अपने 1960 वाले पहले के निर्णय को नामंजूर किया था और यह स्पष्ट किया था कि यह संविधान का एक भाग है और संविधान के अन्य प्रावधानों के अनुसार संसद द्वारा संशोधन किए जाने की शक्ति के अन्तर्गत आता, बशर्ते संविधान के मूल ढांचे में दिए गए प्रस्तावना स्परूप को नष्ट नहीं किया जाए। लेकिन, यह संविधान का आवश्यक भाग नहीं है।

2.2.2 <u>संविधान का मूल ढांचाः</u> संविधान के मूल ढांचे की संकल्पना संविधान में कहीं भी दृष्टिगत नहीं होती। यह सिद्धात एक न्यायिक अभिनव परिवर्तन है तथा इसका यह स्वरूप उच्चतम न्यायालय द्वारा केशवानन्द भारती बनाम केरल सरकार मामले(1973) में दिया गया था। यह सिद्धान्त सरल शब्दों में यह बताता

है कि संसद द्वारा पारित कोई कानून, जो संविधान के मूलभूत ढांचे को नष्ट करता है, उसके नष्ट करने की सीमा तक अमान्य माना जाएगा। उच्चतम न्यायालय का मूल उद्देश्य इसकी सर्वोच्चता को बनाए रखने के साथ–साथ राज्य के तीन अंगों के बीच संतुलन बनाए रखना था। लेकिन, न्यायालय ने संविधान के मूल ढॉचे की संक्षिप्त शर्तों को परिभाषित नहीं किया था। परन्तु बहुत से निर्णयों में, उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया था कि संविधान का मूल ढॉचा क्या है। निम्नलिखित संकल्पनाएं मूलभूत ढांचे के कुछ उदाहरण हैं:–

संविधान की सर्वोच्चता, सरकार का गणतंत्रीय एवं लोकतांत्रिक रूप, फैडरलवाद, संविधान की धर्मनिरपेक्ष विशेषता, राज्य के तीन अंगों के बीच शक्तियों का विभाजन, न्यायिक समीक्षा, देश की संप्रभुता आदि। इस शक्ति का प्रयोग करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने अनु0 368 के संशोधित प्रवाधान (42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा अधिसूचित) को इस आधार पर अमान्य किया कि यह उच्चतम न्यायालय की 'न्यायिक समीक्षा' की शक्ति से वंचित करता है जो कि संविधान का मूल ढांचा है। (1980 में मिनर्वा मिल्स मामला तथा 1981 में वामनराव बनाम भारत की संघ सरकार,)

2.3 प्रस्तावना का उद्देश्य

2.3.1 प्रस्तावना यह घोषणा करता है कि यह भारत के लोग हैं जिन्होंने संविधान को स्वयं विनियमित, अपनाया तथा स्वयं को ही सौंपा है। वस्तुतः संप्रभुता अन्ततः लोगों के साथ ही होती है। यह लोगों के आदर्शों तथा अभिलाषाओं को भी प्रकट करता है जिनकी उपलब्धि होनी आवश्यक है। जहां तक संविधान में उद्घोषित आदर्श, संप्रभुता, समाजवाद धर्मनिरपेक्षता, लोकतांत्रिक गणराज्य उपलब्ध हो गए हैं, अभिलाषाएं, जिनमें, न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं भाईचारा शामिल है, उन्हें अभी प्राप्त करना शेष है। आदर्शों के माध्यम से ही अभिलाषाओं की पूर्ति होगी।

2.3.2 'संप्रभु' शब्द इस बात पर बल देता है कि भारत से बाहर ऐसा कोई प्राधिकारी नहीं है जिस पर यह राज्य किसी भी रूप में निर्भर है। 'समाजवाद' शब्द से संविधान में तात्पर्य है कि समाज के सामाजिक ढांचे की उपलब्धि लोकतांत्रिक माध्यम से प्राप्त करनी है। यह भी कि भारत के 'धर्म निरपेक्ष' होने से यह तात्पर्य नहीं है कि भारत एक अधार्मिक अथवा धर्मविहीन राज्य है अथवा धर्म विरूद्ध है, अपितु सरल शब्दों में यह तात्पर्य है कि यह राज्य धार्मिक नहीं है तथा भारत के प्राचीन सिद्धांत ''सर्व धर्म संभाव'' का अनुपालन करता है। इसका यह भी तात्पर्य है कि यह राज्य धर्म के आधार पर किसी भी प्रकार से नागरिकों के बीच किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करेगा। यह राज्य धर्म को व्यक्ति का निजी कार्य मानता है और यह भी मानता है कि व्यक्ति धर्म में विश्वास करे अथवा ना करे यह उसका व्यक्तिगत अधिकार है। लेकिन, भारत पश्चिमी देशों की तरह, उनकी भांति, यहां के सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण की विशिष्टता के कारण, धर्मनिरपेक्ष नहीं है।

2.3.3 'लोकतांत्रिक' शब्द से तात्पर्य है केवल लोगों द्वारा चुने गए शासकों को ही सरकार चलाने का प्राधिकार है। भारत 'लोक तांत्रिक जन प्रतिनिधि' व्यवस्था का अनुगमन करता है जहां संसद सदस्य तथा विधान सभा सदस्य सीधे ही जनता द्वारा चुने जाते हैं। लोकतंत्र की पंचायतों एवं नगरपालिकाओं के माध्यम से (73वां एवं 74वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992) मूलभूत स्तर पर ले जाने के प्रयास किए जा रहे हैं। लेकिन प्रस्तावना में केवल राजनैतिक लोकतंत्र की ही बात नहीं की गई है अपितु सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्रों की भी परिकल्पना की गई है।

2.3.4 'गणराज्य'/'गणतंत्र' से तात्पर्य है कि भारत में वंशानुगत शासकों के प्रचलन का अस्तित्व नहीं है तथा राज्य के सभी प्राधिकारीगण प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा चुने जाते हैं।

2.4 **<u>संविधान के उद्देश्य, जैसा कि प्रस्तावना में बताया गया है:</u>**

2.4.1 प्रस्तावना में कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक को निम्नलिखित सुनिश्चित किए जाने का उद्देश्य हैं:–

(i) न्याय–सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक

(ii) स्वतंत्रता– विचारों की, अभिव्यक्ति की, विश्वास की, आस्था एवं पूजा करने की

(iii)समानता–जीवनस्तर, अवसर की

तथा उन सभी में वृद्धि करना–भाईचारे की वृद्धि करना प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की अखंडता का आश्वासन

2.4.2 न्याय के संबंध में, एक चीज़ स्पष्ट है कि भारतीय संविधान राजनैतिक न्याय को सामाजिक एवं आर्थिक न्याय को प्राप्त करने के साधन के रूप में देखता है जिससे कि राज्य की प्रकृति अधिकाधिक कल्याणकारी बन सके। भारत में राजनैतिक न्याय की गारंटी, बिना किसी शैक्षिक अर्हता के सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार है। जहां सामाजिक न्याय किसी मानद उपाधि को हटाकर (अनु0–18) तथा अस्पृश्यता को उन्मूलित करके, सुनिश्चित किया गया है (अनु0 17), आर्थिक न्याय की प्राथमिक गारंटी, निदेशक सिद्धान्तों के माध्यम से सुनिश्चित् की गई है।

2.4.3 स्वतंत्रता, मुक्त समाज का एक आवश्यक लक्षण है जो किसी व्यक्ति के बौद्धिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के पूर्ण विकास में सहायक होता है। अनु0 19 के अर्न्तगत, भारतीय संविधान, व्यक्ति को 6 लोकतांत्रिक स्वतंत्रताओं तथा अनुच्छेदों, 25–28 के अन्तर्गत, धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार की गारंटी प्रदान करता है।

2.4.4. स्वतंत्रता के फलों को तब तक भली भांति महसूस नहीं किया जा सकता जब तक जीवन स्तर एवं अवसरों की समानता न हो। हमारा संविधान मानद उपाधियों को हटाकर (अनु018) तथा अस्पृश्यता का उन्मूलन करके (अनु0 15) सभी सार्वजनिक स्थानों को सभी के लिए मुक्त करके केवल धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, अथवा जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव बरतने को अवैध मानता है।

लेकिन, समाज के अब तक उपेक्षित वर्गों को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाने के लिए संसद ने अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों अन्य पिछड़े वर्गों के लाभ के लिए (बचावकारी भेदभाव) कुछ कानून पारित किए हैं।

2.4.5 संविधान में, भाईचारे को, जनता के सभी वर्गों के बीच व्याप्त, भाईचारे के अर्थ में प्रतिष्ठापित किया है। इसे जनता के सभी वर्गों के लिए समान मूलभूत तथा अन्य अधिकारों, की गारंटी के साथ राज्य को धर्म निरपेक्ष बनाकर प्राप्त करना होगा। यद्यपि, भाई चारे की भावना धीरे–धीरे विकसित होने की प्रक्रिया है और 42वें संशोधन द्वारा 'अखंण्डता' शब्द जोड़ा गया था, जिससे इसे एक व्यापक अर्थ दिया गया।

3. संघ एवं इसके शासित प्रदेश

3.1.1 अनुच्छेद 1 के अनुसार 'इंडिया, जोकि भारत है,' राज्यों का संघ होगा'।

3.1.2 यद्यपि हमारे संविधान ढॉचागत रूप से फैडरल है, प्रारूप समिति ने 'संघ' शब्द का प्रयोग किया है क्योंकि भारत का संघ 'इकाईयों' के बीच करार के परिणाम के रूप में तैयार नहीं किया गया जैसा कि अमेरिका का फैडरेशन है। इसके अलावा, भारत के राज्यों को फैडरेशन से अलग होने का अधिकार नहीं है। फैडरेशन, एक संघ है क्योंकि यह अविनाशी है। अमेरिकनों ने यह स्थापित करने के लिए, कि राज्यों को अलग होने का कोई अधिकार नहीं है तथा उनका फैडरेशन अविनाशी है, सिविल युद्ध करना पड़ा था। प्रारूप समिति ने यह विचार किया कि यह अधिक बेहतर है कि आरंभ में इस बात को स्पष्ट कर दिया जाए, बजाए इसके कि इस पर अटकलें लगाई जाए।

3.1.3 'भारत के संघ' अभिव्यक्ति को 'भारत के प्रदेश' अभिव्यक्ति से भेद करने की आवश्यकता है। भारत के संघ में केवल राज्य शामिल होते हैं जोकि केन्द्र के साथ फैडरल शक्तियों की भागीदारी करते हैं। भारत के प्रदेश में समूचा क्षेत्र शामिल होता है जिस पर देश की संप्रभुता लागू होती है। राज्यों के अलावा, देश के प्रदेशों में, भारत द्वारा अधिग्रहीत अन्य क्षेत्र तथा संघ शासित क्षेत्र शामिल होते हैं।

3.2 नए राज्यों का गठन

3.2.1 अनु0 3 में वर्तमान राज्यों के प्रदेशों में से नए राज्य के गठन के बारे में बताया गया है। अनु0 3 के अर्न्तगत, संसद किसी राज्य के क्षेत्र को घटा अथवा बढ़ा सकती है अथवा सीमा क्षेत्रों में परिवर्तन कर सकती है अथवा किसी राज्य के नाम में परिवर्तन कर सकती है। भारतीय संविधान, संसद को राज्यों के क्षेत्रों अथवा नामों आदि में, राज्यों की सहमति अथवा समर्थन लिए बिना परिवर्तन करने की शक्तियां देता है।

3.2.2 वस्तुतः यह स्पष्ट है कि राज्य का अस्तित्व केन्द्र की स्वेच्छा पर निर्भर करता है। अनु0 2,3 तथा 4, भारतीय संविधान के लचीलेपन को दर्शाते हैं। केवल बहुमत होने तथा सामान्य विधायी प्रक्रिया द्वारा संसद, नए राज्य का गठन कर सकती है अथवा वर्तमान राज्यों की सीमाओं में बदलाव कर सकती है और इस प्रकार भारत के राज्नैतिक नक्शे में परिवर्तन कर सकती है।

3.3 नया राज्य बनाना

3.3.1 नए राज्यों को बनाने की कई बार मांग उठती है। उदाहरण के लिए तेलंगान (आन्ध्र प्रदेश), विदर्भ (महाराष्ट्र) बोडोलैंड (असम) गोरखालैंड (पश्चिम बंगाल) कोडागु (कर्नाटक) पुद्दुचेरी, दिल्ली आदि। यह कहना व्यर्थ नहीं होगा कि सभी मांगे नहीं मानी जा सकती क्योंकि इससे राज्यों की संख्या बढ़ेगी तथा फैडरल बोझ बढ़ेगा, आर्थिक दृष्टि से भी वे अलाभकारी होते हैं, राष्ट्रीय एकता पर भी खतरा होगा, छोटे राज्यों में यह आवश्यक नहीं है कि अच्छे से शासित होते हों जैसा कि उत्तरपूर्व राज्यों में, जहां कुछ, राज्यों में, जिलों से अधिक मंत्री हैं, प्रशासनिक समस्याएं, जैसे उच्च न्यायालय, सचिवालय आदि जैसे संस्थानों को खोलने में आती हैं, राजधानी आदि स्थापित करने की लागतें, नए राज्यों का गठन करने में, इस प्रकार की समस्याएं सामने आती हैं।

3.3.2 लेकिन नवम्बर 2000 में संघीय संसद ने तीन नए राज्यों, उत्तरॉचल, झारखंड तथा छत्तीसगढ़ का गठन करने के लिए तीन बिलों को पारित किया था। इन तीन नए राज्यों को बनाने के लिए निम्नलिखित तर्क रखे गए थेः–

क) उत्तरॉचल के मामले में, उत्तर प्रदेश के 11 पर्वतीय जिले थे, क्षेत्र के पूर्णतः विकास करने की आवश्यकता उठी, इसकी भैगोलिक विशिष्टता, राज्य की राजधानी से प्रशासनिक सुदूरता तथा उसके परिणाम स्वरूप होने वाली समस्याएं। सीमा क्षेत्र के जिले यह समझते हैं कि रणनीति की दृष्टि से

महत्वपूर्ण होने के कारण उनको नए राज्य के रूप में परिवर्तित करके, उनको अतिरिक्त महत्व प्राप्त होगा। लाभ के प्रश्न की दृष्टि से उत्तरॉचल लाभप्रद है क्योंकि इसमें पर्यटन की, बागवानी आदि की बड़ी महत्वपूर्ण संभावनाएं हैं जोकि राजस्व बढ़ाने में सहायता कर सकती है। यह क्षेत्र सिंचाई की दृष्टि से आत्म निर्भर है और पर्याप्त बिजली तैयार कर सकता है। उत्तर प्रदेश, सबसे अधिक जनसंख्या वाला प्रदेश है, प्रशासनिक दृष्टि से प्रबंधन की कठिनाई बनी रहेगी जब तक कि इसे दो अथवा अधिक राज्यों में नहीं बांटा जाएगा।

ख) झारखंड के मामले में, (18 जिले) बाहर से आए लोगों द्वारा क्षेत्र के सांस्कृतिक विकास की अनदेखी तथा आर्थिक पिछड़ापन, स्थानीय लोगों के बीच रोष के मुख्य कारण थे। यह क्षेत्र खनिज संसाधनों में बहुत ही संपन्न है और न केवल बिहार अपितु देश के लिए भी पर्याप्त राजस्व उत्पन्न करता है। दुर्भाग्यवश क्षेत्र पर बहुत ही कम व्यय किया गया था।

ग) छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश का सर्वाधिक उपजाऊ क्षेत्र है, परन्तु आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। इसके पास खनिज स्रोत हैं जो इसे आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद बना सकते हैं। देश के सबसे बड़े राज्य होने के नाते, मध्यप्रदेश, को विभाजित करने की आवश्यकता है जिससे कि स्थानीय निवासियों के बीच, प्रशासनिक समस्याओं तथा उनकी उपेक्षा हो रही है, यह भावना न विकसित हो।

3.3.3 जहां यह बात सत्य है कि इन नए बनाए गए राज्यों की जनता की शिकायतें सच्ची थीं और उनकी मांगों का पूरा किये जाने की आवश्यकता थी इस बात का मूल्यांकन अभी किया जाना है कि इनकी स्थापना होने के समय से, एक दशक से भी अधिक अवधि बीत जाने के बाद भी, इन राज्यों की जनता की अभिलाषाएं किस सीमा तक पूरी हुई हैं।

नए राज्यों की गठन करने की प्रकिया

संसद, नए राज्यों को बना सकती हैं, उनकी सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है, बहुमत द्वारा कानून पारित करके वर्तमान राज्यों के नामों एवं सीमा में परिवर्तन कर सकती है।

1. संसद के किसी भी सदन में, नए राज्य के गठन का अथवा वर्तमान राज्य के नामों अथवा सीमाओं में परिवर्तन के लिए कोई बिल प्रस्तुत नहीं किया जाएगा, सिवाय राष्ट्रपति द्वारा सिफारिश किए जाने के मामले में।
2. संसद में बिल प्रस्तुत करने से पूर्व, राष्ट्रपति उसे संबंधित राज्य के विधानमंडल को, उनके विचार प्राप्त करने के लिए निर्दिष्ट समयसीमा के भीतर परामर्श भिजवाने के लिए भेजेगें।
3. यदि राज्य विधानमंडल अपने परामर्श को निर्दिष्ट समय सीमा के भीतर नहीं भिजवाते, तो समय सीमा को बढ़ाया जा सकता है।
4. यदि परामर्श प्राप्त नहीं भी हुआ होगा तो भी बिल प्रस्तुत किया जा सकता है।
5. संसद, राज्य विधानमंडल के विचारों को मानने अथवा उस पर कार्रवाई करने के लिए बाह्य नहीं है।
6. यह आवश्यक नहीं है कि हर बार, जब भी बिल में संशोधन का प्रस्ताव हो तथा स्वीकार किया जाना हो, सदैव, राज्य विधानमंडल को नए संदर्भ बना कर प्रेषित किए जाएं।

3.3.4 इस तथ्य को जानते हुए कि हमारी प्रणाली (फैडरल) संघीय है जो कि संक्रमणकाल के समय में लोकतांत्रिक सुदृढीकरण की प्रक्रिया से गुजर रही है, गठबंधन शासन की विशिष्टता है, नए राज्यों को बनाने के विकल्प पर अत्यन्त सवाधानी से विचार करने की आवश्यकता है, चाहे ऐसे नए राज्य बनाने के लिए कितने ही युक्तियुक्त कारण दिए जाएं। देश की अचारण संहिता तथा अन्य क्षेत्रों के विषय में, (फैडरल) संघीय सरकार के सरोकारों के संबंध में, समरूप मांगों को भी अवश्य समझने की आवश्यकता है।

4. नागरिकता

4.1.1 नागरिक वह व्यक्ति होता है, जो, जिस समाज अथवा राज्य में रहता है अथवा, सामान्यतः वहां का निवासी है, वहां की पूर्ण सदस्यता पाने का हकदार होता है। नागरिक, विदेशी व्यक्तियों से भिन्न होते हैं, जो, राज्य की पूर्ण सदस्यता के लिए, जो आवश्यक अधिकार होते हैं, उनका पूर्ण उपयोग नहीं कर पाते।

4.1.2 संविधान के भाग–II में स्पष्टतः वर्णित है कि संविधान के लागू होने की तिथि अर्थात् 26 जनवरी 1950 को भारत में इन श्रेणियों के व्यक्ति रहते हैं तथा नागरिकता के समूचे कानून को संसद द्वारा बनाए गए विनियमों द्वारा नियंत्रित किए जाने पर छोड़ दिया है। अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए संसद ने भारतीय नागरिकता अधिनियम, 1955 लागू किया जोकि बाद में 1986 में संशोधित किया गया।

4.2.1 अधिनियम, संविधान के लागू होने के बाद, भारतीय नागरिकता के अधिग्रहण के लिए निम्नलिखित पांच तरीके बताता है। अर्थात् जन्म वंशानुगत, पंजीकरण, प्रकृत्या तथा नए प्रदेश की भारत में विलय होने के अनुसार :

क) जन्म द्वारा : – प्रत्येक वह व्यक्ति जो 26 जनवरी, 1950 को अथवा उसके बाद कानूनन भारत का (सोली, न्यायाधीश) नागरिक होगा, बशर्ते उसके जन्म के समय उसके माता–पिता में से एक अथवा दोनों भारत के नागरिक हों। परन्तु यह कानून, किसी अन्य देश के राजनयिकों, जन्म लेने वाले शिशु के पिता होंगें अथवा उसके जन्म के समय शत्रु देश के राजनायिक होंगे तो लागू नहीं होगा।

ख) वंशानुगतः– यदि कोई व्यक्ति शिशु 26 जनवरी 1950 को अथवा उसके बाद भारत से बाहर जन्म लेता है परन्तु उसका पिता व्यक्ति के जन्म के समय

भारत का नागरिक है तो वह व्यक्ति वंशानुगत अर्थात् रक्त का संबंध होने से भारत का नागरिक होगा। (न्यायाधीश, सैंगुइन)

ग) पंजीकरण द्वाराः यदि कोई व्यक्ति संविधान के अनुसार अथवा नागरिकता अधिनियम के प्रावधानों में से किसी प्रावधान के अनुसार भारत का नागरिक नहीं है तो वह इस उद्देश्य के लिए पंजीकरण करा कर नागरिकता प्राप्त कर सकता है। लेकिन ऐसे आवेदन करने से पूर्व तत्काल कम से कम पांच वर्ष के लिए, एक वर्ष में कम से कम 90 दिनों के लिए भारत में रहना चाहिए, यह शर्त होगी।

घ) प्रकृत्या/स्वतः एक विदेशी नागरिक, भारत के नागरिकता के लिए सक्षम प्राधिकाऐं के समक्ष आवेदन कर सकता है बशर्ते वह कम से कम 10 वर्षों से भारत में रह रहा हो।

ड़) प्रदेशों के शामिल होने परः– यदि कोई नया प्रदेश, सर्व सम्मति से भारत का हिस्सा बन जाता है, भारत सरकार उस प्रदेश के व्यक्ति भारत का नागरिक होना अधिसूचित कर सकती है।

4.3.1 नागरिकता समाप्त करनाः– नागरिकता अधिनियम 1955 में तीन साधन दिए गए हैं जिनसे भारतीय नागरिक अपनी नागरिकता खो सकते हैं। वह हैः परित्याग, समापन तथा वंचित करना।

क) नागरिकता परित्याग करनाः एक स्वैच्छिक कृत्य है जिसके द्वारा व्यक्ति, अन्य देश की नागरिकता अधिग्रहण करने के बाद अपनी भारतीय नागरिकता का परित्याग कर देता है। इस प्रावधान में कुछ शर्तें निहित हैं।

ख) समापनः जब एक भारतीय नागरिक स्वेच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता का अधिग्रहण कर लेता है तो कानून के अन्तर्गत उसकी भारतीय नागरिकता समाप्त हो जाती है।

ग) वंचित करनाः भारत की नागरिकता प्राप्त करने के लिए, धोखाधड़ी उपायों का प्रयोग करने के आरोपों पर, आरोप सिद्ध होने पर भारत सरकार द्वारा, नागरिकता प्रादान करने के लिए पंजीकरण कराकर भारत की नागरिकता प्राप्त करने वाले को नागरिकता से वंचित किया जाता है।

विदेषियों को उपलब्ध न कराए जाने वाले अधिकार

1.) नस्ल, धर्म, जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव करने का अधिकार नहीं है । (अनु0–15)

2.) सार्वजनिक रोजगार में समान अवसरों का अधिकार नहीं है। (अनु0–16)

3.) छः मूलभूत स्वतंत्राताओं का अधिकार नहीं है। (अनु0 19)

4.) मताधिकार का प्रयोग करने का अधिकार नहीं है।

5.) सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकार नहीं है। (अनु0 29 एवं 30)

6.) कतिपय उच्च पदों पर विरजमान होने का अधिकार नहीं हैः– राष्ट्रपति, उप–राष्ट्रपति, राज्यपाल, उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश, महान्यायवादी, नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक, आदि।

7.) चुनाव लड़ने का अधिकार तथा किसी सदन में, केन्द्र में, अथवा राज्य स्तर पर, चुने जाने का अधिकार नहीं है।

4.4 दोहरी नागरिकताः

4.4.1 भारतीय संविधान, अनु0 11 के अन्तर्गत, भारतीय संसद को, नागरिकता मामलों पर कानून बनाने का अधिकार देता है। तद्नुसार संसद में 1955 ने नागरिकता अधिनियम बनाया था। अनुच्छेद 9 के अनुसार नागरिकता से तात्पर्य है से पूर्ण नागरिकता। संविधान विभाजित निष्ठा को नहीं मानता

नागरिकता अधिनियम की धारा 10 में वर्णित है कि कोई व्यक्ति, भारत के संविधान के साथ–साथ अन्य देश के संविधान के प्रति निष्ठा नहीं रख सकता। भारतीय न्यायालय दोहरी नागरिकता को एक मत से नियम विरूद्ध मानते हैं।

4.4.2 यदि कोई भारतीय नागरिक किसी अन्य देश की नागरिकता ग्रहण कर लेता है तो वह भारतीय नागरिकता से वंचित हो जाएगा। उदाहरण के लिए, यदि कोई बच्चा, भारत के नागरिक माता–पिता के यहॉ, और अन्य देश में जन्म लेता है तथा व्यस्क होने पर उस देश की नागरिकता को नहीं छोड़ता, तो वह भारतीय नागरिकता नहीं प्राप्त सकता।

4.4.3 दोहरी नागरिकता को नकारने का कारण है कि नागरिकता, से कुछ कर्तव्यों, जैसे यदि आवश्यकता हो तो, सेना में नागरिक सेवा कर सके।

5. मूलभूत अधिकार

5.1 भारत सरकार अधिनियम, 1935 तथा वर्तमान भारतीय संविधान के बीच सबसे महत्वपूर्ण प्रभावशाली अंतर, भारतीय संविधान में मूलभूत अधिकारों का होना है। यह भारत का महाधिकार पत्र है। अमेरिकी संविधान में इन अधिकारों को अधिकारों के बिल के रूप में उपलब्ध कराया गया है। भारत के संविधान में, भाग–III में कई मूलभूत अधिकारों को सम्मिलित किया गया है। संविधान का भाग– III संविधान की अधारशिला माना जाता है तथा भाग IV (निदेशात्मक सिद्धान्त) में संविधान की 'अंतरचेतना' सम्मिलित है।

5.2 ये अधिकार मूलभूत क्यों हैं?

5.2.1 ये अधिकार मूलभूत इसलिए माने जाते हैं क्योंकि यह पूर्णतः व्यक्ति की बौद्धिक एवं अध्यात्मिक महत्ता के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

5.3 मूलभूत अधिकारों की सार्थकता

5.3.1 मूलभूत अधिकार एकल व्यक्ति के अधिकार है और इनके बिना लोकतंत्र अर्थहीन है। मूलभूत अधिकारों को संविधान में इसलिए शामिल किया गया है क्योंकि इन अधिकारों को सभी परिस्थितियों के अन्तर्गत अलंघनीय समझा जाना चाहिए। कोई भी समाज बिना मूलभूत अधिकारों के उन्मुक्ता से कार्य नहीं कर सकता।

5.3.2 मूलभूत अधिकारों का उद्देश्य, सरकार द्वारा अनाधिकार हस्तक्षेप होने पर लोगों की स्वतंत्रता एवं अधिकारों की रक्षा करना है। यह सरकार की विधायी के साथ–साथ कार्यकारी शक्तियों का परिसीमन है तथा सार्वजनिक एवं निजी अधिकारों के प्रस्तुतिकरण के लिए आवश्यक है। नागरिक की स्वतंत्रता के अनाधिकार हस्तक्षेप का खतरा संसदीय प्रणाली में, विशेषकर, अधिक होता है, क्योंकि जो लोग सरकार बनाते हैं वे विधानमंडल में बहुमत में होते हैं और अपनी इच्छाओं के अनुरूप कानून बना सकते हैं।

राज्य की परिभाषा

अनु0 12 के अनुसार 'राज्य' में, भारत की संसद एवं सरकार तथा प्रत्येक राज्य की सरकार एवं विधानमंडल एवं भारत के प्रदेशों के भीतर, अन्य प्राधिकरण अथवा सभी स्थानीय प्राधिकरण, अथवा भारत सरकार के नियंत्रणाधीन प्रदेश शामिल है। यद्यपि अनु0 12 में न्यायपालिका के विषय में कुछ अभिव्यक्त नहीं किया गया है, इसे अन्य प्राधिकरणों के अन्तर्गत अभिव्यक्त करना चाहिए क्योंकि न्यायालय कानूनों के अन्तर्गत स्थापित किए जाते हैं एवं कानून द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हैं।

5.4 पूर्ण शक्तिः इसका तात्पर्य है, पूर्ण, शंका रहित एवं अनियंत्रित शक्ति। 24वें संविधान संशोधन के द्वारा संसद ने पूर्ण शक्ति प्राप्त करने का प्रयास किया था परन्तु उच्चत न्यायालय ने संविधान के 'मूल ढ़ांचे' की संकल्पना के अन्तर्गत संसद के प्रयास को नकार दिया। उच्चतम न्यायालय के अनुसार,

संसद के सभी कानूनों की न्यायालय के द्वारा न्यायायिक समीक्षा की जा सकती है।

5.5 **<u>भारतीय संविधान के अन्तर्गत मूलभूत अधिकारों की प्रकृतिः</u>**

5.5.1 मूलभूत अधिकार, व्यक्ति के अधिकार हैं, और यह अधिकार, राज्य द्वारा मनमाने व्यवहार के विरूद्ध प्रवर्तनीय है।

5.5.2 संविधान के भाग III में सम्मिलित किए गए अनुसार मूलभूत अधिकारों के द्वारा नागरिकों को जो अधिकार दिए गए हैं, वे गैर सरकारी पक्षकारों द्वारा ऐसे अधिकारों का उल्लंघन करके, भेद दिखलाने पर राज्य सरकार की दंडात्मक कार्यवाई के भागी होंगे। परन्तु, निम्नलिखित दो अधिकारों को गैर सरकारी व्यक्तियों के विरूद्ध भी लागू किया जा सकता है।

क) भेदभाव करने के विरूद्ध अधिकार तथा अस्पृश्यता के विरूद्ध अधिकार (अनु0 15(2),17, तथा

ख) शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनु0 23,24)

5.6 क्या मूलभूत अधिकार पूर्ण हैं?

5.6.1 मूलभूत अधिकार व्यक्ति को पूर्ण स्वायत्तता नहीं देते। ये प्रतिबंधित अधिकार हैं। अप्रतिबंधित स्वतंत्रता, अन्यों की स्वतंत्रता के लिए जोखिम में पड़ जाती है और एक प्रकार का लाइसेंस बन जाती है। यदि व्यक्तियों को अपनी इच्छाअनुसार कार्य करने की पूर्ण आजादी दे दी जाए तो इसके परिणाम दुर्व्यवस्था, अराजकता एवं सर्वनाशकारी होंगे। व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं समाजिक आवश्यकताओं के बीच एक संतुलन होना चाहिए। दूसरी ओर यदि राज्य के पास पूर्ण स्वतंत्रता होगी तो परिणाम निरकुंशता के होंगे। वस्तुतः संविधान ने मूलभूत अधिकारों पर प्रतिबंधन उपलब्ध करा कर, संसद को मजबूत किया है, बशर्ते कि यह प्रतिबंध न्यायसंगत एवं निष्पक्ष हो।

तर्कसंगत प्रतिबंधों के आधार

तर्कसंगत प्रतिबंधों के कुछ आधार जिन्हें अधिरोपित किया जा सकता हैः

1) अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं एवं बच्चों सहित कमजोर वर्ग के लोगों की उन्नति
2) आम जनता के हित में, सार्वजनिक आदेश, शिष्टता एवं नैतिकता का पालन
3) भारत की संप्रभुता एवं अखंडता
4) राज्य की सुरक्षा
5) विदेशों आदि के साथ मित्रवत् संबंध बनाना।

5.6.2.परन्तु निम्नलिखित दो मूलभूत अधिकारपूर्ण अधिकार हैंः

1) अस्पृश्यता के खिलाफ अधिकार
2) 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को संकटपूर्ण रोजगार में नहीं लगाया जाएगा। (अनु0 24)

5.7 न्यायायिक समीक्षा एवं मूलभूत अधिकार

5.7.1 अनु0 13 में भारत में सभी विधानों की न्यायायिक समीक्षा उपलब्ध कराने की बात कही गई है।

5.7.2 यदि उल्लंघन की सीमा तक, संविधान के भाग–III के प्रावधानों में से किसी एक की भी असंगतता है तो न्यायायिक समीक्षा वह शक्ति है, जो भारत के उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को, उस कानून को असंवैधानिक घोषित करने का अधिकार प्रदान करती है। न्यायायिक समीक्षा की संकल्पना अमेरिका के संविधान से ली गई है।

5.7.3 भारत में संविधान ही सर्वोच्च है। कानून को वैध बनाने के लिए उसे संविधान की अपेक्षाओं के अनुरूप होना होगा। यह न्यायपालिका पर निर्भर करता है कि वह किस कानून को संवैधानिक माने और किसको नहीं।

5.8 मूलभूत अधिकारों के उत्तरदायित्व

5.8.1 अनु0 13 (2) के अनुसार यदि, संसद द्वारा बनाया गया कोई 'कानून', संविधान के भाग III द्वारा प्रदत्त मूलभूत अधिकारों को छीनता है अथवा काट छांट करता है तो ऐसे उल्लंघन की सीमा तक उसे शून्य घोषित कर दिया जाएगा। उच्चतम न्यायालय ने शंकरी प्रसाद बनाम भारत सरकार (1952) सज्जन सिंह बनाम राजस्थान सरकार (1965) जैसे कई मामलों में कहा है कि अनु0 368 के अन्तर्गत अपनी संशोंधिन की शक्तियों का प्रयोग करके, संसद संविधान के भाग ।।। तक में, संशोधन कर सकती है।

5.8.2 परंतु गोलकनाथ बनाम पंजाब सरकार (1967) मामले में उच्चतम न्यायालय ने अपने पहले निर्णय को उलट दिया और निर्णय दिया कि मूलभूत अधिकार भाग– III में समाहित है तथा संविधान द्वारा इन्हें 'मीमॉसात्मक स्थिति' दी गई थी और कोई भी प्राधिकार, संसद समेत, जिसे अनु0 368 के अन्तर्गत संशोधन की शक्ति प्राप्त है, मूलभूत अधिकारों में संशोधन करने के लिए सक्षम नहीं था।

5.8.3 लेकिन, 24वें संशोधन अधिनियम, 1971 द्वारा संसद ने अनु0 13 तथा अनु0 368 को समुचित रूप से संशोधित करके संविधान के भाग III को संशोधित करके स्वंय को अधिकार प्रदान किया था । इस संशोधित अधिनियम को, उच्चतम न्यायालय में, केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य 1973 के ऐतिहासिक मामले में चुनौती दी गई थी। इस मामले में न्यायालय ने निर्णय दिया था कि अनु0 368 के अन्तर्गत अपनी संशोधन करने की शक्तियों का प्रयोग करते हुए मूलभूत अधिकारों सहित संविधान के किसी भी प्रावधान में

संशोधन कर सकती है, बशर्ते ऐसे संशोधन संविधान के मूल ढांचे को न छुए/छेड़ें।

भाग III से बाहर के अधिकार

1. अनु0 300–ए किसी भी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा जो कानून द्वारा सुरक्षित है।
2. अनु0 301 इस भाग के अन्य प्रावधानों के अधीन, व्यापार, वाणिज्य एवं परस्पर व्यवहार की स्वतंत्रता, भारत के समग्र प्रदेशों मे, व्यापार, वाणिज्य तथा परस्पर व्यवहार मुक्त होगी।
3. अनु0 326 लोकसभा तथा राज्यों की विधान सभाओं का चुनाव, व्यस्क मताधिकार के आधार पर होगा।

5.9 मूलभूत अधिकारों का निलंबनः

5.9.1 संयुक्त राज्य अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में मूलभूत अधिकारों को किसी भी परिस्थिति में निलंबित नहीं किया जा सकता। परन्तु भारत के संविधान में, कुछ परिस्थितियों में मूलभूत अधिकारों को स्वतः रद्द करने के प्रावधान दिए गए हैं, उदाहरण के लिए अनु0 352 के अन्तर्गत राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान (उदाहरणतः युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण)! आगे, संविधान में अनु0 359 के अन्तर्गत, राष्ट्रीय आपात्काल के दौरान एक अलग उद्घोषणा जारी करके, किसी एक अथवा सभी मूलभूत अधिकरों को राष्ट्रपति द्वारा निलंबित किए जाने की राष्ट्रपति को शक्तियां प्रदान की गई हैं। लेकिन, 44वें संशोधन अधिनियम, 1978 में अनु0 20 तथा 21 का निलंबन (अपराधों की दोषसिद्धि के सबंध में बचाव तथा क्रमशः, जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का बचाव) राष्ट्रीय आपात्काल के दौरान भी निषेध किया गया है।

मूलभूत अधिकारों का वर्गीकरण

मूलभूत अधिकारों के छः समूह हैंः

1. समानता का अधिकार (अनु0 14–18)
2. स्वतंत्रता का अधिकार (अनु0 19–22)
3. शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनु0 23–24)
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनु0 25–28)
5. सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकार (अनु0 29–30)
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनु0 32)

5.10 नागरिकों को विशिष्ट मूलभूत अधिकार

क) अनु0–15 केवल धर्म, नस्ल, जाति, लिंग अथवा जन्मस्थान के आधारों पर भेदभाव करने का निषेध

ख) अनु0–16 सार्वजनिक रोजगार के मामले में अवसरों की समानता

ग) अनु0–19 बोलने की स्वतंत्रता आदि के संबंध में, कतिपय अधिकारों का संरक्षण

घ) अनु–30 अल्पसंख्यकों को शेक्षणिक संस्थानों को स्थापित करने एवं चलाने का अधिकार

5.11 भारत की धरती पर किसी व्यक्ति को उपलब्ध मूलभूत अधिकार (सिवाय विदेशी शत्रुओं के)

क) अनु0–14 कानूनों का समान रूप से संरक्षण एवं कानून के समक्ष सब समान।

ख) अनु0–20 अपराधों की दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण।

ग) अनु0–21 जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण।

घ) अनु0–23 बलात् श्रम एवं मानव तस्करी का निषेध।

ड) अनु0–25 धर्म की स्वतंत्रता।

च) अनु0–27 किसी धर्म विशेष की उन्नति के लिए करों के भुगतान की स्वतंत्रता।

5.12. **अनुच्छेद–14**

5.12.1 समानता का अधिकार– राज्य भारत के प्रदेशों के भीतर किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता का अथवा कानूनों का समान संरक्षण देने से इंकार नहीं करेगा।

5.12.2 कानून के समक्ष समानता– यह ब्रिटिश संविधान से प्रेरित है। कानून के समक्ष समानता नकारात्मक संकल्पना है। इसका तात्पर्य है 'कोई भी व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है' उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा कुछ भी हो, न्यायालयों के क्षेत्राधिकार में आता है। समानता, निरंकुशता की विपरीतता है। समानता एवं निरंकुशता पक्के दुश्मन हैं।

5.12.3. **अपवादः–**

कानून के समक्ष समानता का नियम, पूर्ण नियम नहीं है और इसमें कई अपवाद हैं। सर्वप्रथम, विदेशी राजनायिक, न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से प्रतिरक्षित होते हैं। द्वितीयतः, अनुच्छेद 361 में कहा गया है कि राष्ट्रपति अथवा राज्यों के राज्यपाल अपनी शक्तियों के कार्या निष्पादन एवं प्रयोग करने के लिए अपने दायित्वों की पूर्ति करते हुए किसी भी न्यायालय के प्रति जवाबदेह नहीं है। तृतीयतः, राष्ट्रपति अथवा राज्य के राज्यपाल के विरूद्ध, उनके कार्यकाल में कोई आपराधिक कार्यवाही गठित अथवा जारी नहीं की जा सकेगी। आगे, राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल को गिरफ्तार करने अथवा जेल भिजवाने की कोई प्रक्रिया किसी भी न्यायालय द्वारा उनके कार्यकाल में नहीं जारी की जा सकेगी।

कानून की व्यवस्था

कानून के समक्ष समानता की गारंटी, जो कि अविश्वसनीय कहलाती है 'कानून की व्यवस्था' इसका उद्‌गम इंगलैंड में हुआ था। इसका तात्पर्य है कि कोई भी व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है तथा प्रत्येक व्यक्ति, चाहे उसकी पद प्रतिष्ठा उथवा स्थिति उच्च स्तर पर कुछ भी हो, वह साधारण न्यायालय के क्षेत्राधिकार में आता है। यह भी कि, किसी भी व्यक्ति को, कानून एवे व्यवस्था बनाए रखने की आड़ में, कठोर, असभ्य अथवा भेदभाव वाले व्यवहार का पात्र नहीं समझा जाएगा।

'कानून की व्यवस्था' के मूल तीन नियम हैं–

1. कानून की सर्वोच्चता अथवा मनमानी शक्ति का अभाव ''किसी व्यक्ति को कानून भंग करने के लिए दंडित किया जा सकता है और किसी चीज के लिए नहीं।
2. कानून के समक्ष समानता– कोई भी कानून से ऊपर नहीं है।

3. संविधान इस भारत भूमि का सर्वोच्च कानून है और विधान मंडल द्वारा पारित सभी कानून, संविधान के प्रावधानों के साथ एकरूप होने चाहिए।

अनु0 14 के अन्तर्गत कानून की व्यवस्था, संविधान की 'मूल विशिष्टता' है।

5.12.4 कानून का समान संरक्षण– यह एक सकारात्मक संकल्पना है। कानून के समान संरक्षण की संकल्पना संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान से प्रेरित है। इसका केवल यह तात्पर्य है कि सभी व्यक्ति, समान परिस्थितियों में, एक समान ही समझे जाएंगें, दोनों को विशेषाधिकार प्रदान किया जाएगा तथा दायित्व लगाए जाएंगें। समान कानून उन सभी व्यक्तियों पर समान रूप से लागू होना चाहिए जो एक जैसे अवस्थित है और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के बीच कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए।

5.12.5 इस प्रकार, अनु0 14, राज्य को, लोगों को, न्यायसंगत आधार पर वर्गीकृत करने की शक्तियॉ प्रदान करता है। परन्तु यह वर्गीकरण मनमाना, बनावटी अथवा अनिश्चित् नहीं होना चाहिए। समूहों के बीच भेदभाव हो सकता है परन्तु समूहों के भीतर नहीं। चूंकि राज्य, समाज के सभी वर्गों के कल्याण के के लिए उन्हें प्रश्रय देता है, यह उनके पक्ष में कुछ भेद कर सकता है, जो कम विशेषाधिकार वाले हैं। इस लिए रू0 2,00,000/– प्रति वर्ष तक की आय पर आयकर में छूट प्राप्त है। संरक्षणात्मक भेदकारी नीति के अन्तर्गत राज्य ने समाज के कतिपय वर्गों के हित में कानून बनाए हैं जैसे कि अनुसूचित जातियों (एस.सी) अनुसूचित जनजातियों (एस.टी.) तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लोग (ओ. बी.सी.) परन्तु इन तीनों को एकल समूह के रूप में वर्गीकृत नहीं किया गया है। उदाहरण के लिए, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के बीच, अनुसूचित जनजातियों को अधिक लाभ प्रदान किए गए हैं तथा अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों को सबसे कम लाभ दिए गए हैं। परन्तु एक समूह के भीतर, जैसेकि, अनुसूचित जाति, उनमें और भेद भाव नहीं किया जा सकता।

5.13 अनुच्छेद 15

5.13.1 अनु0 15 राज्य को यह निर्देश देता है कि वह किसी नागरिक के विरूद्ध केवल नस्ल, धर्म, जाति, लिंग, जन्मस्थान आदि के आधार पर कोई भेदभाव न करे। 'केवल' शब्द यह इंगित करता है कि किसी व्यक्ति पर 'केवल' इसलिए भेदभाव नहीं किया जा सकता कि वह किसी जाति विशेष, नस्ल विशेष, धर्मविशेष आदि से संबंध रखता है। यदि अन्य योग्यताएं समान हैं, धर्म, जाति, नस्ल आदि के कारण अयोग्य नहीं होना चाहिए।

5.13.2 **अपवाद**

1. महिलाओं एवं बच्चों के लिए विशेष प्रावधान
2. अनु0 15(4) नागरिकों के उन समूहों के लिए विशेष लाभ उपलब्ध कराता है जो आर्थिक रूप से तथा सामाजिक रूप से दबे हुए हैं।

सामाजिक रूप से तथा शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग कौन से हैं?

संविधान में इसे परिभाषित नहीं किया गया है। परन्तु अनु0 340 राष्ट्रपति को सामाजिक रूप से तथा शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों की स्थिति का अन्वेषण करने के लिए आयोग नियुक्त करने की शक्तियॉ प्रदान करता है। आयोग की सिफारिशों के आधार पर, राष्ट्रपति, पिछड़े वर्ग की श्रेणियों को अलग–अलग उल्लेखित कर सकते हैं। परन्तु सरकार का निर्णय न्यायिक समीक्षा के अन्तर्गत आएगा। सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न व्यवस्थाओं के अन्तर्गत यह कहा है कि अनु0 15 (4) में परिभाषित 'पिछड़ापन' सामाजिक एवं शैक्षणिक दोनों होना चाहिए, कोई एक नहीं । गरीबी व्यवसाय, निवास स्थान इस बात पर विचार करने के लिए सुसंगत कारक होने चाहिए। यद्यपि गरीबी, पिछड़ेपन की एकल जॉच नहीं है, सामाजिक पिछड़ेपन के संदर्भ में यह एक सुसंगत कारक है।

5.14 अनुच्छेद 16

5.14.1 सार्वजनिक रोजगार के मामलों में अवसरों की समानता कोई भी नागरिक, केवल नस्ल, धर्म, जाति, लिंग, वंश, जन्म स्थान अथवा निवास स्थान के आधार पर अयोग्य अथवा किसी रोज़गार अथवा राज्य के किसी कार्यालय में भेदभाव का पात्र नहीं हो सकता। परन्तु राज्य अर्हताओं को निर्दिष्ट करने के लिए स्वतंत्र है। अपात्रता के लिए कोई अन्य आधार नहीं हो सकता।

5.14.2 अपवाद

क) ऐतिहासिक दृष्टि के आधार पर रोजगार के लिए आवास को प्रतिबंधित किया जा सकता है।

ख) यदि पिछड़े वर्गों का (उनका) पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल पा रहा तो पिछड़े वर्गों को विशेष अनुग्रह दिया जा सकता है।

ग) धर्म, विशेष मामलों में, भेदभाव का आधार हो सकता हैं । कई ऐसे धार्मिक संस्थान है जो राज्य द्वारा अधिग्रहीत किए गए हैं। इस लिए धार्मिक पद एक ही धार्मिक पंथ के लिए आरक्षित रखे जाते हैं।

अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के लिए संवैधानिक संरक्षण

भारतीय संविधान का आधार समानतावादी समाज की स्थापना करने का लक्ष्य है। भारत में, जातीय एवं जात–पॉत परिमाणों को लेकर, विरासत में मिली सामाजिक विकृतियों के रूप में, इतिहास के अतिरिक्त बोझ को अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति, समुदायों के समर्थन में प्राथमिकता के आधार पर, विशेष संवैधानिक कदम उठाने की आवश्यकता है। संविधान में उनके समर्थन में निम्नलिखित बातें उपलब्ध कराई हैं:

1. अनु0 15– सार्वजनिक स्थानों पर उनकी पहुॅच के संबंध में उनकी निर्योग्यता को समाप्त करता है।
2. अलु0 16– राज्य रोजगार एवं नियुक्ति के मामलों में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजातियों के लिए समानता के अवसर उपलब्ध कराना जो कि संरक्षणकारी उपायों से भरपूर है।

   अनु0 18– अस्पृश्यता को उन्मूलित करना तथा दोषी को अपनी निर्दोष्ता साबित करनी होगी।

   राष्ट्रपति को, प्रत्येक राज्य के राज्यपाल के परामर्श से अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजातियों की सूची, संसदीय संशोधनों को ध्यान में रखते हुए, तैयार करने की शक्तियां दी गई हैं (अनु0 341–342)

1. इन समुदायों की संपत्ति, जब तक निर्दिष्ट प्राधिकारियों द्वारा अनुमत न की जाए, उनसे ली नहीं जा सकती (अनु0 19.5)
2. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति का राष्ट्रीय आयोग 1990 में 65वें संशोधन अधिनियम द्वारा गठित किया गया था, जो कि पुनः 89वें संविधान संशोधन अधिनियम (2003) (अनु0 338 एवं 338ए) के द्वारा विभाजित करके, अनुसूचित जातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग, अलग–अलग बनाए गए।

3. राष्ट्रपति अनुसूचित क्षेत्रों के कार्यों की तथा क्षेत्रों के अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के उपायों की समीक्षा के लिए आयोग नियुक्त कर सकते हैं।

4. राष्ट्रपति राज्य को अनुसूचित जन–जातियों के कल्याण के लिए योजनाएं तैयार करने एवं निष्पादित करने के निदेश दे सकते हैं।

5. राज्यों के केन्द्रीय सहायता अनुदानों को बढ़ाने के मानदंडों में से एक है कि राज्य को अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन जातियों की कल्याण योजनाओं की लागत का दायित्व उठाना होगा।

6. संविधान की 5वीं एवं छठी अनुसूचियों में दिए गए विशेष प्रावधानों का वर्णन हैं जिन्हें अनुसूचित जनजातियों की बस्तियों में प्रशासन के लिए अनु0 244 के साथ पढ़ा जाए।

7. मध्यप्रदेश, बिहार आदि राज्यों में, अनु0 जाति, अनु0 जन जाति तथा अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए कल्याण योजनाओं के प्रभारी मंत्रीगण होंगे।

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन जातियों के लिए सीटें एवं निर्वाचन क्षेत्र आरक्षित होते हैं। यह एक अस्थायी प्रावधान है जिसे, अब तक, प्रत्येक दस वर्षों के लिए बढ़ाया जा रहा है।

5.15 अनुच्छेद 17

5.15.1 अस्पृश्यता उन्मूलन– अस्पृश्यता उन्मूलित है तथा किसी प्रकार से इसका प्रयोग निषिद्ध है। "अस्पृश्यता'' से उत्पन्न किसी भी प्रकार की अपंगता का प्रवर्तन अपराध माना जाएगा, कानून के अनुसार दंडनीय होगा। परन्तु संविधान इस अनुच्छेद के अन्तर्गत किसी दंड का निर्धारण नहीं करता। संसद ने 'अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम,1955' बनाया था जिसमें अस्पृश्यता के लिए दंड का प्रावधान रखा गया। अस्पृश्यता कानूनों को और अधिक कठोर बनाने के लिए इस अधिनियम में संशोधन करके 'अस्पृश्यता (अपराध) संशोधन अधिनियम, 1987' को संशोधित किया गया था। आगे, मूल अधिनियम का नाम परिवर्तित करके नागरिक अधिकार (संरक्षण) अधिनियम, 1976 किया गया था। परन्तु इस अधिनियम में यह परिभाषित नहीं किया गया कि 'अस्पृश्यता' क्या

है। उच्चतम न्यायालय के अनुसार, 'अस्पृश्यता' को उसके शाब्दिक अथवा व्याकरण अर्थ में नहीं समझा जाना चाहिए। इसे 'ऐतिहासिक रूप से विकसित एक परंपरा' के रूप में समझा जाना चाहिए'। अनु0 17 ऐसे अपराधों के अन्वेषण के लिए लोक सेवकों पर ड्यूटी भी अधिरोपित करता है।

5.16 **अनुच्छेद 18**

5.16.1 उपाधि की समाप्ति– कोई उपाधि, मिलिट्री अथवा शैक्षणिक वैशिष्ट्य वाली न हो, राज्य द्वारा प्रदत्त नहीं की जाएगी' 'भारत को कोई नागरिक किसी विदेशी राज्स से कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा' इसमें किसी विदेशी नागरिक को राज्य की सेवा में तैनाती होने पर, राष्ट्रपति की सलाह के बिना, किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि प्राप्त करने का भी निषेध किया गया है। परन्तु अनुच्छेद 18 में ऐसे अपराध के लिए कोई दंड नहीं निर्धारित किया गया। संसद को दंड के लिए कानून बनाने के लिए मुक्त रखा गया है।

क्या भारत रत्न, पद्म विभूषण, पद्मश्री आदि उपाधियां/पुरस्कार अनुच्छेद 18 का उल्लघंन हैं?

यह पुरस्कार विभिन्न क्षेत्रों के किया कलापों में नागरिकों द्वारा अच्छे कार्य के लिए केवल राज्य की मान्यता को ही दर्शाते हैं। यह शैक्षणिक वैशिष्ट्यों की श्रेणी में फिट होते हैं। परन्तु इन्हें उपाधि के तौर पर अथवा अंत में जोड कर या पूर्व में जोड़कर प्रयोग नहीं किया जा सकता।

संवधिान का अनु0 51–ए प्रत्येक नागरिक के मूलभूत कर्तव्यों के बारे में बताता है। यह आवश्यक है कि कर्तव्यों के कार्यनिष्पादन में उत्कृष्टता की पहचान के लिए पुरस्कारों एवं अलंकरणों की एक पद्धति होनी चाहिए। इसलिए यह पुरस्कार अनु0 18 के प्रावधानों का उल्लघंन नहीं है।

5.17 अनुच्छेद 19

5.17.1 स्वतंत्रता का अधिकार– वाणी आदि की स्वतंत्रता से संबंधित कतिपय अधिकारों का संरक्षण

(1) सभी नागरिकों का अधिकार हैः–

क) वाणी एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

ख) शांतिपूर्वक एवं बिना हथियारों के एकत्र होना

ग) संघ अथवा संगठन बनाना

घ) भारत भर में कहीं भी उन्मुक्ता से आना–जाना

ड) भारत के किसी भी प्रदेश के किसी भी भाग में निवास करना और बस जाना।

च) संपत्ति की (44वें संविधान संशोधन, 1978 द्वारा हटाया गया एवं अनु0 300ए को अंतरित किया गया

छ) किसी भी वृत्ति को अपनाना अथवा किसी भी व्यवसाय, व्यापार अथवा कारोबार को अपनाना।

5.17.2 प्रतिबंध– वाणी एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पूर्ण नहीं है। राज्य, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मित्र संबंधों, सार्वजनिक आदेश, शिष्टता, नैतिकता, न्यायालय (कोर्ट) की अवमानना, मानहानि आदि के आधारों पर न्यायसंगत प्रतिबंधों को लागू कर सकता है। यह भी कि संगठन संघों आदि को बनाने के अधिकार, हड़ताल करने के किसी मूलभूत अधिकार को नहीं प्रदान करते। इसके अलावा यह, व्यक्ति का अधिकार है कि वह संगठन का हिस्सा बने या ना बने।

5.17.3 1995 में, उच्चतम न्यायालय ने 'एअरवेज़ मामले' में कहा है कि वाणी की तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, न केवल 'न्यायसंगत प्रतिबंधों' द्वारा ही सीमित है, अपितु सार्वजनिक संपत्ति के प्रयोग के साथ, राज्य के विनियमों से भी जुड़ी है। लेकिन, रेडियों एवं टेलीविजन का राज्य द्वारा स्वामित्व, वाणी एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उल्लंघन करता है, इस लिए एक सार्वजनिक स्वायत्त प्राधिकरण का गठन करना होगा जिससे कि सामूहिक हितों की, राज्य की जिम्मेदारी एवं व्यक्ति की उक्त अभिव्यक्ति की आवश्यकता संतुलित रह सके।

अनुच्छेद 19वां एवं न्यायायिक समीक्षा

अनु0 19 में निर्धारित छः मूलभूत स्वतंत्रताएं पूर्ण नहीं है। राज्य तर्कसंगत प्रतिबंधों को लागू कर सकता है।

'तर्कसंगत प्रतिबंध' अभिव्यक्ति अपने साथ न्यायायिक समीक्षा का सिद्धांत लाई है।

तर्कसंगतता का निर्धारण करने में न्यायालय न केवल चारों ओर की परिस्थितियों को देखता है अपितु अन्य कानूनों को भी देखता है जो कि एकल योजना के रूप में पारित किए गए थे।

5.18 **अनुच्छेद–20**

5.18.1 अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण। यह संरक्षण दोषसिद्धि के निम्नलिखित तीन किस्मों के विरूद्ध उपलब्ध है:–

क) **<u>कार्योत्तर कानून</u>**

इसका तात्पर्य है एक कानून बनाना और उसे पूर्वव्यापी प्रभाव से (अर्थात् पिछली तिथि/वर्ष से) लागू करना। यह शांति, हमारे संविधान द्वारा संसद को प्रदान की गई है। यह केवल सिविल कानून पर लागू है जबकि आपराधिक कानूनों को पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू नहीं किया जा सकता।

ख) **<u>दोहरा जोखिम</u>**

इसका तात्पर्य है कि कोई व्यक्ति, किसी अपराध के लिए केवल एक बार दंडित किया जा सकता है और प्राधिकारी द्वारा निर्धारित अवधि से अधिक समय के लिए नहीं। लेकिन, यदि कोई सिविल कर्मचारी (सिविल सर्वेंट), आपराधिक आरोपों के कारण, बर्खास्त किया जाता है तो उसकी बर्खास्तगी दोहरे जोखिम के अन्तर्गत नहीं आती और उस पर, न्यायालय में, आगे भलीभांति अभियोजित किया जा सकता है।

ग) **स्वयं को अपराध मे फंसाने के विरूद्ध निषेध**

किसी अपराध का अभियुक्त, कोई व्यक्ति अपने विरूद्ध गवाह बनने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा। दांडिक कानून का मूल सिद्धान्त है कि अभियुक्त को तब तक निर्दोष समझा जाना चाहिए जब तक अपराध सिद्ध नहीं हो जाता। यह अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है कि वे अपराध को साबित करे।

प्रैस की स्वतंत्रता

भारतीय संविधान में प्रेस की स्वतंत्रता के बारे में अलग से कुछ नहीं दिया गया है। यह अनु0 19 में निहित है, जिसमें वाणी एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी गई है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में न केवल अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता है अपितु अन्यों के विचारों की अभिव्यक्ति को समझने की भी आवश्यकता जताई गई है। व्यक्तियो के मामले में स्वतंत्रताओं की सीमा पर जो प्रतिबंध हैं, वह प्रैस पर भी लागू हाते हैं। प्रैस पर लागू होने वाले कानूनों में शामिल हैः

1. कराधान,
2. औद्योगिक संबंधों पर लागू कानून,
3. कर्मचारियों की सेवा की परिस्थितियों के कानून,
4. मानहानि, सदन एवं न्यायालय आदि की अवहेलना।

अनु0 19 में 'एअरवेज़ केस' में (फरवरी,1995) अपनी व्याख्या में, सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया कि स्वायत्त निकाय के माध्यम से विचार अभिव्यक्त करने पर भी प्रैस सरकार के नियमों में बंधी है।

5.19 अनुच्छेद 21

5.19.1 जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण– सिवाय कानून के द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार, किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन अथवा व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा/रखा जाएगा।

अनुमानित अधिकार

समेकित अथवा अनुमानित अधिकार नागरिकों के वेह अधिकार हैं जो संविधान द्वारा स्पष्टतया उपलब्ध नहीं कराए गए हैं अपितु संविधान के विभिन्न प्रावधानों की उदार व्याख्या से उत्पन्न हुए है।

अनु0 21 से कुछ अनुमानित अधिकार इस प्रकार हैः–

1. स्वच्छ वातावरण का अधिकार
2. कर्मचारियों के स्वास्थ्य का अधिकार।
3. निजी गोपनीयता का अधिकार। (अर्थात् अकेला छोड़ दिया जाए)
4. सम्मान के साथ जीने का अधिकार।
5. कर्मचारियों को मनमाने ढंग से निलंबित करना एवं वेतन न देने के विरूद्ध अधिकार।
6. परीक्षण आधीनों के लिए, द्रुतता से परीक्षण का अधिकार
7. क्रूर दंड देने के विरूद्ध, अधिकार
8. आश्रय का अधिकार

5.19.2 सह अनुच्छेद, सिवाय कानून द्वारा स्थापित कार्यविधि के जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार उपलब्ध कराता है। समय के साथ, पिछले वर्षों के व्यतीत होने पर इस अनुच्छेद में व्यापक परिवर्तन हुआ है और यह अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं मूलभूत अधिकार बन गया है। उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद की उदार व्याख्या करते हुए कई समेकित अथवा अनुमानित अधिकार

निकाले हैं। अब, यह अनुच्छेद केवल जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का ही आधार नहीं है अपितु मानवीय व्यक्तित्व के लिए सम्मान से जीवन जीने तथा अन्य सभी विशेषताओं के अधिकार के लिए भी है जो किसी भी व्यक्ति के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है। इस लिए ही, अनु0 21 संविधान के भाग–III की आधारशिला बन गया है।

5.19.3 उच्चतम न्यायालय एवं उच्चन्यायालय विभिन्न सक्रियतावादी निर्णयों के साथ अनुच्छेद का आयाम बढ़ा रहे हैं। 1992 एवं 1993 में, कुछ वृत्तिक महाविद्यालयों द्वारा प्रति व्यक्ति शुल्क प्रभारित करने के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि चौदह वर्षों की आयु तक शिक्षा का अधिकार जीवन के अधिकार का भाग है। कुछ निर्णयों में, उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि जीवन में स्वच्छता एवं स्वास्थ्यकर स्थितियां जीवन के अधिकार के भाग के रूप मे है। अभी हाल के वर्षों में, उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों ने प्रदूषण फैलाने वाले कई उद्योंगों को बंद करने का आदेश दिया है, जो प्रदूषण फैलाकर, स्वच्छ वातावरण में जीने के अधिकार का उल्लंघन कर रहे थे, उस नियम का उल्लंघन जो कि जीवन के अधिकार का एक हिस्सा है।

कानून द्वारा स्थापित प्रकिया तथा कानून द्वारा नियत प्रक्रम

कानून द्वारा स्थापित प्रकिया से तात्पर्य है परिनियम अथवा कानून में दिए गए प्रयोग एवं पद्धतियां। इस सिद्धांत के अन्तर्गत, न्यायालय, कानून की सक्षमता को ध्यान में रखकर नियम की जांच करता है और देखता है कि क्या कार्यपालिका द्वारा निर्धारित प्रकियाओं का अनुपालन किया गया है। न्यायालय, कानून के उद्देश्य से पीछे नहीं हट सकता और उसे असंवैधानिक घोषित नहीं कर सकता, जब तक कानून, कानून द्वारा स्थापित प्रकिया अपनाए बिना पास न किया गया हो। इसलिए, न्यायालय कानून को अच्छे अर्थ में समझने पर विश्वास करता है और जनमत की शक्ति पर भरोसा करता है। यह सिद्धांत व्यक्ति को केवल कार्यपालिका की कार्रवाईयों के विरूद्ध संरक्षित करता है।

दूसरी ओर, कानून द्वारा नियत प्रक्रम से तात्पर्य है कि न्यायालय को कानून, केवल कानून की सक्षमता की दृष्टि से ही नहीं देखना चाहिए अपितु, कानून के आशय से, व्यापक परिप्रेक्ष्य में दखना चाहिए। वस्तुतः इससे न्यायालय को महती शक्ति प्राप्त होती है।

भारत का संविधान, कानून द्वारा स्थापित प्रकिया उपलब्ध कराता है। परन्तु उच्चतम न्यायालय ने 1978 में मेनका गांधी मामले में, अनु0 21 की व्याख्या में ''कानून द्वारा नियत प्रक्रम'' वाक्यांश इसमें जोड़ा था। वस्तुतः अनु0 21 अब व्यक्ति को वैधानिक एवं कार्यपालिका, दोनों की कार्रवाईयों से संरक्षित करता है।

5.20. अनुच्छेद 21ए

5.20.1 शिक्षा का अधिकार– राज्य, 6 से 14 वर्षों की आयु तक सभी बच्चों को निःशुल्क एवं आवश्यक तौर पर शिक्षा, कानून द्वारा निर्धारित किए गए ढंग से उपलब्ध कराएगा।

5.21 अनुच्छेद–22

5.21.1 कतिपय मामलों में गिरफ्तारी एवं नजरबंदी के विरूद्ध संरक्षण– अनुच्छेद के अनुसार, प्राधिकारी किसी व्यक्ति को गिरफ्तार/नजरबंद करने से पूर्व, उसे उसकी गिरफ्तारी/नज़रबंदी का समुचित आधार बताएगा तभी उसे गिरफ्तार/नज़रबंद किया जा सकता है। नज़रबंद अथवा गिरफ्तार व्यक्ति को, गिरफ्तारी के 24 घंटों के भीतर (जाने के दौरान लगने वाले समय तथा छुट्टी के दिनों को छोड़कर) निकटतम उपलब्ध मजिस्ट्रेट के समक्ष अवश्य प्रस्तुत कर देना चाहिए।

5.21.2 निवारक नजरबंदी– किसी व्यक्ति को निवारक नज़रबंदी के अंतर्गत तभी गिरफ्तार किया जा सकता है जब उस व्यक्ति ने कुछ ऐसा कार्य किया हो जिससे समाज की सुरक्षा को खतरा हो अथवा उसने समाज को किसी प्रकार की हानि पहुॅचाई हो और उस पर संदेह हो अथवा उसकी तर्कसंगत संभावना हो कि उसने उपराध किया है। अनुच्छेद 22 निवारक नज़रबंदी पर लागू नहीं होता क्योंकि व्यक्ति को संदेह के आधार पर गिरफ्तार किया जाता है और वह और अधिक गंभीर अपराध न कर दे इसलिए गिरफ्तार किया जाता है। लेकिन ऐसे व्यक्तियों के संरक्षण के लिए अनुच्छेद 22 मे कतिपय प्रावधान हैं। ये प्रावधान हैंः–

क) संदेह के आधार पर, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को अधिकतम दो महीनों की अवधि के लिए नजरबंद किया जाएगा। यदि सरकार गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को इस अवधि से अधिक नजरबंद करके रखना चाहती है,तो उसे 'सलाहकार निकाय' द्वारा उस गिरफ्तारी को प्राधिकृत अवश्य करा लेना चाहिए, जोकि शुद्धतः न्यायायिक होनी चाहिए।

ख) नज़रबंद किए गए व्यक्ति को, जितना जल्दी संभव हो, उसकी गिरफ्तारी का कारण सूचित कर देना चाहिए।

ग) नज़रबंद किए गए व्यक्ति को कानूनी प्राधिकरण के समक्ष अपने पक्ष को प्रस्तुत करने के अवसर यथाशीघ्र देने चाहिए।

5.21.3 विदेशी मुद्रा संरक्षण और तस्करी निवारण अधिनियम (सीओएफईपीओएसए): तथा राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम (एनएसए) निवारक नजरबंदी की अवधि 6 महीने अथवा उससे ऊपर है। संसद को किसी व्यक्ति को निवारक आधार पर कितनी अधिकतम अवधि के लिए रखा जा सकता है, यह निर्धारित करने की शक्ति दी गई है। संसद ने निवारक नज़रबंदी अधिनिकम 1950 में पारित किया था। बाद में, 1971 में, आंतरिक सुरक्षा अधिनियम (मीसा) 1974 में विदेशी मुद्रा संरक्षण और तस्करी निवारण अधिनियम (सीओइपीजीओएसए), 1980 में, राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम पारित किए गए।

5.22 अनुच्छेद 23

5.22.1 मानव तस्करी एवं बलात् श्रम का निषेध– मानव तस्करी एवं भिक्षा मांगना तथा अन्य ऐसे बलात् श्रम निषेध हैं और इस प्रावधान का किसी भी प्रकार से उल्लंघन करना कानून के अन्तर्गत दंडनीय अपराध माना जाएगा।

5.22.2 **मानव तस्करी:** आदमियों एवं औरतों को सामान की तरह खरीदना एवं बेचना तथा बच्चों एवं महिलाओं को मानव तस्करी सहित, अनैतिक एवं अन्य उद्देश्यों के लिए खरीदना बेचना। किसी व्यक्ति की सेवाएं लेना, जहां वह कानूनन कार्य करने का हकदार नहीं है अथवा जो वह कार्य करे, उसके लिए उसे पारिश्रमिक दिया जाए, वहां उससे बलात् कार्य करना निषेध है। किसी से भी उसकी इच्छा के विरूद्ध श्रम अथवा सेवा बलात् नहीं करवाई जा सकती चाहे उसके लिए उसे पारिश्रमिक ही क्यों न दिया जाना हो यदि पारिश्रमिक, न्यूनतम वेतनों से कम है तो यह अनुच्छेद 23 के अन्तर्गत बलात् श्रम कराना माना जाएगा।

5.23 अनुच्छेद 24

5.23.1 जोखिमों वाली सेवाओं में बच्चों को रोजगार देने का निषेधः 14 वर्ष से कम आयु के किसी भी बच्चे को किसी फैक्टरी अथवा खदान अथवा जोखिम वाले रोजगार में नहीं लगाया जाएगा।

5.23.2 यह प्रावधान सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा बच्चो के जीवन की सुरक्षा के हित में है। एम.सी. मेहता बनाम तमिलनाडु राज्य मामले में, उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया था कि राज्य प्राधिकरणों को सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में तथाकथित कार्य कर रहे लाखों बच्चों के आर्थिक, सामाजिक एवं मानवीय आधार पर अधिकारों को संरक्षित करना चाहिए।

5.24 धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार

5.24.1 भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य है। परन्तु यह अधार्मिक अथवा नास्तिक नहीं है। यह भारत में प्राचीन सिद्धांत है कि यह सभी धर्मों का संरक्षण करता है परन्तु किसी में भी हस्तक्षेप नहीं करता। राज्य को व्यक्तियों के बीच परस्पर संबंधों से मतलब है न कि व्यक्ति और भगवान के बीच के संबंधों से।

5.24.2 धर्म क्या है? धर्म का आधार उन विश्वासों अथवा सिद्धांतों की प्रणाली है जिसमें पंडितों/धर्म गुरूओं द्वारा यह माना जाता है कि धर्म लोगों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रेरक होता है।

5.25. अनुच्छेद 25

5.25.1 विवेक, धार्मिक मत प्रकट करना, पंथ अनुसरण एवं धर्म के प्रचार की स्वतंत्रताः सामाजिक, सुव्यवस्था नैतिकता तथा स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, सभी व्यक्ति विवेकपूर्ण स्वतंत्रता एवं धार्मिक मत प्रकट करने, पंथ अनुसरण करने और धर्म प्रचार के लिए मूल का अधिकार रखते हैं।

5.25.2 लेकिन, धर्म के प्रचार से आशय व्यक्ति को किसी धर्म विशेष की ओर आकर्षित करना अथवा लालच देकर, उसमें शामिल करना नहीं है।

धर्म विवेकः– नागरिक, जिस भी ढंग से, भगवान के साथ अपने स्वंय के संबंध को स्थापित करना चाहे, यह उसकी आंतरिक पूर्ण स्वतंत्रता पर निर्भर है।

धर्म मत प्रकट करनाः अपने धार्मिक विश्वास एवं भावनाओं को खुले रूप से, मुलता से प्रकट करना।

धर्म पंथ अनुसरणः अपने धार्मिक विश्वासों को प्रकट करना एवं अपने धर्म के द्वारा निर्धारित कर्तव्यों, परंपराओं एवं अनुष्ठानों को क्रियान्वित करना।

धर्म प्रचार करनाः अन्यों की आंतरिक उन्नति के लिए अपने धार्मिक विचारों को फैलाना एवं प्रचारित करना।

5.25.3. **धार्मिक स्वतंत्रता पर प्रतिबंध**

क) **धार्मिक स्वतंत्रता सार्वजनिक सुव्यवस्था नैतिकता एवं स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए हैंः–** अर्थात् धर्म के नाम पर कोई अस्पृश्यता का अनुसरण नहीं कर सकता। कोई भद्दी पोशाक नहीं पहन सकता। कोई, किसी अन्य व्यक्ति को बलात् धर्म परिवर्तन नहीं करा सकता। 'कृपाण' सिख समुदाय को रखने की स्वीकार्यता है, परन्तु 'कई कृपाण' रखने की स्वतंत्रता नहीं है।

ख **धार्मिक मान्यताओं के साथ जुड़ी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक एवं धर्म निरपेक्ष क्रियाकलापों का नियंत्रणः** उदाहरण के लिए, बकरीद के अवसर पर गायों की बलि देना धर्म का आवश्यक भाग नहीं है। इसलिए, राज्य का पशुबलि निषेध कानूनें वैध है।

ग) **समाजकल्याण एवं समाजसुधारः** यह वाक्यांश यह उद्घोषणा करता है कि जहां समाज कल्याण तथा समाज सुधार एवं धार्मिक परंपरा के बीच विवाद है वहां धर्म को अवश्य झुकना होगा। धर्म के नाम पर सामाजिक बुराईयों को

नहीं पनपने दिया जा सकता, जैसे बहु विवाह, हिन्दु धर्म का आवश्यक भाग नहीं है इसलिए, नियंत्रित किया जा सकता है। इसी प्रकार सती प्रथा एवं देवदासी प्रथाएं।

धर्म परिवर्तन

भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है, अनुच्छेद 25–28 में धर्म निरपेक्षता का सार दिया गया है तथा संविधान की प्रस्तावना में इसे स्पष्ट तौर पर प्रमाणित किया गया है, देश द्वारा लोगों को, सामाजिक सुव्यवस्था, नैतिकता, स्वास्थ्य तथा इसी प्रकार की बातों को ध्यान में रखते हुए, धार्मिक विवेक की स्वतंत्रता तथा मुक्तता से अपने धार्मिक मत को व्यक्त करने, अनुपालन करने तथा धर्म के प्रचार का अधिकार दिया गया है।

अनु0 25.1:– यह विवाद का विषय रहा है कि क्या अनु0 25.1 को किसी व्यक्ति द्वारा दूसरों को अपने धर्म में लाने की अनुमति देता है, ऐसा समझा जाए। परन्तु 1977 में रेव.स्टैनीस्लाड बनाम मध्यप्रदेश नामक, संबंधित मामलों के समूह में तथा अन्य मामले में, उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि अनु0 25.1, धर्म परिवर्तन का अधिकार नहीं देता अपितु नागरिक को केवल अपने स्वयं के धर्म के मत को प्रचारित करने का अधिकार देता है।

उच्चतम न्यायालय ने मध्यप्रदेश तथा ओडिशा में 1968 में बलपूर्व, धोखाधड़ी तथा प्रलोभन–आधारित ग़ैरकानूनी ढंग से धर्म परिवर्तनों के बारे में बने कानून पर अपना फैसला सुनाया था।

5.26. **अनुच्छेद 26**

5.26.1 धार्मिक कार्यों का प्रबंधित करने की स्वतंत्रता– सार्वजनिक सुव्यवस्था नैतिकता एवं स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए, प्रत्येक धार्मिक पंथ अथवा उसके किसी एक भाग को अधिकार होगा–

क) धार्मिक एवं पूर्त उद्देश्यों के लिए संस्थान स्थापित करना एवं उनका प्रबंधन करना।

ख) धार्मिक मामलों में अपने कार्यों को प्रबंधित करना।

ग) चल एवं अचल संपत्तियों का स्वामित्व एवं अधिग्रहण, तथा

घ) ऐसी संपत्तियों को कानून के अनुसार प्रशासित करना।

5.27. अनुच्छेद 27

5.27.1 किसी धर्म विशेष की उन्नति के लिए करों के भुगतान की स्वतंत्रता– किसी भी व्यक्ति को धार्मिक उद्देश्यों के लिए किसी भी प्रकार के करों को चुकाने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। परन्तु यदि सरकार ने किसी धार्मिक पंथ विशेष के लिए कोई सेवा की है तो सरकार भक्तों से शुल्क प्रभारित करने के लिए स्वतंत्र है।

5.28 **अनुच्छेद 28**

5.28.1 कतिपय शैक्षणिक संस्थानों में धार्मिक उपदेश अथवा धार्मिक पूजा में उपस्थित होने की स्वतंत्रता – शैक्षणिक संस्थानों को निम्नलिखित चार श्रेणियों में बांटा गया है:

क) पूर्णतः सरकार के द्वारा प्रबंध किया जाता हो।

ख) सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त।

ग) राज्य निधियों से सहायता प्राप्त।

घ) राज्य द्वारा शासित, परन्तु धार्मिक दान के अन्तर्गत स्थापित।

5.28.2 प्रथम मामले में, कुछ भी धार्मिक अनुदेश नहीं हो सकते। द्वितीय एवं तृतीय मामलों में, धार्मिक अनुदेश प्रदान किए जा सकते हैं परन्तु छात्रों को

ऐसे अनुदेशों/प्रवचनों को सुनने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। चर्तुथ मामले में, जहां तक धार्मिक प्रवचनों/अनुदेशों का संबंध हैं, कोई प्रतिबंध नहीं है।

5.29 **अनुच्छेद 29**

5.29.1 अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण– नागरिकों का कोई भी वर्ग, भारत के किसी प्रदेश अथवा उसके किसी भाग में भी रहता हो, उसकी बोली भाषा विशिष्ट हो, भाषा की लिपि अलग हो या संस्कृति अलग हो, उसे अपनी बोली, भाषा, लिपि को संरक्षित रखने का अधिकार है।

5.30 **अनुच्छेद 30**

5.30.1 अल्पसंख्यकों को शैक्षणिक संस्थानों को स्थापित एवं शासित करने का अधिकार– सभी अल्पसंख्यकों को, चाहे वे धर्म आधारित हों अथवा भाषा पर आधारित हों, अपनी रूचि के शैक्षणिक संस्थानों को स्थापित करने एवं शासित करने का अधिकार है।

5.30.2 यह धार्मिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक संस्थानों को अचल संपत्ति के स्वामित्व, अधिग्रहण एवं निपटान का अधिकार देता है। राज्य ऐसी संपत्ति के अधिग्रहण के मामले में देय प्रतिपूर्ति देगा।

5.30.3 भाषा,संस्कृति अथवा लिपि को शैक्षणिक संस्थानों के माध्यम से संरक्षित किया जा सकता है। अनु0 30(1) में संस्थानों की स्थापना' तथा 'शासन' का अधिकार दिया गया है। शासन से तात्पर्य संस्थान के कार्यों के प्रबंधन करने से है।

अल्पसंख्यक संस्थान एवं विनियामक उपाय

अनुच्छेद 30, अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा संस्थान को स्थापित करने एवं शासित करने की अनुमति प्रदान करता है। परन्तु राज्य, ऐसे संस्थानों की कार्यप्रणाली को नियंत्रित/विनियमित कर सकते है। विनियमों को, सुसंगतता की दोहरी जांच को पास करना चाहिए एवं अल्पसंख्यक समुदाय के लिए शिक्षा का प्रभावी होना चाहिए।

उच्चतम न्यायालय ने पाया कि शासन के अधिकार से तात्पर्य बुरे शासन करने से नहीं है। यह भी कि, प्रबंधन प्रभावी होना चाहिए परन्तु विश्वविद्यालय प्रबंधन निकायों के गठन एवं कार्मिकों को नियंत्रित नहीं कर सकते। अध्यापकों के चयन के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह प्रशासन के कार्य का एक भाग है। परन्तु विश्वविद्यालय, चयन के लिए मूलभूत शैक्षणिक योग्यता निर्धारित कर सकता है।

5.31.**अनुच्छेद 32**

5.31.1 संवैधानिक उपायों का अधिकार– अनुच्छेद 32 उच्चतम न्यायालय द्वारा मूलभूत अधिकारों को लागू करने के लिए संस्थागत ढांचा उपलब्ध कराता है। डा0 बी0आर0 अम्बेडकर ने इस अनुच्छेद को ''मूलभूत अधिकारों का मूलभूत'' और संविधान का हृदय एवं आत्मा कहा है।

5.31.2 मूलभूत अधिकारों को लागू करने के लिए, उच्चतम न्यायालय को, अनु0 32 के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के समादेश याचिका को जारी करने की

शक्तियां दी गई है। समादेशों याचिका को जारी करने की संकल्पना यूनायटेड किंगडम से ली गई है। पांच प्रकार की समादेश याचिकाएं निम्नानुसार हैंः–

क) बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिकाः इसका शाब्दिक तात्पर्य है 'एक निकाय का होना' अर्थात् न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जाने के लिए। इस प्रकार की समादेश याचिका आम व्यक्ति तथा राज्य दोनों के विरूद्ध, उनके द्वारा मनमाना आचरण करने पर, किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बचाव के लिए, जारी किया जाता है। पीड़ित व्यक्ति ऐसी कार्रवाई के विरूद्ध क्षतिपूर्ति का दावा तक कर सकता है।

ख) परमादेशः इसका शाब्दिक तात्पर्य है'समादेश'। इस प्रकार की समादेश याचिका को केवल कानूनी अधिकारों को लागू करने के उद्देश्य से सार्वजनिक प्राधिकरण अथवा सरकारी अधिकारी तथा अधीनस्थ न्यायालयों के विरूद्ध जारी किया जाता है। लेकिन, इस समादेश याचिका को राष्ट्रपति अथवा राज्यपालों के विरूद्ध जारी नहीं किया जा सकता। यह भी कि समादेश याचिका द्वारा गैर सरकारी अधिकार लागू नहीं किए जा सकते।

ग) निषेध याचिकाः इस प्रकार की समादेश याचिका उच्चतर न्यायालयों द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों अथवा अर्ध न्यायायिक निकायों (न्यायाधिकरणों आदि) को तब जारी की जाती हैं जब अधीनस्थ न्यायालय/न्यायाधिकरण अपने न्यायाधिकार से अधिक बढ़कर आदेश/कार्रवाई करते हैं। इसका उद्देश्य अधीनस्थ न्यायालयों अथवा अर्ध न्यायायिक निकायों को उनकी अपनी–अपनी न्याय व्यवस्था की सीमाओं में रखना है।

'परमादेश याचिका' तथा 'निषेध याचिका' के बीच अंतर यह है कि 'परमादेश' को न्यायायिक के साथ–साथ प्रशासनिक प्राधिकरणों के विरूद्ध जारी किया जा सकता है जबकि 'निषेध' को केवल न्यायायिक अथवा अर्ध न्यायायिक प्राधिकरणों के विरूद्ध जारी किया जा सकता है।

घ) अत्प्रेषण लेख याचिकाः यह निषेध याचिका के भांति है। अंतर केवल इतना है कि यह याचिका अधीनस्थ न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण द्वारा अपने क्षेत्राधिकार से अधिक बढ़ने पर उनके आदेश को दबाने के लिए जारी की जाती है। जबकि निषेध याचिका अधीनस्थ न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण को, अपने क्षेत्राधिकार को अधिक व्यापक मानकर मामले की जांच में आगे बढ़ने से रोकने के लिए जारी की जाती है। इस समादेश याचिका को जारी करने का उद्देश्य, अधीनस्थ न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण के क्षेत्राधिकार को यह जता कर सुरक्षित रखना है कि वे अपनी सीमाओं में रहकर कार्य कर रहे हैं और जिस क्षेत्राधिकार के हकदार नहीं हैं वहां अनाधिकार प्रवेश नहीं कर रहे।

ड़) अधिकार पृच्छाः इसका शाब्दिक अर्थ हैः ''आपका क्या अधिकार है''। इस प्रकार की समादेश याचिका जारी करके यह सुनिश्चित् करना है कि जो व्यक्ति, सरकारी/सार्वजनिक कार्यालय में अधिकारी है वह उस कार्यालय में पद पर बैठने में अर्हता प्राप्त है।

संविधान में याचिकाओं को जारी करने के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की है और इसे न्यायालयों के निर्णय पर छोड़ दिया गया है।

उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार की समादेश याचिका के बीच अंतर

1. उच्चतम न्यायालय केवल मूलभूत अधिकारों के उल्लंघन किए जाने के मामलों में ही (अनु0 32 के अन्तर्गत) समादेश याचिका जारी करता है, जबकि उच्च

न्यायालय (अनु0 226 के अन्तर्गत) न केवल मूलभूत अधिकारों को लागू करने के लिए समादेश जारी कर सकते हैं अपितु किसी अन्य प्रकार के अन्याय अथवा अनैतिकता की सुनवाई हेतु समादेश भी जारी कर सकते हैं बशर्ते कतिपय शर्तों का अनुपालन किया गया हो। वस्तुतः एक प्रकार से उच्च न्यायालय का समादेश जारी करने का क्षेत्राधिकार उच्चतम न्यायालय से अधिक व्यापक है।

2. अनु0 32 उच्चतम न्यायालय को समादेश याचिकाओं को जारी करने की ड्यूटी सौंपता है जबकि अनु0 226 द्वारा उच्च न्यायालय पर ऐसी कोई ड्यूटी नहीं लगाई गई है।
3. उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार समूचे देश में है, जबकि उच्च न्यायालय केवल राज्य विशेष तथा संघ शासित राज्य में, जहां तक उसकी क्षेत्राधिकार सीमा आती है वहां तक के क्षेत्र पर अधिकार है।

क्या संविधान के आरंभिक दौर से मूलभूत अधिकारों में कोई कटाव आया है?

इस बात पर काफी बहस हुई है कि संविधान के आरंभ होने से लेकर क्या मूलभूत अधिकारों में कोई कटाव हुआ है। मूलभूत अधिकारों के कटाव के पक्ष में निम्न तर्क दिए जाते हैं:

1. निदेशात्मक सिद्धान्त आवश्यक तौर पर मूलभूत अधिकारों की कीमत पर लागू किए जाते हैं।
2. संविधान में मूलभूत कर्तव्यों को (भाग IV तथा अनु0 51ए) 42वें सांविधान संशोधन अधिनियम द्वारा शामिल किया गया था, जिनका पालन करना सभी व्यक्तियों के लिए आवश्यक है क्योंकि मूलभूत अधिकारों का उल्लंघन होने के मामले में, उनकी सुनवाई, मूलभूत कर्तव्यों के पालन करने पर ही होगी ।

संविधान के भाग–III से संपत्ति के अधिकार को उनके विस्तार में प्रगामी कटौती के बाद हटाना। लेकिन, मूलभूत अधिकारों में प्रगामी मजबूती भी आई है। प्रथमतः कार्य के अधिकार को मूलभूत अधिकार बनाने के प्रयास

किए गए हैं। द्वितीयतः उच्चतम न्यायालय ने सभी मूल भौतिक सुविधाओं को मिलाकर तथा उसकी कानूनी पहुंच उपलब्ध करा कर जैसे कि स्वच्छ वातावरण, जीवन के अधिकार की व्याख्या की है। तृतीयतः उच्चतम न्यायालय ने अप्रैल 1993 में प्रति व्यक्ति शुल्क के मामले में निर्णय दिया कि प्राथमिक शिक्षा का अधिकार मूलभूत अधिकार है। अंत में, उच्चतम न्यायालय हमेशा उन पत्रकारों के बचाव के लिए आगे आया है जिनकी रिर्पोटें विधायकों के विशेषाधिकारों का उल्लंघन करती हैं और विधायकों द्वारा पत्रकारों को मुक्त एवं निष्पक्ष जांच का अवसर दिए बिना, जैसा कि अनु0 21 में अधिकार दिया गया है, गिरफ्तार करने के आदेश दे दिए जाते हैं।

6. राज्य नीति के निदेशात्मक सिद्धांत

6.1 राज्य नीति के निदेशात्मक सिद्धांतों की गणना भारतीय संविधान की विलक्षण विशिष्टता है। संविधान की यह नवीन विशिष्टता आयरलैंड के संविधान से ली गई है। यह संकल्पना समूचे विश्व में संवैधानिक सरकारों में अद्यतन है जिसमें 'कल्याणकारी राज्य' की बढ़ती स्वीकार्यता है। भारत के संविधान के निदेशात्मक सिद्धांत, समाजवाद, गांधीवाद, पश्चिमी उदारतावाद तथा भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के आदर्शों का अनुपम संमिश्रण है। प्रकृत्या ये राज्य के निदेश अथवा अनुदेश हैं।

6.2 संविधान के भाग–IV में अनु0 38–51 में निदेशात्मक सिद्धांतों के प्रावधान दिए गए हैं। अनु0 38 में राज्य को स्पष्ट निदेशित किया गया है कि वह जनता के कल्याण के लिए सुरक्षित एवं सामाजिक व्यवस्था को सुव्यवस्थित रखने की प्रक्रिया अपनाए।

6.3 अनु0.37 के अनुसार निदेशात्मक सिद्धांतवाद योग्य नहीं हैं अपितु देश के शासन के लिए आधारभूत हैं और यह राज्य का कर्तव्य है कि वह राज्य नीति

के निदेशात्मक सिद्धांतों को लागू करें यदि राज्य द्वारा इन पर कार्रवाई नहीं की जाती तो कोई भी न्यायालयों में नहीं जा सकता। राज्य नीति के निदेशात्मक सिद्धांतों को स्पष्टमः वादयोग्य न बनाने के कारण हैं कि उनके लिए संसाधनों की अपेक्षा है, जोकि राज्य के पास शायद नहीं हो सकते। तथापि, आर्थिक विकास एवं वृद्धि के होने पर, राज्य को इस भाग में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयास करना चाहिए। उदाहरण के लिए, अनु0 41 में प्रतिष्ठापित, कार्य के अधिकार को आंरभ में गारंटीकृत नहीं किया जा सका था लेकिन, महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम के नियमन से, वर्ष में कम से कम 100 दिनों के लिए, प्रत्येक घर को कार्य का अधिकार दिया गया है। इसी प्रकार भारत में गरीबी के कारण बच्चों को श्रम करना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक करने के साथ–साथ अनिवार्य बनाना प्रारंभ में व्यावहारिक नहीं माना गया था और इसे राज्य नीति के निदेशात्मक सिद्धांतों के अन्तर्गत अनु0 45 में रखा गया था। अब यह सुनिश्चित किया गया है कि 6 और 14 वर्षों के बीच बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा आवश्यक है और इसे अनु0 21ए पर मूलभूत अधिकार के रूप में रखा गया है। वस्तुतः राज्य नीति के निदेशात्मक सिद्धांतों को लागू करने के लिए पूर्वापेक्षित के रूप में किंचित आर्थिक विकास की भी आवश्यकता है।

6.4 कई अन्य राज्य नीति निदेशात्मक सिद्धांत हैं जो राष्ट्र की आर्थिक स्थिति से निरपेक्ष हैं, जैसे कि एक समान सिविल संहिता जो कि एक ऐसे देश में लागू करना कठिन है जहां, निरंकुश धार्मिक अंधविश्वास अशिक्षा एवं धार्मिक समुदायों के बीच पारस्परिक भय बना रहता है। संहिता (कोड) को कानून का रूप केवल तभी दिया जा सकता है जब उचित वातावरण तैयार किया जाए एवं सभी संबंधित समुदाय इसके लिए सहमति विकसित करें। इसलिए, राज्य नीति निदेशक सिद्धांतों को तभी लागू करना है जब देश में सामाजिक आर्थिक स्थितियों में सुधार होगा।

बाद में जोड़े गए निदेशात्मक सिद्धांत

42वां संशोधन अधिनियम–1976

1. न्याय एवं निःशुल्क कानूनी सहायता के लिए समान अवसर।
2. पर्यावरण, वनों एवं जंगली जानवरों का संरक्षण।
3. उद्योगों के प्रबंधन में भागीदारी के लिए कामगारों को अधिकार।
4. बच्चों को शोषण से बचाना एवं उनके लिए गरिमामय एवं उन्मुक्त परिस्थितियों में, स्वस्थ विकास के लिए 44वां संशोधन अधिनियम–1978 अवसर उपलब्ध कराना।
5. राज्य, व्यक्तियों एवं समूहों के बीच आय, रहन–सहन, सुविधाओं एवं अवसरों की असमानताओं को कम से कम करेगा (अनु0 38(2))

6.5 भली–भॉति समझने के लिए इन सिद्धांतों को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(क) सामाजिक सिद्धांत

अनु0 38– जनता के कल्याण की प्रोन्नति के लिए सामाजिक व्यवस्था सुरक्षित रखना।

अनु0 39– आय की असमानताओं को न्यूनतम रखने का प्रयास करना।

अनु0 39बी– समाज के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व एवं नियंत्रण इस प्रकार संवितरित हो कि सबके लिए हितकारी हो।

अनु0(डी)– पुरूषों एवं महिलाओं के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन।

अनु0(ई)– कामगारों की शक्ति एवं स्वास्थ्य एवं बच्चों को कोमल बालव्यवस्था में शोषित न किया जाए।

अनु0 39(ए)– समान न्याय एवं निःशुल्क कानूनी सहायता।

अनु0 41–कतिपय मामलों में सार्वजनिक सहायता एवं शिक्षा के कार्य के अधिकार।

अनु0 42– कार्य की निष्पक्ष एवं मानवोचित् परिस्थितियों एवं मृात्व सहायता के प्रावधान।

अनु0 43 ए उद्योगों के प्रबंधन में कागारों की भागीदारी

अनु0 45 छः वर्षों की आयु से कम के बच्चों को शिक्षा एवं छोटे बच्चों को बाल्यावस्था के लिए प्रावधान

ख गांधीवादी सिद्धांत

अनु0 40 ग्राम पंचायतों का संगठन

अनु0 46 अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य कमजोर वर्गों की शिक्षा एवं आर्थिक हितों की प्रोन्नति।

अनु0 45 छः वर्षों से कम आयु के बच्चों की बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा का प्रावधान।

अनु0 48 गायों, बछड़ों एवं अन्य दुधारू एवं बोझा ढ़ोने वाले पशुओं के वध करने का निषेध करते हुए आधुनिक एवं वैज्ञानिक आधार पर पशुपालन एवं कृषि कार्य कराना।

अनु0 47 – नशीले पेयपदार्थों एवं ड्रग्स का मद्यनिषेध जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

अनु0 43 – कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना।

ग) पश्चिमी उदारतावादी सिद्धांत

अनु0 44– नागरिकों के लिए समान सिविल संहिता

अनु0 45– छः वर्षों से कम आयु के बच्चों को शिक्षा एवं बाल्यावस्था देखभाल के लिए प्रावधान

अनु0 50 कार्यपालिका से न्यायपालिका को अलग रखना

अनु0 51 अन्तरराष्ट्रीय शांति एवं मैत्री बढ़ाना

अनु0 49 ऐतिहासिक स्मारकों का संरक्षण/परिरक्षण

संविधान के अन्य भागों में दिए गए निदेश (भाग–IV में नहीं)

अनु0 350ए भाषायी अल्पसंख्यकों के बच्चों को प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में अनुदेश देने के लिए पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकरण एवं प्रत्येक राज्य को आदेश देना।

अनु0 351 केन्द्र को हिंदी भाषा के प्रसार के लिए प्रोन्नत करने के आदेश देना जिससे कि यह भारत की मिश्रित संस्कृति के सभी अंगों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके।

अनु0 335 अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के दावों को राज्य अथवा केन्द्र के कार्यों के संबंध में सेवाओं एवं पदों पर नियुक्तियों के लिए प्रशासन की कार्य कुशलता को बनाए रखने के लिए सामंजस्य पूर्ण ढंग से विचार किया जाएगा। अर्हक अंकों में छूट की अनुमति 82वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा की गई थी।(2000)

यह निदेश भी गैर–वाद–योग्य हैं। निदेश के क्रियान्वयन में अधिकतम प्रगति अनु0 39(बी) के संबंध में हुई है।

6.6 राज्य नीति के निदेशात्मक सिद्धांतों का क्रियान्वयन

6.6.1 संविधान के आरंभ होने से लेकर राज्य नीति के निदेशात्मक सिद्धांतों के क्रियान्वयन में कई विधि–निर्माण हुए हैं। वास्तव में, सबसे पहला संशोधन अधिनियम भूमि सुधारों को लागू करने के लिए था। इसके बाद 4था, 17वां, 42वां एवं 44वां संशोधन अधिनियम बने।

6.6.2 73वां संविधान संशोधन अधिनियम (1992) अनु0 40 को क्रियान्वित करने का अनुसरण है।

6.6.3 वर्ष 1990 में, कार्य के अधिकार को मूलभूत सिद्धांत (एफ.आर.) के रूप में बनाने के लिए बिल प्रस्तुत किया गया था, परन्तु तत्कालीन सरकार अधिक दिनों तक नहीं चली और बिल गिर गया।

6.6.4 14 वर्षों तक की आयु के बच्चों के लिए, शिक्षा का अधिकार उपलब्ध कराने हेतु 86वां संविधान संशोधन अधिनियम (2002) अधिनियमित किया गया था।

6.6.5 कामगारों के लिए मानवोचित कार्य की परिस्थितियां बनाने के लिए कई फैक्टरी कानून हैं।

6.6.6 सरकार की आर्थिक नीति के मुख्य पहलूओं में से एक, के रूप में, कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना है और इस उद्देश्य के लिए खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग है।

6.6.7 1990 में संसद द्वारा कामगारों के प्रबंधन में भागीदारी के लिए बिल लाने का प्रयास किया गया था परन्तु, तत्कालीन सरकार के गिरने से बिल गिर गया था।

6.6.8 एक समान सिविल संहिता (यू/सी/सी) के संबंध में सरकार की स्थिति, देश में, इस मामले में संवेदनशील हो जाती है, जबतक संबंधित धार्मिक समूह आगे नहीं आते और एक समान सिविल संहिता को लागू करने के लिए स्वैच्छिक प्रयास नहीं करते, संहिता को लागू करना उचित नहीं है। 1995 में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया था कि एक समान सिविल संहिता अवश्य लागू की जाए और केन्द्र सरकार को 'निदेश' दिया था कि एक समान सिविल सेहिता के क्रियान्वयन में की गई प्रगति से सर्वोच्य न्यायालय को अवगत कराया जाए।

6.6.9 शिक्षा, प्रशासन एवं महिलाओं, अनुसूचित जातियो, अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लोगों सहित कमजोर वर्गों के लिए शिक्षा, प्रशासन एवं आर्थिक विषयों में अधिमानता देने की नीति, सरकारी कल्याण नीति का मजबूत घोषणा पत्र रहा है, अभी हाल में मंडल आयोग रिर्पोट को लागू करना था जिसके लिए उच्चतम न्यायालय ने 1992 में न्यायायिक अनापत्ति दी थी।

6.6.10 नई योजनाएं, जैसे कि समन्वित बाल विकास सेवाए, मध्याहन भोजन योजना तथा नशाबंदी नीति कुछ राज्यों में (उदाहरण के लिए 1993 में आंध्र प्रदेश में) अनु0 47 के अनुसरण में हैं।

6.6.11 अनु0 48 के अनुपालन के लिए अन्य वस्तुओं के बीच हरित क्रांति एवं जैव प्रविधि में अनुसंधान का उद्देश्य, कृषि एवं पशुपालन को आधुनिकीकरण की ओर ले जाना है।

6.6.12 पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986: वन्य जीव अधिनियम राष्ट्रीय वन नीति, 1988 अनु0 48ए के कियान्वयन के लिए किए गए कुछ प्रयास हैं। 1995 में, केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय पर्यावरण न्यायाधिकरण स्थापित किया था।

6.6.13 भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ए/एस/आई) को ताजमहल जैसे स्मारकों के संरक्षण का कार्य सौंपा गया है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने, 1992 में, बाद के महीनों में पुरी के मंदिर को जर्जर अवस्था से बचाव के लिए कार्य हाथ में लिया था।

6.6.14 अनु0 50 के अनुसरण में जिला स्तर पर कतिपय न्यायायिक शक्तियों के निष्पादन को अधिकार वंचित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता में संशोधन किए गए।

6.6.15 अन्तरराष्ट्रीय शांति बनाए रखने के भारत के कई प्रयास हैं जैसे कि संयुक्त राष्ट्र के शांति बनाए रखने के परिचालनों में भाग लेना (सोमानिया 1992/93, सिएरालिओन 2000), गुट निरपेक्ष सम्मेलन में नेतृत्व एवं पथप्रर्दशक का कार्य करना तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य।

6.7 मूलभूत अधिकारों एवं निदेशात्मक सिद्धांतों के बीच अंतर

6.7.1 इन दोनों के बीच तीन महत्वपूर्ण अंतर हैं जो कि निम्नानुसार हैं

क) मूलभूत अधिकार जहां भारत में, राजनैतिक लोकतंत्र की आधारशीला उपलब्ध कराते हैं, निदेशात्मक सिद्धांत भारत में सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र की विशेषता वर्णित करते हैं।

ख) मूलभूत अधिकार राज्य के नकारात्मक दायित्व हैं अर्थात् राज्य की कार्यवाहियों के विरूद्ध निषेधाज्ञाएं हैं। इसके विपरीत, निदेशात्मक सिद्धांत नागरिकों के प्रति राज्य की सकारात्मक बाध्यता है।

ग) दोनों के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर यह है कि जहां मूलभूत अधिकार वाद योग्य है, निदेशात्मक सिद्धांत गैर वाद योग्य है, जिससे उनकी कानूनी पवित्रता में कमी नज़र आती है।

6.8 मूलभूत अधिकारों एवं निदेशात्मक सिद्धांतों के बीच संबंध

6.8.1 यद्यपि मूलभूत अधिकारो (भाग–III) के समान नहीं है, और निदेशात्मक सिद्धांत वाद योग्य नहीं हैं, अनु0 37 में यह कहा गया है कि निदेशात्मक सिद्धांत देश के शासन की आधारशिला हैं और यह राज्य का कर्तव्य होगा कि यह कानून बनाने में निदेशात्मक सिद्धांतों का प्रयोग करे। परन्तु यहां निदेशात्मक सिद्धांतों की वैधता का प्रश्न उत्पन्न होता है, यदि राज्य द्वारा बनाए गए कानूनों से उन्हें प्रभावी बनाया जाता है तो यह मूलभूत अधिकारों का उल्लंघन होगा। उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न मामलों में 'सुसंगति के सिद्धांत अथवा वाद/मत विकसित किए हैं। आगे, इसमें कहा गया है कि दोनों, मूलभूत सिद्धांत निदेशात्मक सिद्धांत वास्तव में एक दूसरे के पूरक हैं और एक साथ समन्वित योजना गठित करते हैं। लेकिन, यह भी कहा गया है कि जहां ऐसा संभव नहीं है, मूलभूत अधिकार निदेशात्मक सिद्धांतों से प्रबल रहेंगे। इस आधार पर उच्चतम न्यायालय ने बैंक राष्ट्रीयकरण अधिनियम एवं राज भत्ता उन्मूलन अधिनियम को असंवैधानिक कहा था।

6.8.2 संसद ने, 25वें संशोधन अधिनियम, 1971 द्वारा एक नया अनु0 31–सी बनाया जिसमें कहा गया है कि यदि राज्य, निदेशात्मक सिद्धांतों को महत्व देते हुए कोई कानून बनाता है, जैसे कि अनु0 39 (ए) तथा अनु0 39 (बी) और इस प्रक्रिया में अनु0 14, 19, एवं 30 में गिनाए गए मूलभूत अधिकारों का उल्लंघन होता है, ऐसा (ऐसे) कानून, किसी न्यायालय में (1) तीन मूलभूत अधिकारों का अतिक्रमण करने के लिए (2) सवाल जवाब के लिए व्यर्थ नहीं ठहराए जा सकते। 25वां संशोधन, 1973 में केशवानंद भारती मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष चुनौती रूप में प्रस्तुत हुआ था न्यायालय ने 25वें संशोधन अधिनियम को समर्थन दिया था, परन्तु दूसरे भाग को इस, आधार पर नकार दिया था कि 'न्यायायिक समीक्षा' संविधान के 'मूल ढांचे' का भाग है जिसे कोई भी प्राधिकारी परिवर्तित नहीं कर सकता।

6.8.3 संसद ने पुनः अनु0 31–सी को 42वें संशोधन (1976) द्वारा संशोधित करके सभी निदेशात्मक सिद्धांतों को इसमें शामिल करके इसका विस्तार किया। परन्तु इस संशोधन को (42वें संशोधन के अन्तर्गत किया गया) उच्चतम न्यायालय द्वारा मिनर्वा मिल्स मामले (1980) में इस आधार पर असंवैधानिक घोषित किया गया कि इससे न्यायिक अधिकार का संतुलन प्रभावित होता है। वस्तुतः वर्तमान स्थिति यह है कि केवल अनु0 39 (ए) तथा अनु0 39(बी) को अनु0 14, 19 पर वरीयता दी जा सकती है न कि सभी निदेशात्मक सिद्धांतों पर। (अनु0 31) अब नहीं है, 44वें संशोधन के द्वारा, संपत्ति का अधिकार, (पहले अनु0 31 के अन्तर्गत था) अनु0 300 ए के अन्तर्गत संवैधानिक अधिकार बना दिया गया है। न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया है कि भाग–III एवं IV में संतुलन है और जब निर्णय दिया जाए तो दोनों का सामंजस्य रखना अधिक महत्वपूण है, अपेक्षाकृत निदेशों को किसी प्रकार की सामन्य तौर पर प्राथमिकता देने के।

6.9.निदेशात्मक सिद्धांतों का महत्व

6.9.1 निदेशात्मक सिद्धांतों की आलोचना, मुख्यतः उनकी कानूनी रूप से संस्वीकृति को लेकर की जाती रही है, परन्तु अनु0 37 में, निदेशात्मक सिद्धांतों को, देश के शासन में आधारशिला के रूप में माना गया है। यह बात भी ध्यान में रखी जाए कि यह व्यावहारिक आवश्यकता के कारण है(मूलतः निदेशात्मक सिद्धांतों के प्रावधानों को पूरा करने के लिए राज्यों के पास वित्त की कमी है) कि निदेशात्मक सिद्धांतों को कानूनी दर्ज़ा नहीं दिया गया न कि इसलिए कि इनका स्तर अधोवर्ती है। इस सिद्धांत न केवल संविधान परिषद् की अस्थायी इच्छा का प्रतिनिधित्व करत हैं जो कि डॉ0 बी. आर. अम्बेडकर द्वारा तथा बाद में मुख्य न्यायाधीश केनिया द्वारा देखी गई थी, अपितु संविधान परिषद् के माध्यम से व्यक्त देश की सोची समझा विद्वता का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। चूंकि सरकार, जनता के प्रति जवाबदेह है निदेशात्मक सिद्धांत सभी परवर्ती सरकारों के लिए सुस्पष्ट निर्देश देते हैं। निदेशात्मक सिद्धांत इन सरकारों की सफलता अथवा विफलताओं को मापने के लिए मापदंड उपलब्ध कराते हैं।

मौलिक/मूलभूत कर्तव्य

इन्हें भारतीय संविधान में 42वें संशोधन अधिनियम, 1976, द्वारा शामिल किया गया है। यह जापानी मॉडल पर आधारित है। राज्य के नागरिकों के दस कर्तव्य हमारे संविधान के भाग–IV ए में अनु0 51ए में शामिल करके गिनाए गए हैं।

अधिकार एवं कर्तव्य सह संबंधित हैं यह प्रत्येक नागरिक को निरंतर याद दिलाते रहते हैं कि जहॉ संविधान ने उन्हें कतिपय मूलभूत अधिकार विशिष्ट तौर पर दिए हैं, उसमें यह भी अपेक्षा है कि वे लोकतांत्रिक आचरण एवं व्यवहार के कुछ मूलभूत नियमों का पालन करें। यह तर्क दिया जाता था कि भारत में लोग केवल अधिकारों पर ही बल देते हैं और कर्तव्यों पर नहीं।

अन्य देशों में मूलभूत कर्तव्य

विश्व में किसी भी प्रमुख लोकतंत्र में मूलभूत कर्तव्य नहीं हैं। केवल जापान में ही उनका कुछ वर्णन किया गया है। फ्रांस ने केवल सरसरी तौर पर वर्णन किया है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इन देशों के लोग गैर जिम्मेदारी पूर्ण व्यवहार करते हैं। इन सभी देशों में, नागरिकों में देश भक्ति के प्रति प्रगाढ़ लगाव है जो कि शिक्षा एवं प्राथमिक कर्तव्यों में प्रशिक्षण एवं नागरिकता के उत्तरदायित्वों के परिणामस्वरूप है।

परन्तु समाजवादी देशों में कुछ मूलभूत कर्तव्य होते हैं। नागरिकों के दस कर्तव्य हैं:

1. संविधान, राष्ट्रीय ध्वज एवं राष्ट्रीय गीत का सम्मान करना और उसका पालन करना।
2. स्वतंत्रता संघर्ष के उत्कृष्ट आदर्शों को संजोना एवं अनुसरण करना।
3. भारत की एकता, अखंडता एवं संप्रभुता को कायम रखना और बचाए रखना।
4. देश की रक्षा करना एवं जब वांछित हो, राष्ट्रीय सेवा देना/राष्ट्र के लिए सेवा करना।
5. आपसी भाईचारे को बढ़ाना एवं महिलाओं के सम्मान की रक्षा करना।
6. राष्ट्र की मिलीजुली संस्कृति की गौरवशाली परंपरा को संजोकर रखना।
7. प्राकृतिक वातावरण का संरक्षण एवं सुधार करना
8. वैज्ञानिक मनःस्थिति, मानवतावाद एवं जिज्ञासु प्रवृति को विकसित करना।
9. सार्वजनिक संपत्ति का बचाव एवं हिंसा से शपथपूर्वक दूर रहना।
10. व्यक्तिगत एवं सामूहिक गतिविधि के सभी आयामों में उत्कृष्टता के लिए प्रयासरत रहना।

6.10 वितरणपरक न्यायः इसका तात्पर्य है कि आर्थिक विकास के लाभ सभी के द्वारा बांटे जाएंगे न कि कुछ के द्वारा समायोजित किए जाएंगें। यह भी कि संपत्ति का कोई केन्द्रीकरण नहीं होगा। यह भावना संविधान के अनु0 39(ए) तथा (बी) में दी गई है।

7.संघीय कार्यपालिका

7.1.1 अनु0 52 के अनुसार 'भारत का एक राष्ट्रपति होगा' तथा अनु0 53 के अनुसार संघ की कार्यपालिका के अधिकार राष्ट्रपति के पास निहित होंगे।

7.2.1 राष्ट्रपति का चयनः राष्ट्रपति के चुनाव से संबंधित प्रावधान अनुच्छेदों 54 एवं 55 में तथा राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति (चुनाव) अधिनियम 1952 और 1974 में संशोधित, अधिनियम में दिए गए हैं। राष्ट्रपति, निर्वाचक मंडल द्वाराचुने जाते हैं जिसमें राज्य विधान परिषदों (एम.एल.ए) के चुने गए सदस्यों तथा संसद सदस्यों (एम.पी) के माध्यम से एकल हस्तांतरणीय मत के द्वारा समानुपातिक प्रतिनिधित्व होता है। विधानसभा के सदस्य एवं संसद सदस्य के मत का मूल्य इस प्रकार होता है कि राज्य एवं केन्द्र के बीच संतुलन बना कर राष्ट्रपति के कार्यालय की वास्तविक फैडरल विशेषता को बरकरार रखा जाता है।

योजना आयोग

योजना आयोग का गठन 1950 में एक मंत्रिमंडलीय संकल्प पारित करके हुआ था इसलिए यह गैर–संवैधानिक निकाय है। कई बार इसे अतिरिक्त संवैधानिक निकाय भी कहा जाता है। इसका गठन मंत्रिमंडल द्वारा 'आर्थिक एवं सामाजिक योजना' विषय का लाभ उठाते हुए, जोकि समवर्ती सूची में शामिल है, किया गया था। यह संघ सरकार के परामर्शक निकाय के रूप में कार्य करता है इस निकाय को निम्नलिखित दायित्व सौंपे गए हैंः–

1. देश के भौतिक, पूंजीगत एवं मानव संसाधनों का मूल्यांकन करना तथा उनका सबसे अधिक प्रभावी एवं संतुलित उपयोग के लिए योजना तैयार करना।
2. विकास की राष्ट्रीय प्राथमिकताओं का निर्धारण एवं वृद्धि के स्तरों को परिभाषित करना।
3. आर्थिक बाधा के कारणों को इंगित करना तथा योजना के सफलतापूर्वक निष्पादन के लिए आवश्यक शर्तों को तैयार करना।

4. योजना के प्रत्येक चरण के क्रियान्वयन के लिए वांछित मशीनरी की प्रकृति निर्धारित करना।

5. आवधिक रूप से की गई प्रगति को आंकना, और प्रचलित आर्थिक परिस्थितियों, नीतियों उपायों एवं विकास कार्यक्रमों आदि में आवश्यक परिवर्तनों के संबंध में सिफारिशें करना।

मूलतः यह निकाय, केन्द्र सरकार के मंत्रालयों तथा राज्य सरकारों के साथ पारस्परिक सहयोग एवं परामर्श में कार्य एवं संघ मंत्रिमंडल को सिफारिशें करने के लिए गठित किया गया था। लेकिन, धीरे–धीरे आयोग के क्रियाकलाप समूचे प्रशासन पर, सिवाय रक्षा एवं विदेश मामलों के, विस्तारित हो गए हैं। निकाय की आलोचना की जाती है क्योंकि इसने, संवैधानिक निकायों, जैसे वित्त आयोग के कार्यों पर अतिक्रमण किया है और राज्यों की वित्तीय स्वायत्तता को भी टकराहटें दी हैं।

संघ के स्तर पर आलोचकों की बात आंशिक रूप से सत्य है क्योंकि केन्द्र में, योजना प्रक्रिया में निश्चित् रूप से यह वित्त आयोग पर भारी पड़ता है क्योंकि इसने उसके कार्य एवं उत्तरदायित्वों पर अतिव्याप्ति की है। परन्तु वे राज्यों में इसकी भूमिका के बारे में आलोचना करने में न्यायसंगत नहीं है क्योंकि वहां पर यह हमेशा एक परामर्शक की भूमिका में ही होता है। यह भी कि, वित्तीय सहायता का लाभ लेने से किसी भी प्रकार से फैडरल विशेषता पर क्षति नहीं पहुंचती।

7.3.1 विधानसभा सदस्य के मत का मूल्य

राज्य की जनसंख्या

(राज्य विधान परिषद् के कुल चुने गए सदस्य)

7.3.2 इसका तात्पर्य है कि विधान सभा सदस्य के मत का मूल्य एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न है। ऐसा, जनसंख्या की दृष्टि से प्रतिनिधित्व में समानता लाने के लिए किया गया है।

7.4.1 संसद सदस्य के मत का मूल्य

(28 राज्यों तथा दो संघशासित क्षेत्रों के लोकसभा के मतों का मूल्य)

(संसद के कुल चुनु गए सदस्य)

राष्ट्रपति पद के लिए चयन की अर्हताएं

क) उसे भारत का नागरिक अवश्य होना चाहिए।

ख) उसने 35 वर्ष की आयु पूरी कर ली हो।

ग) वह लोकसभा के सदस्य के रूप में चुने जाने के लिए अर्हता प्राप्त अवश्य हो।

घ) वह भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार अथवा किसी स्थानीय अथवा अन्य प्राधिकरण के अन्तर्गत लाभ के किसी पद पर कार्यरत ना रहा हो।

लेकिन, निम्नलिखित व्यक्तियों को किसी कार्यालय के लाभ के पद पर नहीं माना जाता अतः वे राष्ट्रपति के रूप में चुने जाने के लिए अयोग्य नहीं हो सकतेः

क) भारत का राष्ट्रपति अथवा उपराष्ट्रपति।

ख) किसी राज्य का राज्यपाल।

ग) केन्द्र अथवा किसी राज्य का कोई मंत्री

7.5.1 राष्ट्रपति पद के लिए चुने जाने की घोषणा करने के लिए राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार को वैध मतों के 50ः से ऊपर मत प्राप्त करने वांछनीय हैं। राष्ट्रपति के चुनाव के संबंध में किसी प्रकार के विवाद के मामले में केवल

उच्चतम न्यायालय ही, मामले में हस्तक्षेप करने के लिए प्राधिकृत हैं। राष्ट्रपति का चयन अप्रत्यक्ष रूप से होता है। अप्रत्यक्ष से चयन करने के दो कारण हैंः–

क) चूंकि संसदीय सरकार होती है, वास्तविक अधिकार मंत्रिपरिषद् के पास होते हैं। इसलिए राष्ट्रपति का चयन जनता द्वारा प्रत्यक्ष तौर पर किया जाए और उनके पास कोई वास्तविक शक्तियां भी न हों, तो यह असंगत होगा।

ख) प्रत्यक्ष चुनाव होगा तो, समय, धन एवं मानव संसाधनों की बहुत बड़ी हानि होगी।

7.6 राष्ट्रपति के चुनाव से संबंधित विवाद

7.6.1 जहां तक विवादों का संबंध है, केवल उच्चतम न्यायालय का ही क्षेत्राधिकार है, हस्तक्षेप करने का उच्चतम न्यायालय के सामने, विवाद, केवल चुनाव प्रक्रिया पूरी होने के बाद ही लाए जा सकते हैं। निर्वाचक मंडल में रिक्तियां होने पर कोई याचिका दायर नहीं की जा सकती। यदि राष्ट्रपति के चयन को अमान्य घोषित किया जाता है, घोषणा होने तक राष्ट्रपति के कार्यों को अवैध घोषित नहीं किया जा सकता।

राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाना

संविधान के अनु0 61 के अर्न्तगत, भारत के राष्ट्रपति पर संविधान के उल्लंघन करने पर महाभियोग चलाया जा सकता है, जोकि केवल संसद द्वारा निर्णित किया जाएगा। महाभियोग प्रक्रिया प्रकृत्या अर्ध न्यायायिक है क्योंकि इस संबंध में प्रक्रिया आरंभ करने वाला संदन दो तिहाई बहुतम से (सदन के सदस्यों का 25% से कम बहुमत न हो उन सदस्यों द्वारा समर्दिट संकल्प हो तथा राष्ट्रपति को 14 दिनों के पूर्व नोटिस देने के बाद ही प्रक्रिया आंरभ करनी है। इस आशय का एक संकल्प पारित करेगा, अन्य सदन राष्ट्रपति के विरूद्ध लगाए गए आरोपों की जांच के लिए समिति गठित करेगा। राष्ट्रपति अपने बचाव के लिए भारत के महान्यायवादी अथवा अपनी इच्छानुसार किसी अन्य वकील की सेवाएं ले सकते हैं। यदि दूसरा सदन भी दो तिहाई बहुमत से संकल्प पारित कर देता है तो राष्ट्रपति को अभियुक्त माना जाएगा।

7.7 राष्ट्रपति के पद की शर्तें

राष्ट्रपति संसद के किसी भी सदन का सदस्य अथवा किसी राज्य की विधानसभा का सदस्य नहीं होगा, और यदि वह संसद के किसी सदन अथवा किसी विधान सभा का सदस्य है, और वह राष्ट्रपति चुन लिया जाता है तो उसे राष्ट्रपति का पद संभालने से पूर्व, उस सदन से अपने पद से त्यागपत्र देना होगा।

7.7.2 राष्ट्रपति किराए का भुगतान किए बिना सरकारी आवास का प्रयोग करने का हकदार है और संसद द्वारा, कानून के अन्तर्गत निर्धारित की गई परिलब्धि, में, भत्तों एवं विशेषाधिकारों को प्राप्त करने का भी हकदार है।

7.7.3 राष्ट्रपति की परिलब्धियां एवं भत्ते, उनके कार्यकाल के दौरान घटाए नहीं जा सकते।

7.8 राष्ट्रपति की कार्यकाल अवधि

7.8.1 राष्ट्रपति के कार्यकाल की अवधि अनुच्छेद 56 में दी गई हैं और इस प्रकार हैंः

राष्ट्रपति का कार्यकाल, जिस तिथि से वे पदभार ग्रहण करेंगे उस तिथि से 5 वर्षों के लिए होगा बशर्ते कि

क) राष्ट्रपति , उपराष्ट्रपति को संबोंधित करते हुए अपना त्यागपत्र लिखित रूप में देंगे।

ख) राष्ट्रपति, द्वारा संविधान का उल्लंघन करने पर उन्हें, अनु0 61 में दिए गए ढंग से महाभियोग लगाकर हटाया जाए।

ग) राष्ट्रपति का कार्यकाल चाहे समाप्त हो गया हो, वह अपने पद पर तब तक बने रह सकते हैं जब तक उनका उत्तराधिकारी नहीं आ जाता। राष्ट्रपति के महाभियोग, मृत्यु अथवा त्यागपत्र के मामले में, नए राष्ट्रपति का चुनाव, पद रिक्त होने के छः महीनों के भीतर हो जाना चाहिए। उक्त परिस्थितियों में, जब तक नए राष्ट्रपति कार्य–भार ग्रहण नहीं कर लेते तब तक उन–राष्ट्रपति कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हैं।

निषेधाधिकार (वीटो पावर)

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को विभिन्न प्रकार के निषेधाधिकार दिए गए हैं। संसद द्वारा विधिवत् रूप से पारित किया गया विधेयक, अधिनियम केवल तभी बनता है जब राष्ट्रपति की सहमति मिलती है। वित्त विधेयक अथवा संवैधानिक विधेयक के अलावा, कोई विधेयक, संसद द्वारा पारित करके राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है, उनके पास विकल्प हैं कि वेः

1. विधेयक पर सहमति दें जिसके बाद वह अधिनियम बन जाता है।
2. विधेयक में त्रुटियां होने पर उसे नामंजूर कर दे। उसे पूर्णतः निषेध कहा जाता है और सामान्यतः राष्ट्रपति द्वारा संसद सदस्य के द्वारा विधेयक को व्यक्तिगत तौर पर (व्यक्तिगत सदस्य से तात्पर्य उस संसद सदस्य से है जो मंत्री नहीं है) अथवा राज्यपाल द्वारा उनकी सहमति के लिए विधेयक सुरक्षित रखा जाता है। बाद वाले विधेयक को, चाहे जितनी बार, संबंधित राज्य विधान सभा द्वारा पुनः परिवर्तन हेतु लौटाया जा सकता है।
3. विधेयक को राष्ट्रपति, संसद द्वारा पुनर्विचार करने के लिए लौटा सकते हैं। परन्तु यदि विधेयक, संसद द्वारा पुनः पारित हो जाता है तो उनकी सहमति अनिवार्य है। इसे अनिश्चित निषेध कहा जाता है।
4. वे विधेयक पर, अनिश्चित समय के लिए निर्णय नहीं भी लें, ऐसा कर सकते हैं, अर्थात् विलम्बित रख सकते हैं क्योंकि संविधान ने इसके लिए कोई समस–सीमा निर्धारित नहीं की है कि उन्हें कितनी अवधि के भीतर अपनी सहमति देनी चाहिए। इसे पॉकेट वीटो कहा जाता है और इसका प्रयोग तब किया जाता है जब राजनैतिक परिस्थितियों अनिश्चित हैं और शासक दल स्थिर एवं आशाजनक नहीं लग रहा हो। यदि संविधान संशोधन विधेयक विधिवत् रूप से पारित होता है तो, राष्ट्रपति को अपनी सहमति देने के लिए बाध्य होना पड़ेगा (संविधान (24वां संशोधन) अधिनियम, 1971)

7.9 राष्ट्रपति के अधिकार / शक्ति

7.9.1 अनु0 53 के अनुसार, संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित हैं और यह शक्ति उनके द्वारा या तो प्रत्यक्ष रूप से स्वयं अथवा संविधान के प्रावधानों के अनुसार अपने अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से प्रयुक्त की जाती है। यद्यपि संविधान में कही भी 'कार्यपालिका शक्ति' परिभाषित नहीं है लेकिन इसमे नीति निर्धारण के साथ–साथ निष्पादन कैसे करना है, दोनों ही व्यापक रूप से समाहित हैं। इसमें कानून बनाना, आदेश का पालन, सामाजिक एवं आर्थिक कल्याण को बढ़वा देना, विदेश नीति के लिए निदेश, निम्नलिखित शीर्षों के अन्तर्गत वर्णित सामान्य प्रशासन का पर्यवेक्षण करना अथवा कार्य करना शामिल है।

7.10.1 प्रशासनिक अधिकार संघ के सभी निष्पादक कार्य राष्ट्रपति के नाम से किए जाते हैं। यद्यपि सरकार के विभागों के कानूनी एवं प्रशासन संबंधी निष्पादन संबंधित मंत्रियों द्वारा किए जाते हैं, संवैधानिक रूप से वे उत्तरदायी नही है क्योंकि वे अपने कर्तव्य एवं क्रियाकलाप राष्ट्रपति की ओर से करते हैं जोकि वास्तव में राज्य की कार्यपालिका का प्रमुख है।

7.10.2 राष्ट्रपति को संवैधानिक रूप से निम्नलिखित पदों पर बिना परामर्श के, परामर्श करने के बाद, जैसा भी संविधान में उद्धृत किया गया है, कतिपय प्राधिकारियों की नियुक्ति करने का अधिकार हैं ये पद हैं:–

क) भारत के प्रधानमंत्री और उनके परामर्श से अन्य मंत्रिगण।

ख) भारत के महान्यायवादी।

ग) भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक।

घ) उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश

ड) राज्य के राज्यपाल अथवा संघ शासित प्रदेश के उप राज्यपाल अथवा आयुक्त।

च) वित्त आयोग।

छ) संघ लोक सेवा आयोग तथा राज्यों के समूह के लिए संयुक्त आयोग के सदस्य।

ज) मुख्य चुनाव आयुक्त एवं चुनाव आयोग के अन्य सदस्य

झ) अनुसूचित जातियों एवं जनजाति क्षेत्रों के लिए विशेष अधिकारी।

7.10.3 राष्ट्रपति को उक्त बताए गए अधिकारियों में से कुछ को हटाने का भी अधिकार है जैसे राज्य के राज्यपाल, भारत के महान्यायवादी, संघ अथवा राज्य के लोक सेवा आयोग के सदस्य।

7.11.1 सैनिक शक्तिः राष्ट्रपति, भारत के सशस्त्र बलों के उच्चतम शासक हैं। युद्ध एवं शांति की घोषणाएं, राष्ट्रपति द्वारा की जाती हैं। लेकिन, संसद, कानून के अन्तर्गत इस अधिकार को नियंत्रित कर सकती है।

7.12.1 राजनायिक शक्तिः राष्ट्रपति को अन्य देशों के साथ संधियों एवं समझौतों पर बातचीत करने एवं निर्णय लेने का अधिकार है, बशर्ते कि संसद द्वारा सत्यापन हो चुका हो। यह भी कि राष्ट्रपति, राजनायिक प्रतिनिधियों तथा राजदूतों को तैनात करते हैं, और कार्यभार ग्रहण कराते हैं।

7.13.1 विधायी शक्तिः संविधान ने राष्ट्रपति को विभिन्न विधायी शक्तियां प्रदान की हैं:

क) राष्ट्रपति, संसद के सदनों को बुलाते हैं, किसी भी सदन का अवसान कर सकते हैं तथा लोकसभा को भंग कर सकते हैं (अनु0 85)

ख) वे राज्यसभा के लिए 12 सदस्य तथा लोक सभा के लिए ऐंग्लो इंडियन समुदाय के 2 सदस्यों को नामित करते हैं।

ग) वे संसद के दोनों सदनों को संयुक्त रूप से अथवा अलग अलग संबोधित करते है।

घ) कुछ विधयकों पर, संसद में प्रस्तुत होने से पूर्व राष्ट्रपति का पूर्व अनुमोदन अपेक्षित होता है यह हैं: वित्त विधेयक, प्रथम श्रेणी का वित्त विधेयक एवं नये राज्य (राज्यों) के गठन करने अथवा राज्य की सीमाओं में बदलाव करने के लिए विधेयक।

ड) प्रत्येक विधेयक को अधिनियम बनने के लिए राष्ट्रपति की सहमति अवश्य प्राप्त करनी होगा। सिवाय धन विधेयक एवं संवैधानिक संशोधन बिल के, राष्ट्रपति विधेयक को केवल एक बार संसद को पुर्नविचार के लिए लौटा सकते हैं। लेकिन, राष्ट्रपति विधेयक को दूसरी बार नहीं लौटा सकते हैं और यह उनकी संवैधानिक बाध्यता है कि उन्हें सहमति देनी होगी।

च) राष्ट्रपति के पास 'पॉकेट वीटो' नामक निषेधाधिकार भी है। इस शक्ति के प्रयोग करने, राष्ट्रपति, विधेयक को कितनी भी अवधि के लिए अपने पास रोक

कर रख सकते हैं क्योंकि संविधान में कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई है इस अधिकार के पीछे मंशा यह है कि विधान मंडल द्वारा कोई भलीभांति तैयार न किया गया विधेयक, किसी जल्दबाज़ी में बनाया गया हो, विशेषकर यदि कार्यपालिका में बहुमत भी संदि्ग्ध हो, उस की जांच में समय लगाना।

छ) राष्ट्रपति संसद के समक्ष कतिपय रिपोर्टों को रखने का माध्यम बनते हैं–?

(i) वार्षिक वित्तीय विवरण (बजट) एवं अनुपूरक बजट, यदि कोई हो, (ii) भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट, (iii) वित्त आयुक्त की सिफारिशें, (iv) संघ लोक सेवा आयुक्त की रिर्पोट, (v) अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों के भी विशेष अधिकारी की रिर्पोट (vi) भाषायी अल्पसंख्यकों के विशेष अधिकारी की रिर्पोट।

7.14.1 राष्ट्रपति का सबसे महत्वपूर्ण अधिकार शायद अनु0 123 के अन्तर्गत अध्यादेशों को जारी करना है। अध्यादेश को प्रवर्तन करने का उद्देश्य, आवश्यक नहीं है कि 'आपातीक' है, अपितु राष्ट्रपति द्वारा उसे तब जारी किया जाता है जब, वह इस बात से सहमत होते हैं कि संसद के लिए तत्काल किसी विषय पर कानून बनाना संभव नहीं है और परिस्थितियां ''तत्काल कार्रवाई'' करने के उस कदम को आवश्यक बना रही है। (अनु0 123 (1)) लेकिन ऐसा अध्यादेश, संसद को अगले सत्र के दौरान छः सप्ताहों के भीतर, संसद की अनुंमोदन प्रक्रिया में आकर अनुमोदित हो जाना चाहिए, अन्यथा उसे अवैध माना जाएगा।

विधेयकों के लिए राष्ट्रपति की पूर्व सिफारिश

ऐसे कई विधेयक होते हैं जो केवल राष्ट्रपति की सिफारिश पर ही प्रस्तुत किए जा सकते हैं जैसे किः–

1. राज्य की सीमाओं में बदलाव अथवा राज्यों के नामों में परिवर्तन संबंधी विधेयक (अनु0 3)
2. अनु0 110 में दिए गए ब्यौरे अनुसार धनविधेयक
3. वित्तीय विधेयक (श्रेणी एक) अनु0 110 संबंधी परन्तु उसमें अन्य प्रावधान भी शामिल हों।
4. वित्तीय विधेयक (श्रेणी दो) जोकि एक साधारण विधेयक है परन्तु भारत की समेकित निधि से आहरण वांछित होने के कारण ''विचारार्थ'' लिया जा सकता है, विधेयक के पारित करने की प्रक्रिया में यह वाचन दो है।
5. अनु0 31ए को आवेष्टित करता हुआ कानून
6. कराधान की मदों से आवेष्टित कोई कानून जिसमें राज्यों की रूचि है अथवा एक राज्य जो कृषि आय आदि की पुनः परिभाषा चाहता है।
7. एक राज्य विधेयक जो व्यापार की स्वतंत्रता प्रतिबंधित करना चाहता है।

यदि कानून बनने के बाद, स्वीकृति प्राप्त नहीं की जाती और राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त की जाती है तो यह अवश्य कहा जाए कि जिस विधेयक के

लिए राष्ट्रपति की पूर्व संस्वीकृति, संसद में प्रस्तुत होने से पूर्व वांछित होती है, उसे उसकी संवैधानिकता के लिए न्यायालयों के विचाराधीन नहीं किया जा सकता।

7.15.1 न्यायायिक शक्तियां/राष्ट्रपति को निम्न मामलों में किसी व्यक्ति को दंड की कमी करने अथवा राहत देने, प्राण दंड स्थगित करने, क्षमा देने अथवा दंडादेशों को स्थगित, माफ करने अथवा बदल देने की शक्ति प्राप्त हैः

क) जहां सजा अथवा दंडादेश सेना न्यायालय द्वारा दी गई है/दिया गया है।

ख) जहां किसी कानून के विरूद्ध किसी अपराध के लिए सजा अथवा दंडादेश केन्द्र की कार्यपालिका शक्ति/अधिकार के भीतर के मामले से संबंधित है।

ग) जहां दंड के रूप में मृत्यु दंड दिया गया है।

7.15.2 केवल राष्ट्रपति ही ऐसे प्राधिकारी हैं जो मृत्यु दंड के मामले में माफी दे सकते हैं। उनके द्वारा इस अधिकार का प्रयोग मंत्रिपरिषद की सलाह पर किया जाता है।

क्या राष्ट्रपति को हमेशा मंत्रियों की परिषद् की सलाह अनुसार कार्य करना चाहिए

अनु0 53(1) के अन्तर्गत संघ की कार्यपालिका शक्तियां राष्ट्रपति के पास निहित हैं परंतु अनु0 74 के अनुसार राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली मंत्रिपरिषद् की सहायता एवं सलाह के अनुसार कार्य करते हैं। राष्ट्रपति, केवल एक बार, अपनी सलाह पर किए गए कार्य को पुनर्विचार करने के लिए कह सकते हैं इसके बाद ऐसे पुनर्विचार के बाद, वह सलाह के अनुसार ही कार्य करेंगे। लेकिन, कुछ ऐसी परिस्थितियां है जहां पर राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार कार्य करने की आवश्यकता नहीं है जैसे किः

1. एक मात खाई हुई मंत्रिपरिषद् राष्ट्रपति को लोकसभा भंग करने की सलाह दे। जब तक राष्ट्रपति को न लगे कि स्थायी वैकल्पिक राजनैतिक गठन का अवसर है, तब तक उन्हें सलाह मानने की आवश्यकता नहीं है।
2. जब एक कार्यवाहक सरकार, राष्ट्रपति को एक ऐसा अध्यादेश पारित करने की सलाह दे जो राजनैतिक दृष्टि से अनके लाभ के लिए हो (1996)
3. एक कार्यवाहक सरकार राष्ट्रपति शासन थोपना चाहे उ0 प्र0 1997) वस्तुतः सामान्य परिस्थितियों के साथ–साथ कतिपय आपात्तकालों में, 'औपचारिक' राष्ट्रपति से 'व्यस्त' राष्ट्रपति के रूप में कार्य करना अपेक्षित होता है।

7.16.1 आपातकालीन शक्तियां! यह अति विशिष्ट शक्ति राष्ट्रपति को देश को किसी भी प्रकार से जोखिम से बचाव के लिए दी गई है। राष्ट्रपति तीन परिस्थितियों में आपात्तकाल की घोषणा कर सकते हैं।

क) युद्ध, बाह्य आक्रमण अथ्वा सेना के विद्रोह द्वारा भारत की सुरक्षा को खतरा होने के आधार पर इसे राष्ट्रीय आपत्तकाल कहा जाता है (अनु0 353 के अन्तर्गत) तथा इस अवधि के दौरान सभी मूलभूत अधिकार सिवाय जो अनु0 20 तथा 21 के अन्तर्गत है, स्थागित कर दिए जाते हैं।

ख) अनु0 356 के अन्तर्गत राज्य अथवा राज्यों में संवैधानिक मशीनरी के विफल होने के आधार पर। इसे राष्ट्रपति शासन लागू होना कहा जाता है।

ग) भारत अथवा उसके किसी हिस्से पर गंभीर वित्तीय अस्थिरता अथवा साख को खतरा होने के आधार पर। इसे 'वित्तीय आपात्तकाल' कहा जाता है। (अनु0 360)

7.17.1 इनके अलावा, राष्ट्रपति के पास अन्य कुछ और भी शक्तियों हैं जो संविधान में बिखरी हुई हैं। इन विविध शक्तियों में शामिल हैंः–

क) विभिन्न मामलों पर नियम एवं विनियम बनाना।

ख) संघ शासित प्रदेशों के प्रशासन में कुछ विशेष शक्तियां

ग) अनुसूचित जातियो (अनु0जा0), तथा अनुसूचित जनजातियों (अनु0ज0जा0) क्षेत्रों के प्रशासन पर रिर्पोट देने के उद्देश्य से कतिपय आयोग नियुक्त करना।

घ) अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन जातियों को दिए गए संवैधानिक सुरक्षात्मक उपायों की कार्य प्रणाली पर रिर्पोट देने के लिए विशेषाधिकारी की नियुक्ति करना।

7.18 राष्ट्रपति की संवैधानिक हैसियत

7.18.1 भारतीय संवधिान में संसदीय सरकार की परिकल्पना की गई है। इस प्रकार की सरकार होने का मूल तत्व यह है कि राज्य का औपचारिक प्रमुख राष्ट्रपति होता है । जबकि वास्तविक कार्यपालिका शक्ति मंत्रिपरिषद् के पास होती है जोकि लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार होती है। राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री की अध्यक्षता वाली मंत्रिपरिषद् की सहायता एवं सलाह के साथ अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए संवैधानिक रूप से बाध्य है।(अनु0 74)

7.18.2 अनु0 53–जिसके द्वारा सभी ''कार्यपालक शक्ति'' राष्ट्रपति के पास निहित है जो अनु0 74 के साथ सूक्ष्मता से जुड़ी है। जबतक मंत्रिपरिषद् को लोकसभा का विश्वास मत प्राप्त है, राष्ट्रपति को उनकी सलाह को मानना पड़ता है। यदि वे ऐसा नहीं करते तो संविधान का उल्लंघन करने के कारण उन पर महाभियोग चलाया जा सकता है। 44वें संशोधन द्वारा अनु0 74 में एक प्रावधान जोड़ा गया था जो राष्ट्रपति को, धन एवं वित्तीय विधेयकों को छोड़कर, किसी भी विधेयक को, अपने सुझावों के साथ, यदि कोई हो, एक बार पुनर्विचार करने के लिए वापस लौटाने की शक्ति देता है, लेकिन यदि, संसंद पुनः, वह विधेयक, राष्ट्रपति द्वारा सुझाई गई सिफारिशों के साथ अथवा उनके बिना पारित कर देती है तो राष्ट्रपति को संवैधानिक दायरे के अन्तर्गत तद्नुसार कार्य करना होगा।

7.18.3 लेकिन राष्ट्रपति नामधारी अध्यक्ष नहीं है जो कुल मिलाकर रस्म अदायगी कर रहे हैं। संविधान में, उन्हें कतिपय विवेकाधनी शक्तियां प्रदान की हैं। वस्तुतः राष्ट्रपति की संवैधानिक हैसियत रस्म अदायगी वाली होने के साथ साथ मान मर्यादा वाली तथा एक प्राधिकारी की भी है।

7.19 राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री के बीच संबंध

संविधान में इस बारे में स्पष्टतः कुछ नहीं कहा गया। अनु0 78 के अनुसार राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री को बुलाकर राज्य के कार्यों की सूचना प्राप्त कर सकता है। प्रधानमंत्री द्वारा राष्ट्रपति को सूचना न देने पर विफल होने पर, विवाद की स्थिति में क्या कार्रवाई हो, संविधान इस पर खामोश है।

इसलिए, इस संबंध में अस्पष्टता है

राष्ट्रपति की विवेकाधीन शक्तियां

भारत के राष्ट्रपति अधिकतर हमेशा मंत्रिपरिषद् की सहायता एवं परामर्श पर ही कार्य करते हैं सिवाय निम्नलिखित परिस्थितियों के जहां वे अपने विवेकानुसार कार्य करते हैं।

1. लोकसभा चुनावों के बाद जब कोई एक दल बहुमत से आगे नहीं आ पाता तो प्रतिस्पर्धियों के बीच से प्रधान मंत्री का चयन करना।
2. मंत्री परिषद् को दत्तमत मिलता है और उनके त्यागपत्र देने के बाद राष्ट्रपति को लोकसभा को भंग करना पड़ता है और नए सिरे से चुनाव होते हैं (अथवा बिना दत्तमत के त्यागपत्र दिलवाना एवं सलाह देना) राष्ट्रपति से यह अपेक्षा की जाती है कि वे ऐसी परिस्थितियों में लोकसभा की अवधि को सुरक्षित रख कर, वैकल्पिक सरकार बनाने की संभावना का हल निकालने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करे।
3. पॉकेट वीटो का प्रयोग करते हुए।
4. जब परिषद् की सलाह नहीं ली जाती, विण्धानसभा सदस्यों को अयोग्य ठहराना।
5. मंत्रिपरिषद् की सलाह को एक बार पुनर्विचार के लिए वापस लौटा सकते हैं।
6. संसद द्वारा पारित विधेयक को एक बार पुनर्विचार के लिए वापस लौटा सकते हैं।

7.20. भारत के महान्यायवादी (एजीआई)

7.20.1 अनु0 76 में कहा गया है कि राष्ट्रपति, उस व्यक्ति की भारत के महान्यायवादी पद पर नियुक्ति करेगा जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने की योग्यता रखता है।

7.20.2 वह भारत सरकार का प्रथम विधि अधिकारी है। यह परम्परा है कि सरकार के बदलने के बाद, महान्यायवादी त्यागपत्र देता है और नई सरकार अपनी पसंद का नया महान्यायवादी नियुक्त करती है।

7.21 महान्यायवादी के कार्य

7.21.1 वह भारत सरकार को किसी भी कानूनी मामले में परामर्श देता है। वह भारत के राष्ट्रपति द्वारा सौंपी गई कानूनी ड्यूटियों को निभाता है। वह राष्ट्रपति अथवा संविधान द्वारा सौंपे गए किसी भी कानूनी कार्य को निष्पादित करता है।

7.21.2 इस अनुच्छेद के अन्तर्गत, राष्ट्रपति द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार महान्यायवादी को उच्चतम न्यायालय में, भारत सरकार से संबंधित सभी मामलों में, भारत सरकार की ओर से उपस्थित रहना वांछनीय है। उसे किसी भी उच्च न्यायालय में, भारत सरकार से संबंधित मामलों में से किसी में भी उपस्थित होना होगा। भारत सरकार के जिन मामलों में उसका परामर्श लिया गया है उनमें वह न तो भारत सरकार के विरूद्ध परामर्श दे सकता न ही संक्षिप्त विवरण दे सकता। न ही उसे भारत सरकार की अनुमति के बिना अभियुक्त व्यक्तियों का आपराधिक अभियोगों से बचाव करना चाहिए। किसी कंपनी में निदेशक के रूप में नियुक्त होने के लिए वह निषिद्ध है। महान्यायवादी संघ एवं राज्यों को, न्यायालयों के समक्ष प्रतिनिधित्व प्रदान करता है परन्तु वह निजी तौर पर प्रैक्टिस कर सकता है बशर्ते जो दूसरा पक्ष है वह कोई राज्य नहीं है। इसके कारण, उसे वेतन नहीं दिया जाता अपितु प्रतिधारण शुल्क दिया जाता है जिसका निर्धारण राष्ट्रपति करता है।

7.22 भारत के महान्यायवादी की शक्तियां

7.22.1 उसे अपना सरकारी दायित्व निभाते हुए भारत के सभी न्यायालयों में सुनवाई का श्रोता बनने का अधिकार है यहां तक कि जहां समूची प्रक्रिया कैमरे में कैद की जा रही हो। यद्यपि वह संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता, उसे संसदीय विचार–विमर्शों तथा बैठकों में भाग लेने तथा बोलने का अधिकार है(लोकसभा एवं राज्यसभा, दोनों में) पर मत का अधिकार नहीं है। उसे संसद सदस्य की भांति सभी विशेषाधिकार एवं निरापदता प्राप्त है।

7.23 भारत के महान्यायवादी (एजीआई) के विशेषाधिकार

7.23.1 महान्यायवादी को कोई वेतन नहीं दिया जाता अपितु प्रतिधार शुल्क दिया जाता है क्योंकि उन्हें पूर्णकालिक नियुक्त नहीं किया जाता और वह अपनी निजी प्रैक्टिस कर सकता है। प्रतिधारण शुल्क, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के वेतन के बराबर होता है। उसके साथ दो महा प्रतिवक्ता सहायक, तथा 4 सहायक महाप्रतिवक्ता होते हैं।

7.24 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (कैग)

7.24.1 यह राष्ट्रपति द्वारा, 6 वर्षो की पूर्णकालिक अवधि अथवा 65 वर्षों की आयु तक, जो भी पहले हो, नियुक्त किए जाते हैं। यह संघ एवं राज्यों में देश की समूची वित्तीय व्यवस्था को नियंत्रित करने वाले, जनता के वादी परिरक्षक हैं। डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर ने कहा था कि यह संविधान के अन्तर्गत सबसे महत्वपूर्ण कार्यलय है।

7.25. नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्य

1. सघ एवं राज्यों के खातों की लेखा परीक्षा करना एवं रिपोर्ट राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल जैसा भी मामला हो को सौंपना।
2. यह सुनिश्चित् करना कि भारत की समेकित निधि अथवा राज्यों की निधि से सभी व्यय कानून के अनुसार ही हो रहे हैं।यह निरीक्षण करना कि संसद अथवा राज्य विधानमंडल के द्वारा जिस उद्देश्य विशेष के लिए धन की स्वीकृति दी गई थी वह उसी उद्देश्य के लिए व्यय हो रहा है अथवा नहीं।
3. निम्नलिखित की प्राप्तियों एवं खर्चे की लेखा–परीक्षा करना एवं रिर्पोट तैयार करना
   i) सरकारी कम्पनियां
   ii) सभी निकाय एवं प्राधिकरण संघ अथवा राज्य राजस्वों से 'पर्याप्त वित्त पोषित' हैं, तथा
   iii) अन्य निगमों एवं निकायों की लेखा परीक्षा एवं रिर्पोट तैयार करना जब ऐसे निगमों एवं निकायों को कानून के अन्तर्गत ऐसा करना अपेक्षित हो।

7.26 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के लिए संविधान में संरक्षोपाय

7.26.1 चूंकि नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का कार्यभार अत्यन्त महत्वपूर्ण है, इस कार्यालय को किसी कार्यपालिका के नियंत्रण से स्वतंत्र रखने के लिए संविधान में संरक्षोपाय दिए गए हैं तथा संसद के अधिनियमन नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1971 द्वारा संरक्षोपाय किया गया है।

7.26.2. नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को केवल दुर्व्यवहार एवं अक्षमता के आधार पर संसद के दोनो सदनों को संबोधित करके ही हटाया जा सकता है। सेवानिवृत्ति के बाद वह, आगे, संघ अथवा केन्द्र के अन्तर्गत किसी पद पर नियुक्ति का पात्र नहीं है।

7.26.3 उसके वेतन एवं अन्य भत्ते भारत की समेकित निधि से दिए जाते हैं और संसद में गैर–मतदेय है। उसकी नियुक्ति के बाद उसके वेतन एवं भत्तों में, उसे हानि पहुंचाते हुए, उनमें कटौती नहीं की जा सकती सिवाय वित्तीय आपातकाल के मामले में।

7.27 <u>नियंत्रक एवं महालेखाकर कैसे कार्य करता है?</u>

7.27.1 नियंत्रक एवं महालेखाकार सघ एवं राज्यों के खातों की लेखा परीक्षा करता है तथा रिर्पोट को राष्ट्रपति को सौंपता है जो, उसे संसद के समक्ष प्रस्तुत करने का माध्यम बनता है। इस रिर्पोट को तत्काल संसद की लोक लेखा समिति को भेजा जाता है जो विस्तृत अध्ययन के बाद, एक रिर्पोट तैयार करती है जिसे संसद में रखा जाता है। वस्तुतः संसद में चर्चा लोकलेखा समिति की दूसरी रिर्पोट पर होती है।

7.28. क्या नियंत्रक एवं लेखा परीक्षक महज लेखा परीक्षक है?

7.28.1 यद्यपि पदनाम नियंत्रक एवं लेखा परीक्षक है, प्राधिकार केवल एक लेखा परीक्षक की भॉति ही कार्य करता है। प्राधिकारी के पास भारत की समेकित निधि अथवा राज्य से धन को जारी करने संबंधी कोई नियंत्रण नहीं है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का संबंध, केवल, लेखा परीक्षा करने से ही संबंधित है जबकि खर्चा पहले ही हो चुका होता है। ब्रिटेन में इसी प्रकार के कार्य वाला प्राधिकरण है जिसके पास शक्तियां हैं परन्तु भारत में इसे यह सुनिश्चित् करने के लिए वैसी शक्तियां नहीं दी गई कि ''संसद द्वारा किए गए समायोजन एवं दत्तमत अनुदान अधिक तो नहीं बढ़ रहे'' ऐसा इसलिए है क्योंकि प्राधिकारी तर्क देते हैं कि इस प्रकार की शक्तियां देने से समूचे खातों एवं वित्तीय नियंत्रण कियाविधि की गंभीर रूप से पूरी मरम्मत करनी होगी।

7.28.2 एक अन्य प्रश्न है कि क्या नियंत्रक एवं महालेख परीक्षक कार्यपालिका द्वारा किए गए न्यायाधिक्य पर टिप्पणी दे सकते हैं और आर्थिक उपायों का सुझाव दे सकते हैं। इसके बारे में दो विचार हैं एक विचार तो यह है कि नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को टिप्पणी देने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि कार्यपालिका संसद के प्रति जवाबदेह है न कि नियंत्रक एवं लेखा परीक्षा के प्रति। दूसरा विचार यह है कि, चुंकि वित्तीय नियंत्रण अंततः कानून के अंतर्गत है, समूची प्रकिया प्रभावशीलता कार्य कुशलता, अर्थ वव्यवस्था उपलब्ध कराने हेतु व्यापक लेखा परीक्षा की आवश्यकता है। इसलिए नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को इसके लिए टिप्पणी देने का अधिकार और यहां तक कि उपाय सुझाने का अधिकार दिया गया है।

7.28.3 अभी हाल के वर्षों में विभिन्न स्तरों पर वित्तिय दुरूपयोग के मामले जनता के सामने लाए गए हैं जिसमें सबसे प्रमुख बिहार में पशुमालन घोटाला है

राष्ट्रीय विकास परिषद

राष्ट्रीय विकास परिषद् 1952 में योजना आयोग की गौण इकाई के रूप में, राज्यों को, योजनाओं को तैयार करने के लिए जोड़ने हेतु गठिन की गई थी

जिससे संतुलित एवं तीव्र विकास सुनिश्चित् किया जा सके। परिषद् दो कार्य करती है।

क) समय–समय पर राष्ट्रीय योजना के कार्य की समीक्षा करना तथा

ख) राष्ट्रीय योजनाओं के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की उपलब्धियों के उपाय के लिए सिफारिश करना।

परिषद् देश में योजना तैयार करने के लिए उच्चतम निर्णायक निकाय है। यह प्रधान मंत्री की अध्यक्षता में कार्य करती है। इसका सचिव भी योजना आयोग का सचिव ही होता है। परिषद्, योजना के प्रारूप पर विचार–विमर्श करती है और, यदि आवश्यक हो, तो आशोधन करती है। परिषद् के अनुमोदन के बाद, योजना को संसद के समक्ष अंतिम अनुमोदन के लिए भेजा जाता है।

7.29. मंत्री परिषद्

7.29.1 भारतीय संविधान, सरकार की ब्रिटिश संसदीय पद्धति का अनुगमन करता है। जैसे ही प्रधानमंत्री अपने पद की शपथ लेता है/कार्याभार ग्रहण करता हैं, मंत्रिपरिषद् का गठन किया जाता है। यद्यपि तकनीकी रूप से, मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, परन्तु वास्तविक तौर पर इसकी शक्ति, प्रधानमंत्री के पास होती है। संविधान में मंत्रिपरिषद् के मंत्रियों की संख्या निर्धारित नहीं की गई है, सिवाय, दिल्ली विधान सभा के, जहां इसकी संख्या विधानसभा सदस्यों की संख्या के 1/10 हिस्से से अधिक न होने का प्रावधान किया गया है। मंत्रियों की श्रेणियां संविधान में इस बारे में कुछ नहीं कहा गया है। परन्तु ब्रिटिश संसदीय परम्पराओं के अनुभाग के कारण भारत में चुनी गई सरकार में भी मंत्रियों की तीन श्रेणियों होती हैं। वे इस प्रकार हैः–

1. मंत्रिमंडल कैबिनेट मंत्रीः यह वरिष्ट मंत्री होते हैं जिनके पास विभाग होता है उसके ये अध्यक्ष होते है। ये मंत्रिमंडल का गठन करते हैं तथा प्रधानमंत्री द्वारा आयोजित मंत्रिमंडल की सभी बैठकों में भाग लेने का

इनका अधिकार होता है। केवल मंत्रिमंडल के मंत्री नीतिगत मामलों का विवेचन एवं निर्धारण कर सकते हैं। ('मंत्रिमंडलीय मंत्री' शब्द संविधान में अनु0 352 में 42वें संशोधन अधिनियम के माध्यम से शामिल किया गया।

2. राज्य मंत्रीः रैंक के अनुसार यह मंत्रिमंडल के मंत्रियों के नीचे होते हैं और समान्यतः सहायक के तौर पर कार्य करते हैं। सामान्यतः इन्हें मंत्रालय का स्वतंत्र प्रभार नहीं दिया जाता परन्तु यह प्रधानमंत्री का विशेषाधिकार है कि यदि वे चाहें तो उन्हें स्वतंत्र प्रभार सौंप सकते हैं। सामान्यतः वे मंत्रिमंडल की बैठकों में भाग नहीं ले सकते परन्तु उन्हें बैठक में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जा सकता है।
3. उपमंत्रीः उन्हें स्वतंत्र प्रभार नहीं दिया जा सकता और ये हमेशा मंत्रिमंडल के मंत्री अथवा राज्य मंत्रियों अथवा दोनों को सहयोग देते हैं। यह भी कि, ये मंत्रिमंडलीय बैठकों में कभी भाग नहीं लेते।

   एक मंत्री किसी भी सदन का सदस्य हो सकता है परन्तु उसे मत देने का अधिकार, उसी सदन में देने का है जिसका वह समदस्य है। कोई व्यक्ति जो किसी भी सदन से संबंध नहीं रखता, उसे मंत्री बनाया जा सकता है परन्तु उसे छः महीनों के भीतर किसी भी सदन के लिए चुना जाना होगा।

7.30 सरकार की सामूहिक जिम्मेदारी

7.30.1 अनु0 75(3) के अनुसार, मंत्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि कोई प्रस्ताव संसद में पारित नहीं होता तो, समूचा मंत्रालय धराशायी हो जाएगा। यह संकल्पना, इंग्लैंड में विकसित हुई थी और इसके पीछे उद्देश्य यह था कि सरकार को एक समरूप निकाय के रूप में कार्य करना चाहिए। इसे बनाए रखने के लिए प्रधानमंत्री को अधिकार है कि वे असहमत रहने वाले मंत्री (मंत्रियों) को हटाने के लिए राष्ट्रपति को सलाह दें क्योंकि तकनीकी रूप से मंत्रिगण व्यक्तिगत रूप से राष्ट्रपति के प्रति जवाबदेह हैं (अनु0 75(2)) अर्थात् यद्यपि मंत्रिगण सामूहिक रूप से विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी है, वह कार्यपालिका के प्रमुख के प्रति भी व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार होंगे और बर्खास्त किए जाऐंगे, चाहे उन्हें विधानमंडल का विश्वास प्राप्त हो। सामान्यतः प्रधानमंत्री अवांछित सहयोगी को त्यागपत्र देने के लिए कहते हैं जोकि उस सहयोगी के द्वारा तत्परता से मान लिया जाता है जिससे कि बर्खास्तगी के कलंक से बचा जा सके। (एक उदाहरण जुलाई 2000 में वाजपेयी मंत्रिमडल से राम जेठमलानी के त्यागपत्र देने का है।)

क्या संसद सदस्य न होने पर भी कोई मंत्री बन सकता है?

ऐसी कानूनी बाधा नहीं है कि मंत्री को संसद का सदस्य अवश्य होना चाहिए। अनु0 75(5) में कहा गया है कि एक मंत्री, जो लगातार छः महीनों की अवधि के लिए संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं है, उस अवधि की समाप्ति पर मंत्री नहीं बना रह सकता। एक बाहरी व्यक्ति को (संसद सदस्य के अलावा) मंत्री नियुक्त किया जा सकता है, परन्तु उसे छः महीनों की अवधि के भीतर संसद का सदस्य अवश्य बन जाना चाहिए। यदि वह निर्धारित समयावधि के भीतर सदस्य चुना नहीं जाता तो उसे उस मंत्रालय से त्यागपत्र अवश्य देना होगा।

राष्ट्रपति सरकार

राष्ट्रपति सरकार की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैंः–

1. राष्ट्रपति एवं वास्तविक कार्यपालिका के बीच कोई भेद नहीं है– सरकार की कार्यपालिका शक्तियां न केवल राष्ट्रपति के पास निहित होती है, वास्तविक तौर पर उनका प्रयोग भी राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है। वस्तुतः राष्ट्रपति राज्य प्रमुख तथा सरकार का मुखिया, दानों ही होता है।
2. राष्ट्रपति को जनता द्वारा निर्धारित अवधि के लिए चुना जाता है– राष्ट्रपति को कानून द्वारा नहीं अपितु समूचे निर्वाचन क्षेत्र द्वारा प्रत्यक्षतः चुना जाता है। वस्तुतः राष्ट्रपति न तो अपने चुनाव में और न ही कार्यकाल के लिए, कानून पर निर्भर नहीं रहता।
3. राष्ट्रपति अकेला कार्यपालक होता है– सरकार की सारी कार्यपालिका शक्तियां राष्ट्रपति में निहित होती है तथा उनके द्वारा उनका प्रयोग किया जाता है। उनके मंत्रिमंडल की स्थिति मुश्किल से परामर्शक निकाय की होती है। संवैधानिक तौर पर, वह उनकी सलाह मानने के लिए बाध्य नही है। वह उनसे सलाह ले सकता है अथवा बिल्कुल ही सलाह न ले, यह भी हो सकता है। मंत्रिमंडल का मत जानने के बाद वह उसे मानने से इनकार भी कर सकता है और अपने स्वयं के निर्णय के अनुसार कियान्वित करने के लिए चुन भी सकता है।

4. राष्ट्रपति एवं विधानमंडल अपनी अवधियों के संबंध में एक दूसरे से स्वतंत्र होते हैं– राष्ट्रपति एवं उसके मंत्रिमडल के सदस्य विधानमंडल के सदस्य नहीं होते ! विधानमंडल के पास राष्ट्रपति के कार्यकाल को समाप्त करने की कोई शक्ति नहीं होती और राष्ट्रपति अपनी पूरी संवैधानिक प्रदत्त अवधि को पूरा करता है सिवाय महाभियोग चलने के मामले में। इसी प्रकार, राष्ट्रपति के पास, विधानमंडल को उसके कार्यकाल से पूर्व भंग करने की कोई शक्ति नहीं होती। वस्तुतः राष्ट्रपति एवं विधानमंडल दोनों निर्धारित अवधि के लिए चुने जाते हैं।

7.32 गुण

राष्ट्रपति सरकार के निम्नलिखित गुण हैं:

1. अधिक स्थिरता: राष्ट्रपति प्रणाली में राज्य के प्रभुत्व का कार्यकाल निर्धारित एक अवधि के लिए होता है। इससे इस प्रणाली की स्थिरता सुनिश्चित् होती है। यह दिन प्रतिदिन के नियंत्रण एवं विधायी कार्यों से मुक्त होता है जिससे कि वह अपना सारा समय प्रशासन कार्यों में लगा सकता है।

2. युद्ध अथवा राष्ट्रीय आपदा के समय में बहुमूल्य: राष्ट्रपति, प्रमुख, वाली कार्यपालिका एकल होती है। विषम परिस्थितियों में निर्णय लेने के लिए राष्ट्रपति को मंत्रिमंडल के साथ अंतहीन चर्चाओं के बोझ से नहीं दबना पड़ता। वह त्वरित निर्णय ले सकता है और उसे पूरे जोश के साथ कार्यान्वित कर सकता है। इसलिए ऐसी सरकार, युद्ध अथवा राष्ट्रीय आपदा के समय में बहुत उपयोगी होती है।

3. विभागों के प्रमुख बनाने के लिए विशेषज्ञों को बुलाया जा सकता है: राष्ट्रपति, सरकार के विभिन्न विभागों के प्रमुख का चयन, विशेषज्ञों का चयन करके, जो समुचितरूप से अपने काम में दक्ष हों, कर सकता है। विभागों के इस प्रकार चयनित प्रमुखों से मंत्रिमंडल गठित हो जाता है। इसलिए, राष्ट्रपति प्रणाली के अन्तर्गत, मंत्रिगण बेहतर प्रशासक साबित होते हैं, जबकि संसदीय प्रणाली में मंत्रियों की नियुक्ति, उनकी प्रशासनिक कुशाग्रता के आधार पर न हो कर केवल उनके राजनैतिक गठबंधन के आधार पर होती है।

4. दलगत प्रभाव द्वारा नहीं होता: एक बार राष्ट्रपति पद का चुनाव संपन्न हो जाता हैं, पूरा राष्ट्र् नए राष्ट्रपति को राष्ट्र के नेता के रूप में स्वीकार कर लेता है। चुनाव के दिनों की राजनैतिक प्रतिद्वन्दियों की शत्रुता को भुला दिया जाता है। विधानमंडल के अंदर और बाहर लोग समस्याओं को

राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखते हैं न कि दल के दृष्टिकोण से। यह प्रणाली व्यापक संबद्धता एवं एकता प्रदान करती है।

5. विधायी तथा कार्यपालिका शक्तियों का कोई केन्द्रीकरण नहीं है। राष्ट्रपति प्रणाली कार्यों को अलग करने एवं पड़ताल एवं मिलान (चैक्स एंड बैलेंससस) करने के सिद्धांत पर स्थापित की जाती है। इसमें संसदीय प्रणाली की अपेक्षा व्यक्तिगत स्वतंत्रता को काफी अधिक संरक्षण उपलब्ध कराया जाता है।

7.33 अवगुण

निम्नलिखित आधारों पर राष्ट्रपति प्रणाली की आलोचना की जाती हैः–

1. निरंकुश एवं गैर जिम्मेदारी राष्ट्रपति प्रणाली में राष्ट्रपति के पास अत्यधिक शक्तियां प्रदान की गई है। यह निरंकुश प्रणाली है क्योंकि राष्ट्रपति विधान सभा के नियंत्रण से स्वतंत्र है। वह अपनी मर्जी के अनुसार जैसा चाहे वैसा कर सकता है। उसे उसके प्रशासन की कुरीतियों के लिए नियमित रूप से जवाबदेह नहीं बनया जा सकता। संयुक्त राज्य अमेरिका में विधानमंडल (कांग्रेस) राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियां एवं संधियों को ठुकरा सकता है, परन्तु वह राष्ट्रपति को उसके पद से नहीं हटा सकता सिवाय महाभियोग के मामले में। एक सत्ता लोलुप राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का दुरूपयोग करके अकूत संपत्ति बना सकता है तथा अपने राजनैतिक विरोधियों का सफाया कर सकता है।
2. राष्ट्रपति चुनाव एक गंदा काम हैः इस प्रणाली में राष्ट्रपति का चुनाव प्रत्यक्ष तौर पर किया जाता है। इस पद के लिए चुनाव में बहुत गर्मागर्मी एवं तनाव होता है। संपूर्ण राष्ट्र की जीवनचर्या अस्तव्यस्त हो जाती है। उन देशों में, जहां संयुक्त राज्य अमेरिका की भांति संवैधानिक परंपराएं, गहरी जड़ों वाली नहीं हैं, चुनाव के समय का तनाव एवं अस्थिरता का परिणाम क्रांति में बदल जाता है।
3. राष्ट्रपति एवं विधानमंडल के बीच मनमुटाव एवं कलहः कार्य पालिका एवं विधान मंडल का अलगाव, राष्ट्रपति एवं विधानमंडल के बीच विवादों एवं गतिरोध उत्पन्न कर सकता है। विधानमंडल कार्यकारी नीतियों को मानने से इंकार कर सकता है अथवा कार्यपालिका द्वारा बनाए गए कानूनों को अधिनियमित करने से मना कर सकता है। दूसरी ओर, राष्ट्रपति अपनी, इच्छा के विरूद्ध पारित किए गए कानूनों को क्रियान्वित करने में अरूचि दिखा सकता है। यहां तक कि वह विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों को

वीटो कर सकता है। ऐसे गतिरोध तब निरंतर होते रहते हैं जब राष्ट्रपति से संबंधित दल का विधानमंडल में बहुमत न हो।

4. जिम्मेदारी ढूँढना कठिन हैः– राष्ट्रपति प्रणाली में सरकार की विफलता के लिए जिम्मेदार ठहराना कठिन हो जाता है। राष्ट्रपति विधानमंडल को दोषी ठहराता है और विधानमंडल, राष्ट्रपति को दोषारोपित करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में, अधिकांश विधेयक विधानमंडल की समितियों के पास भेजे जाते हैं, जिन पर रिर्पोट प्राप्त होने के बाद बिलों को पारित किया जाता है। इन समितियों के पास अत्यधिक शक्तियां होती हैं। समितियां न केवल कानून बनाने की शक्तियां अभिग्रहण करती है वे इस संबंध में जिम्मेदारी भी निर्धारित करती है, जो कि बहुत कठिन है।

कांग्रेस बाहर से समर्थन देती है

7.34.1 गठबंधन सरकारः यह सरकार दो अथवा दो से अधिक राजनैतिक दलों के साथ एक समान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बनाई जाती है। इन्हें विधानमंडल का विश्वास स्वतः प्राप्त होता है और नहीं भी होता। वर्तमान वाजपेयी सरकार एक गठबंधन वाली सरकार है।

7.35.1 राष्ट्रीय सरकारः– यह गठबंधन सरकार का वह स्वरूप है जिसमें विधानमंडल में प्रतिनिधत्व कर रहे लगभग सभी राजनैतिक दलों की सहभागिता होती है। आवश्यक तौर पर विधानमंडल में कोई विरोधी दल नहीं होता। इस प्रकार की सरकार प्रायः राष्ट्रीय आपदा के समय में होती है। वास्तव में, यह देश को प्रभावित करने वाले कतिपय मूल विषयों पर ''मतैक्य वाली सरकार'' होती है। इस प्रकार की सरकार ब्रिटेन में, विंसटन चर्चिल द्वारा मई, 1940 में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जर्मनी की फासिस्ट शक्तियों को हराने के लिए एक समान लक्ष्य बना कर गठित की गई थी।

7.36.1 छाया मंत्रिमंडलः यह राष्ट्रीय मंत्रिमंडल, संसद में मुख्य विपक्षी दल द्वारा बनाया जाता है जिसमें इसके सदस्यों को कतिपय विशिष्ट कार्य करने को दिए जाते हैं ऐसे सदस्य संसद में बहस के दौरान विपक्षी दल का नेतृत्व करते हैं। इसे 'प्रतीक्षारत मंत्रिमंडल' भी कहा जाता है।

7.36.2 इस प्रणाली में न केवल सरकार गठित होती है अपितु प्रभावी विपक्षी दल भी मिलता है आगे, इससे विपक्ष में रहते हुए भी शासन करने की कला में सदस्यों को प्रशिक्षण मिलने में सहायता होती है। यह प्रणाली केवल दो राजनैतिक दलों के बीच संसदीय सरकार के रूप में कार्य कर सकती है। यह प्रणाली यूनाईटेड किंगडम में भली भांति कार्य कर रही है।

7.37.1 त्रिशंकु संसदः जब आम चुनाव के बाद कोई राजनैतिक दल अथवा राजनैतिक दलों का गठबंधन बहुमत सरकार बनाने की स्थित में नहीं होता तो ऐसी संसद को त्रिशंकु संसद कहा जाता है।

7.38.1 काम चलाऊ सरकारः मध्यावधि के दौरान, जैसे ही मंत्रिपरिषद् कार्यभार त्यागती है, एक सरकार आती है। प्रायः जाने वाली सरकार को काम–काज संभाले रहने तथा सरकार चलाने की अनुमति दी जाती है। यह कामचलाऊ सरकार, नई सरकार के, चुनाव के बाद, कार्यभार ग्रहण करने के बाद, समाप्त हो जाती है। इस सरकार की विधायी शक्तियों पर कई तरह के नैतिक प्रतिबंध होते हैं और यह कोई नीतिगत निर्णय नहीं ले सकती। लेकिन राष्ट्रपति, कामचलाऊ सरकार द्वारा पारित किसी विधेयक को स्वीकार करने से मना कर सकता है। उदाहरण के लिए, 1996 में तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ0 एस0डी0 शंकर दायल शर्मा ने पी0वी0 नरसिम्हा राव की कामचलाऊ सरकार द्वारा पारित क्रिश्चियन कोटा विधेयक को सहमति देने से मना कर दिया था।

7.39.1 अंतरिम सरकारः यह सरकार देश के इतिहास के संक्रमण कालीन अवस्था के दौरान गठित की जाती है। यह संपूर्ण सरकार होती है और नीतिगत निर्णय ले सकती है, भारत में अंतरिम सरकार भारत की स्वतंत्रता

अधिनियम के साथ 15 अगस्त को सत्ता में आई और मार्च, 1952 तक बनी रही।

7.40.1 अल्पमत सरकारः सरकार का एक ऐसा स्वरूप जिसे अपने बल बूते पर लोकसभा का विश्वास मत प्राप्त नहीं होता और सरकार से बाहर अन्य राजनैतिक दलों के समर्थन पर चलती है। उदाहरण के लिए, 1990.–1991 में चन्द्रशेखर सरकार, 1996–97 के दौरान देवगौड़ा तथा आई.के.गुजराल सरकार, कांग्रेस के बाहर से समर्थन पर बनी थी।

7.41.1 सविधि द्वारा मंत्रिमंडल स्तर के अधिकारीः

i) योजना आयोग का उपाध्यक्ष

ii) लोकसभा अध्यक्ष

iii) लोकसभा में विपक्ष का नेता

8.संसद

8.1 अनुच्छेद 79

8.1.1 संसद का संविधानः संघ के लिए एक संसद होगी जिसमें एक राष्ट्रपति एवं दो संदन होंगे। जिन्हें क्रमशः राज्यों की परिषद् राज्यसभा तथा जनता का सदन (लोकसभा) के रूप में जाना जाएगा। यद्यपि राष्ट्रपति, संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं होगा तथापि, ब्रिटिश सर्वोच्य प्रमुख की भांति, वह संसद का अभिन्न भाग है और उसकी कार्यवाहियों से संबंधित कतिपय कार्यों को निष्पादित करता है।

8.2 संसद के कार्यः

8.2.1 संसद का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है, कानून बनाना, अर्थात् विकास के लिए विधान बनाना जो समाज के हितों के लिए हो।

8.2.2 दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कार्य, कार्यपालिका पर नियंत्रण करना है।

8.2.3 संसद मंत्रिपरिषद् बनाती है क्योकि मंत्री संसद के सदस्य होते हैं।

8.2.4 इसका कार्यपालिका पर वित्तीय नियंत्रण होता है। संसद ही केवल वह प्राधिकारी संस्था है जो करों की वृद्धि कर सकती है।

8.2.5 यह विभिन्न नीतियों एवं उपायों को कियान्वित करने से पहले विचार–विमर्श करने का अवसर प्रदान करती है! वस्तुतः संसद, चर्चाओं के माध्यम से एकत्रित तथा प्रसारित जानकारी तथा मंत्रियों से 'प्रश्नों' के विशिष्ट माध्यम के द्वारा जानकारी प्राप्त करने का प्राधिकृत प्रमाणिक स्रोत भी है।

8.3 राज्यसभा अथवा राज्यों की परिषद्

8.3.1 राज्यसभा में दो श्रेणियों के सदस्य होते हैं चुने गए एवं नामित – जो छः वर्षों की अवधि के लिए सदस्य बनते हैं। वे राज्य विधान परिषदों के सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। चुनाव इस प्रकार से किया जाना निर्धारित है कि प्रत्येक दो वर्षों के बाद राज्यसभा के एक तिहाई सदस्य सेवानिवृत्त होते हैं। राज्य सभा, संसद में संविधान की फैडरल विशेषता का प्रतिनिधित्व करती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका अथवा आस्ट्रेलिया के ऊपरी सदन से राज्यसभा किस प्रकार से भिन्न है

कम से कम दो स्तरों पर राज्य सभा, संयुक्त राज्य अमेरिका अथवा आस्ट्रेलिया से भिन्न हैं–

1. संयुक्त राज्य अमेरिका अथवा आस्ट्रेलिया में, राज्य की जनसंख्या कुछ भी हो, ऊपरी सदन में राज्यों का प्रतिनिधित्व एक समान होता है। परन्तु भारत में, प्रतिनिधित्व, राज्य की जनसंख्या के आधार पर होता है।
2. संयुक्त राज्य अमेरिका में तथा आस्ट्रेलिया में केवल राज्यों का प्रतिनिधित्व होता है। जबकि भारत में, कुछ केन्द्र शासित क्षेत्रों अर्थात् दिल्ली, पांडुचेरी का भी सदन में प्रतिनिधित्व होता है।

8.4 **अनु– 80**

8.4.1 राज्यों की परिषद् में होते हैं :–

क) प्रावधानों के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा नामित 12 सदस्य तथा

ख) राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेशों के 238 प्रतिनिधियों से अधिक नहीं होने चाहिए।

(राज्यसभा में केवल दिल्ली एवं पांडुचेरी का प्रतिनिधित्व है)

8.4.2 वर्तमान राज्यसभा की सदस्य क्षमता 247 है जिसमें से 233 चुने गए प्रतिनिधि हैं और 12 सदस्य नामित हैं।

8.5 **नामांकन के लिए मांनदण्ड**

8.5.1 राष्ट्रपति द्वारा नामित किए गए सदस्य, वे व्यक्ति होते हैं जिनके पास विशिष्ट ज्ञान अथवा नियमानुसार मामलों में व्यवहारिक अनुभव होता है, जैसे किः– साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा

8.6 राज्य सभा की संघीय (फैडरल) विशेषताएंः

8.6.1 अनु0– 249 के अन्तर्गत, राज्यों की परिषद् अथवा राज्य सभा को, राज्य सूची में वर्णित किसी मामले से संबंधित कानून जो संसद द्वारा बनाया जाना चाहिए उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई सदस्यों से कम सदस्य न हों। उनके

द्वारा मतदान के आधार पर संकल्प तैयार कर घोषित करने का अधिकार है। ऐसा संकल्प एक निर्दिष्ट अवधि के लिए एक वर्ष से अधिक नहीं लागू रहता है। (यह संकल्प केवल राज्यसभा से ही प्रारंभ किया जा सकता है)

8.6.2 अनु0 312 में राज्य सभा को राज्यों एवं संघ के लिए समान रूप से अखिल भारतीय न्यायायिक सेवाओं (42वां संशोधन,1976) सहित एक अथवा अधिक अखिल भारतीय सेवाएं संसद द्वारा तैयार की जानी चाहिए यह राष्ट्रीय हित में आवश्यक अथवा व्यवहारिक है, इस प्रकार का संकल्प जो कि सदन में उपस्थित दो तिहाई सदस्यों से कम न हो, द्वारा समर्पित करके उसे घोषित करने का अधिकार है, तथा वह ऐसी सेवा के लिए नियुक्त व्यक्तियों की सेवा व भर्ती एवं शर्तों को लागू करने का भी संकल्प पारित कर सकती है। (लोकसभा प्रक्रिया को आरंभ नहीं कर सकती)

8.6.3 संवैधानिक संशोधन विधेयक के मामले में, उसे राज्य सभा से अलग से पारित अवश्यक किया जाना चाहिए। ऐसे विधेयकों को संयुक्त बैठकों द्वारा पारित करने का कोई प्रावधान नहीं हैं।

8.6.4 साधारण तथा वित्त विधेयकों के लिए राज्य सभा का अनुमोदन होना चाहिए। इन मामलों में संयुक्त बैठकों द्वारा विधयकों को पारित करने का कोई प्रावधान नहीं है।

8.6.5 मंत्रिपरिषद् के सदस्य, राज्य सभा से भी लिए जा सकते हैं। वस्तुतः नीति नियामक रूप में राज्यों की अप्रत्यक्ष भूमिका है।

8.6.6 राष्ट्रपति के चुनाव में राज्य सभा के सदस्य भाग लेते हैं। राष्ट्रपति पर महा अभियोग चलाने के मामले में, इस आशय का संकल्प राज्य सभा के दो तिहाई सदस्यों से कम न हो, उतने सदस्यों के अनुमोदन को अलग से लेकर किया जाना चाहिए।

8.6.7 राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 352 अथवा अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत आपातकाल की घोषणा करने के मामले में (जो वास्तव में मंत्रिपरिषद् की सलाह पर घोषित करता है) ऐसी उद्घोषणाओं का अनुमोदन, इन उद्घोषणाओं के होने के बाद क्रमशः एक महीने तथा दो महीने की अवधि के भीतर राज्यसभा द्वारा अवश्य अनुमोदित हो जाना चाहिए।

8.7 राज्यसभा के अधिकारी

8.7.1 सभापतिः भारत के उपराष्ट्रपति पदेन राज्यसभा के अध्यक्ष होते हैं। वह राज्यसभा की कार्यवाहियों की अध्यक्षता तब तक करते हैं जब तक राष्ट्रपति के पद की रिक्ती के दौरान, उस पद पर भारत के राष्ट्रपति के रूप में कार्यरत नहीं रहते।

8.7.2 उपसभापतिः उपसभापति का चयन, राज्यसभा द्वारा उसके सदस्यों के बीच से किया जाता है। सभापति की अनुपस्थिति में, उपसभापति सदन के कार्यक्रमों एवं कार्यवाहियों की अध्यक्षता करते हैं।

राज्यसभा की सदस्यता के लिए अर्हताएं

राज्यसभा के लिए चुने जाने के लिए निम्नलिखित अर्हताओं की आवश्यकता हैः–

1. वह भारत का नागरिक आवश्यक होना चाहिए।
2. वह 30 वर्षों की आयु से कम नहीं होना चाहिए।
3. वह एक साधारण नागरिक, जिस स्थान से वह चाहे, उस राज्य अथवा संघ शासित प्रदेश में पंजीकृत मतदाता होना चाहिए।

4. उसे किसी लाभ के पद पर (ऑफिस ऑफ प्राफिट) नियुक्त नहीं होना चाहिए।

8.8 सभापति अथवा उपसभापति के पद से हटाया जानाः–

8.8.1 भारत का उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सभापति होता है। सभापति को निम्नलिखित प्रक्रिया द्वारा उसके पद से हटाया जा सकता है।

8.8.2 उसे परिषद् के तत्कालीन सभी सदस्यों के बहुमत द्वारा परिषद् के द्वारा संकल्प पारित करके, जो कि लोकसभा द्वारा बहुमत द्वारा अनुमादित किया गया हो, हटाया जा सकता है। परन्तु ऐसा संकल्प, सभापित को कम से कम 14 दिनों का पूर्व नोटिस देकर ही लाया जा सकता है।

8.8.3 उस सभापति को अपना पद त्यागना होगा यदि परिषद् से उनकी सदस्यता समाप्त हो जाती है। वह सभापति को लिखित रूप में त्यागपत्र दे सकता है। उसे भी, उसके पद से परिषद् के तत्कालीन सभी सदस्यों के बहुमत द्वारा संकल्प पारित करके हटाया जा सकता है (अनु0–90) । परन्तु ऐसा संकल्प, सभापति को कम से कम 14 दिनों के पूर्व नोटिस देकर ही लाया जा सकता है।

राज्यसभा की उपयोगिता

ऐसा कहा जाता है कि फैडरल संविधान में द्वितीय सदनमंडल एक आवश्यकता है। यह विधायी मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और इसलिए इसे बनाए रखा जाना चाहिए। राज्यसभा वांछनीय है क्योंकि यह निम्नलिखित उद्देश्यों को पूरा करती हैः–

1. इसे इसलिए उपयोगी माना जाता है क्योंकि वरिष्ठ राजनीतिज्ञ एवं राजनेता, आम चुनावों में चुनाव जीतने की अग्निपरीक्षा दिए बिना, सरलता से पहुंच जाते है। इस प्रकार, देश को अनुभव एवं प्रतिभा को खोना नहीं पड़ता और उनकी सेवाओं का उपयोग भी हो जाता है।
2. राज्यसभा, लोकसभा के कार्यों का पुनरीक्षण करने का कार्य करती है जोकि, लोकप्रिय सदन होने के नाते जनता के विचारों को ध्यान में रखते हुए, जल्दबाजी में निर्णय ले सकती है, मगर राज्यसभा में गंभीरता से उन निर्णयों पर विचार किया जा सकता है।
3. राज्यसभा वह सदन है जहां राज्यों का प्रतिनिधित्व,फैडरल सिद्धांतों को ध्यान में रखकर किया जाता है।

8.9 लोकसभा

8.9.1 लोकसभा संसद का लोकप्रिय सदन है क्योंकि इसके सदस्य, भारत के नागरिकों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं। संसद के सभी सदस्य आम तौर पर चुने जाते हैं, सिवाय ऐंग्लो इंडियन समुदाय के अधिकतम दो सदस्यों के, जिन्हें राष्ट्रपति द्वारा नामित किया जाता है। ऐसा इस कारण होता है कि वे किसी विशेष निर्वाचन क्षेत्र में संकेन्द्रित नहीं होते इसलिए, राष्ट्रपति के मतानुसार लोकसभा में उनका प्रतिनिधित्व पर्याप्त रूप से नहीं हो पाता।

8.9.2 संविधान में, लोकसभा की क्षमता, राज्यों से 552 से 530 से अधिक नहीं होने का प्रावधान किया गया है। 20 संघ शासित क्षेत्रों से तथा 2 ऐंगलों इंडियन समुदाय से। पंरतु संविधान में लोकसभा को पुनः समायोजन का

अधिकार दिया है। संसद ने वर्तमानतः लोकसभा की क्षमता 545(530+13+2 क्रमशः) निर्धारित की है। यह भी कि प्रत्येक जनगणना के बाद, प्रतिनिधित्व के संशोधन के संबंध में, संसद ने 2025 ए.डी. तक लोकसभा की क्षमता को स्थिर कर दिया है।

8.10 लोकसभा का कार्यकाल

8.10.1 लोकसभा का सामान्य कार्यकाल 5 वर्ष का है। परन्तु राष्ट्रपति द्वारा सामान्य कार्यकाल की समाप्ति पूर्व सदन भंग किया जा सकता है। यह भी कि अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत बताए गए अनुसार लोकसभा की अवधि राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान पांच वर्षों से आगे बढाई जा सकती है। परन्तु यह विस्तार एक समय में एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए नहीं होना चाहिए। (समयावधि बढ़ाने की आवृत्ति के विषय में संविधान द्वारा कोई सीमानिर्धारित नहीं की है।) तथापि ऐसा समय विस्तार आपातकाल अवधि की समाप्ति के छः माह से अधिक अवधि के लिए लागू नहीं रहेगा।

8.10.2 अनु0 83 के अन्तर्गत मौलिक संविधान में, लोकसभा का कार्यकाल 5 वर्षों का निर्धारित किया है। लेकिन, 42वें संशोधन द्वारा, संसद ने, बढ़ाकर छः वर्षों का कर दिया, परन्तु 44वें संशोधन द्वारा इसे पुनः 5 वर्षों के सामान्य कार्य काल पर स्थिर कर दिया।

8.11 लोकसभा की सदस्यता के लिए अर्हताएं

8.11.1 लोकसभा की सदस्य बनने के लिए व्यक्ति को अवश्य होना चाहिएः–

क) भारत का नागरिक

ख) 25 वर्ष की आयु से कम नहीं

ग) भारत में किसी भी संसदीय निर्वाचन क्षेत्र का, पंजीकृत मतदाता तथा

घ) लाभ के किसी पद का धारक न हो

<u>लोकसभा की विशेष शक्तियां</u>

कुछ ऐसी शक्तियां लोकसभा को प्रदान की गई हैं जो संविधान द्वारा प्रदत्त हैं, और राज्यसभा को नहीं दी गई है यह शक्तियां हैंः–

1. धन एवं वित्तीय विधेयक केवल लोकसभा में ही प्रवर्तित किए जा सकते हैं।
2. धन विधेयक के मामले में, राज्यसभा को केवल अधिकार है कि वह सिफारिश करे, यह लोकसभा पर है कि वह सिफारिश माने या ना माने। धन विधेयक ऊपरी सदन द्वारा 14 दिनों की अवधि के भीतर अवश्य पारित हो जाना चाहिए, अन्यथा विधेयक को सदन द्वारा स्वतः ही पारित हुआ माना जाएगा। वस्तुतः धन विधेयकों को विशिष्ट विधायी क्षेधाधिकार में पारित करने का अधिकार लोकसभा को ही है।
3. मंत्रिपरिषद् केवल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है अतः विश्वास मत और अविश्वास मत प्रस्तावों को केवल इसी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है।
4. अनु0 352 के अन्तर्गत लोकसभा, अपनी विशेष बैठक आयोजित करके, राष्ट्रपति द्वारा लगाई गई राष्ट्रीय आपात्काल को जारी रखने की असहमति दे सकती है, चाहे राज्यसभा ऐसे संकल्प को नामंजूर कर दे।

8.12 सीटें खाली करना

8.12.1 संसद में सीटों के खाली करने के लिए प्रावधानों को अनु0 101 में बताया गया है। ये हैं:

क) कोई भी व्यक्ति संसद के दोनों सदनों का सदस्य नहीं होगा। यदि कोई व्यक्ति दोनों सदनों के लिए चुन लिया जाता है तो उसे एक सदन की सदस्यता छोड़नी होगी।

ख) यदि किसी भी सदन का सदस्य अनु0 102 (1) और (2) के अन्तर्गत अयोग्य पाया जाता है।

ग) यदि कोई सदस्य लिखित रूप में सभापति (राज्यों की परिषद्) अथवा लोकसभा अध्यक्ष(लोकसभा) को संबोधित करते हुए, जैसा भी मामला हो, त्यागपत्र देता है और उसका त्याग सभापति अथवा लोकसभा अध्यक्ष, जैसा भी मामला हो, मान लिया जाता है।

घ) यदि किसी भी सदन का सदस्य, सदन से, बिना अनुमति के, साठ दिनों की अवधि से अधिक दिनों तक अनुपस्थित रहता है, तो सदन उसकी सीट को रिक्त घोषित कर सकता है।

संसद के सदस्यों की अयोग्यता

संसद के सदस्यों (लोकसभा एवं राज्यसभा) को संविधान के अनु0 102 में दिए गए निम्न में से एक अथवा अधिक आधारों पर अयोग्य होना माना जा सकता है।

खंड(1) यदि वह संसद द्वारा घोषित किसी अन्य कार्यालय में जिसमें, कानून द्वारा उसके धारक को अयोग्य नहीं ठहराया गया, संघ अथवा राज्य सरकार के अन्तर्गत लाभ के किसी पद पर कार्यरत हो,

1. यदि सक्षम न्यायालय उसे विक्षिप्त घोषित कर दे

2. यदि वह दिवालिया घोषित है,

3. यदि उसकी नागरिकता जाली पाई जाती है अथवा उसने स्वैच्छिक आधार पर किसी अन्य देश की नागरिकता प्राप्त करली है अथवा विदेशी राज्य की राज्यमंत्री अथवा समर्थन दिखाया है,

4. यदि वह संसद द्वारा बनाए गए किसी कानून के अन्तर्गत ऐसा करने के अयोग्य है,

उक्त आधारों पर अयोग्य ठहराए जाने के संबंध में राष्ट्रपति के निर्णय, चुनाव आयोग के मत के साथ, उनके अनुसार अंतिम होंगे (अनु0 103)

खंड (2) (52वें संशोधन 1985 द्वारा शामिल),

10वीं अनुसूची के अन्तर्गत यदि वह अयोग्य ठहराया जाता है अर्थात् अपसरण के आधार पर।

8.13 लोकसभा अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष

8.13.1 लोकसभा का मुख्य पीठासीन अधिकारी अध्यक्ष होता है। नई लोकसभा के गठित होने के बाद, लोकसभा के सदस्यों के बीच से दो अधिकारी चुने जाते हैं। लोकसभा अध्यक्ष, सदन की बैठकों की अध्यक्षता करता है और सदन की कार्यवाहियों पर उसकी व्यवस्था/निर्णय अंतिम होते हैं। सदन की गरिमा एवं विशेषाधिकारों को बनाए रखने का दायित्व उसका होता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में, उपाध्यक्ष, अध्यक्ष के कर्तव्यों का निर्वहन करता है। लोकसभा अध्यक्ष, लोकसभा के भंग होने से लेकर नई लोकसभा के चुने जाने के बाद, उसके गठित होने तक, अपने पद पर बने रहते हैं।

8.13.2 लोकसभा अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष, सदन के प्रभावी बहुमत के साथ, सदन द्वारा पारित संकल्प द्वारा, उन्हें 14 दिनों के पूर्व नोटिस देकर, पद से हटाए जा सकते हैं।

8.14.1 लोकसभा अध्यक्ष, अपने पद के अनुसार निष्पक्षता बनाए रखने के लिए केवल उस ही मामले में मत देते हैं जब पक्ष एवं विपक्ष दोनों में समान संख्या में मत पड़े।

8.15 लोकसभा अध्यक्ष की विशिष्ट स्थिति

8.15.1 संविधान ने लोकसभा अध्यक्ष को विशिष्ट स्थिति प्रदान की है। यद्यपि वह लोकसभा का निवाचित सदस्य होता है, परन्तु वह पहली लोकसभा के भंग होने के बाद भी नई लोकसभा के गठित होने तक अपने पद पर बना रहता है। यह इसलिए क्योंकि वह न केवल संसदीय कार्यों की अध्यक्षता करता है अपितु लोकसभा सचिवालय के प्रमुख के रूप में भी कार्य करता है जहां सदन के भंग होने के बाद भी कार्य करना जारी रखता है। एक अन्य भाग, जो उसकी विशिष्ट स्थिति को प्रगट करता है कि उसे सदन की गरिमा एवं विशेषाधिकारों को बनाए रखने का दायित्व दिया गया है क्योंकि लोकसभा अध्यक्ष लोकसभा का एक संस्थान की भांति प्रतिनिधित्व करता है।

लोकसभा अध्यक्ष की विशेष शक्तियां

कुछ ऐसी शक्तियां हैं, जो कि केवल लोकसभा के अध्यक्ष से ही संबंधित हैं जबकि इसी प्रकार की शक्तियां राज्यसभा के अध्यक्ष के पास उपलब्ध नहीं है। ये हैं:–

1. चाहे विधेयक धन विधेयक है अथवा नहीं, यह केवल लोकसभा अध्यक्ष ही प्रमाणित करता है और उसका निर्णय अंतिम एवं बाध्यकारी होता है।
2. लोकसभा अध्यक्ष अथवा उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष, संसद की संयुक्त बैठकों की अध्यक्षता करते हैं।
3. संसद की समितियां (अर्थात् लोक लेखा समिति आदि) आवश्यक तौर पर लोकसभा अध्यक्ष की शीर्षता में कार्य करती हैं और उनके अध्यक्ष भी उसके द्वारा नामित अथवा नियुक्त किए जाते हैं। राज्यसभा के सदस्य भी इन समितियों में उपस्थित रहते हैं।
4. यदि लोकसभा अध्यक्ष किसी समिति का सदस्य है तो वह पदेन उसी समिति का अध्यक्ष होता है।

8.16 संसद की संयुक्त बैठक

8.16.1 ऐसे दो अवसर होते हैं जब संसद की संयुक्त बैठक होती हैं।

क) राष्ट्रपति द्वारा विशेष संशोधन–लोकसभा के प्रत्येक आम चुनाव के बाद प्रथम सत्र के आरंभ होने पर तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र सामान्यतः बजट सत्र के आरंभ होने पर। राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के एकत्र होने पर संबोधित करेगें एवं संसद को उसके बुलाने के कारणों के बारे में सूचित करेंगे।

ख) विधेयक को पारित करने पर किसी गतिरोध को सुलझाने के लिए– तीन परिस्थितियां ऐसी होती है जिससे संसद के दोनों सदनों के बीच गतिरोध उत्पन्न हो सकता है। यदि धन विधेयक अथवा संवैधानिक संशोधन विधेयक के अलावा विधेयक को एक सदन में पारित कर दिया जाता है और अन्य सदन में भेज दिया जाता है–

i) विधेयक अन्य सदन द्वारा अस्वीकृत हो जाता है अथवा

ii) सदन, विधेयक में किए गए संशोधनों से अंतिम तौर पर असहमत होता हैः अथवा

iii) विधेयक को प्राप्त करने की तिथि से छः महीनों से अधिक का समय गुजर जाता है, विधेयक पारित नहीं होता।

8.16.2 राष्ट्रपति, दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाने की, अपनी इच्छानुसार, अधिसूचना जारी करके विधेयक पर चर्चा करने एवं मतदान करने की उद्देश्य से बैठक बुला सकता है।

8.16.3 संसद की संयुक्त बैठक राष्ट्रपति द्वारा आमंत्रित की जाती है और उसकी अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष द्वारा, अथवा उसकी अनुपस्थिति में लोकसभा के उपाध्यक्ष द्वारा अथवा उसकी अनुपस्थिति में सभापति द्वारा अथवा

उसकी अनुपस्थिति में राज्यसभा के उपसभापति द्वारा अध्यक्षता की जाती है। यदि उक्त अधिकारियों में से कोई उपस्थित नहीं होता तो संसद का कोई अन्य सदस्य दोनों सदनों की सर्वसम्मति से अध्यक्षता कर सकता है।

8.16.4 यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि विधेयक पारित करने की संयुक्त बैठक के मामले में लोकसभा का पलड़ा भारी है। ऐसा इसलिए है क्योंकि लोकसभा की क्षमता 545 है तथा राज्यसभा की 245 और ऐसी बैठक में विधेयक बहुमत द्वारा ही पारित होता है अर्थात् उपस्थित संसद सदस्यों का 50 प्रतिशत एवं उनका मतदान। (मतदान से दूर रहने वाले सदस्यों की संख्या को निकालकर)

8.17 लोकसभा अध्यक्ष–अल्पकालीन

8.17.1 ज्योंही नई लोकसभा का गठन होता है, राष्ट्रपति अल्पकालीन लोकसभा अध्यक्ष की नियुक्ति करता है जो कि प्रायः सदन का सबसे वरिष्ठतम सदस्य होता/होती है। (सदस्य के रूप में जितने वर्षों तक सदस्य रहे हैं उसके अनुसार वरिष्ठता) यदि दो सदस्य बराबर है, अर्हता में, तो सदस्य की आयु को मानदंड माना जाएगा। उसके कार्यों में लोकसभा सदस्यों को शपथ दिलाना तथा नए लोकसभा अध्यक्ष के चुनाव की अध्यक्षता करना है। अल्पकालीन लोकसभा अध्यक्ष का पद नए लोकसभा अध्यक्ष के चुने जाने के साथ ही समाप्त हो जाता है।

8.18 तारांकित एवं आतारांकित प्रश्न

8.18.1 जब सदन में, मंत्री से, कोई सदस्य अपने प्रश्न का मौखिक उत्तर जानना चाहता है, ऐसे प्रश्नों को तारांकित प्रश्न कहा जाता है। ऐसे प्रश्न के उत्तर प्राप्त होने के बाद पूरक प्रश्न भी पूछे जा सकते हैं।

जब सदन के सदस्यों द्वारा लिखित रूप में उत्तर की मांग की जाती है, ऐसे प्रश्न को अतारांकित प्रश्न कहा जाता है। लिखित प्रत्युत्तर पाने के बाद पूरक प्रश्नों का कोई प्रावधान नहीं है।

8.19. प्रश्न काल– सामान्यतः सदन में प्रतिदिन के पहले घंटे को प्रश्नों एवं उत्तरों के लिए रखा जाता है। इस घंटे को संसद का प्रश्न काल कहा जाता है।

8.20 शून्य काल– यह प्रश्न काल के बाद की वह अवधि होती है जब सदस्य बिना नोटिस दिए अथवा बहुत छोटे नोटिस पर सार्वजनिक महत्व के किसी विषय को उठाते हैं। इसकी प्रक्रिया संसद के नियमों एवं कार्यवाहियों के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त नहीं है, परन्तु यह प्रक्रिया 1970 से एक परम्परा के रूप चली आ रही है।

8.21.1 ध्यानाकर्षण प्रस्तावः यह एक ज्ञापन होता है जो एक सदस्य, लोकसभा अध्यक्ष की पूर्व अनुमति के साथ, सार्वजनिक महत्व के तुरंत उठाए जाने वाले किसी विषय पर मंत्री का ध्यानाकर्षित करता है। मंत्री उस विषय में संक्षिप्त ब्यौरा देता है अथवा उत्तर के लिए कुछ समय, जैसे कि एक घंटा अथवा एक दिन मांगता है।

8.21.2 'ध्यानाकर्षण' प्रस्ताव प्रक्रिया, राज्यसभा में नहीं होती उसके स्थान पर 'मोशन ऑफ पेपर्स' है।

8.22.1 व्यवस्था का प्रश्नः यह एक अति विशिष्ट प्रक्रिया है जो कि जब उठाई जाती है तो सदन के कार्य व्यापार को निलंबित कर सकती है और सदस्य जो कार्य में व्यवधान डाल रहा है उसे बाहर कर दिया जाता है। इसका तात्पर्य पीठासीन अधिकारी को संविधान के नियमों, निर्देशों एवं प्रावधानों को सदन के कार्यव्यावार को चलाने में सहायता करना है।

8.23 संसद के कोरमः

8.23.1 संसद के किसी भी सदन की बैठक आयोजित करने के लिए सदन के कुल सदस्यों के 1/10 सदस्यों का कोरम होना चाहिए। यदि सदन की बैठक के दौरान किसी समय, कोरम पूरा नहीं है तो यह सभापति अथवा लोकसभा अध्यक्ष का कर्तव्य है अथवा जो संसद सदस्य, बैठक की अध्यक्षता कर रहा है, उसका कर्तव्य है कि वह, जब तक कोरम पूरा न हो जाए, सदन की कार्यवाही भंग कर दे अथवा बैठक को निलंबित कर दे।

8.24. योग्यता न होने पर सदन में बैठने और मतदान करने पर दंड

8.24.1 संसद के किसी सदन की सदस्यता अनु0 99 (शपथ) की अपेक्षाओं का अनुपालन करने से पूर्व, यदि कोई व्यक्ति सदन में बैठता है अथवा मत देता है, अथवा जबकि वह यह जानता है कि वह सदस्यता के योग्य नहीं है अथवा वह सदस्यता के लिए अयोग्य है तो जितने दिन वह संसद में बैठता है अथवा मतदान करता है, उस पर प्रतिदिन 500–रू0 के हिसाब से दंड रूप में संघ को देय ऋण के रूप में वसूले जाएंगें।

8.25 विपक्ष का नेता

मौलिक संविधान में विपक्ष के नेता का कोई प्रावधान नहीं था। इसे संसद के एक अधिनियम द्वारा बनाया गया एवं मंत्रिमंडल स्तर के मंत्री का दर्जा दिया गया। लोकसभा की क्षमता का कम से कम 1/10 हिस्से वाले, संसद में सबसे बड़ी संख्या वाले दल को (सत्तादल के अलावा अन्य दल) विपक्षी दल के रूप में मान्यता प्राप्त है।

8.26. संसद के सत्र

8.26.1 संविधान में केवल यह कहा गया है कि संसद की दो बैठकों के बीच छः महीनों से अधिक का अंतराल नहीं होना चाहिए। संसदीय प्रक्रियाओं के अनुसार तीन प्रकार के सत्र होते हैंः–

क) बजट सत्र– फरवरी से मई के बीच– यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण और सबसे लंबा सत्र होता है।

ख) मानसून सत्र–जुलाई–अगस्त

ग) शीत कालीन सत्र–नवंबर–दिसंबर– यह सबसे छोटा सत्र होता है।

8.26.2 संविधान में विशेष सत्रों का प्रावधान दिया गया है। इस मामले में, इसे राष्ट्रपति अथवा लोकसभा अध्यक्ष को जैसा भी मामला हो, 14 दिनों के अग्रिम नोटिस देने के आधार पर मंत्रिपरिषद् की सिफारिशों पर राष्ट्रपति द्वारा बुलाया जा सकता है। अन्य मामले में, यदि लोकसभा का सत्र नहीं चल रहा, कम से

कम लोकसभा के कुल सदस्यों के 1/10 सदस्य, 14 दिनों का पूर्व नोटिस देकर, राष्ट्रीय आपात्काल को अस्वीकार करने के लिए सत्र बुलाने के लिए राष्ट्रपति से लिखित में निवेदन कर सकते हैं। (अनु0 352 के अन्तर्गत) मंत्रिपरिषद् इसमें कोई भूमिका अदा नहीं करती।

8.27.अध्यक्षों की नामिका/पैनल

8.27.1 यदि बैठक में, लोकसभा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष दोनों ही अनुपस्थित हैं तो सदन के सदस्यों में से छः अध्यक्षों की नामिका में से, जोकि लोकसभा अध्यक्ष द्वारा समय–समय पर नामित किए जाते हैं, वे अध्यक्षता करते हैं। कभी ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाए जब, लोकसभा अध्यक्ष लोकसभा उपाध्यक्ष तथा सदन की नामिका के सदस्यों में से कोई भी सदस्य सदन में उपस्थित नहीं है तो सदन द्वारा किसी सदस्य का अध्यक्ष के रूप में चयन किया जाए और वह तब अध्यक्ष के रूप में कार्य करेंगे जब तक नामिका वाले सदस्यों में से कोई एक अथवा लोकसभा उपाध्यक्ष अथवा अध्यक्ष कार्यभार नहीं संभालते।

8.27.2 लोकसभा उपाध्यक्ष की भांति, अध्यक्ष को, जब वह सदन की अध्यक्षता कर रहा होता है तो उसके पास सभी अधिकार होते हैं।

8.2.सत्र का अवसान

8.28.1 सत्रावसानः यह मंत्रिपरिषद् की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है। यह तब भी किया जा सकता है जब सदन भंग हो। यद सदन के सत्र को समाप्त करता है।

8.28.2 स्थगनः यह सदन के पीठासीन अधिकारी द्वारा अनुमत किया जाने वाला, संसद के सत्र के बीच अल्प अवकाश होता है। इसकी अवधि कुछ मिनटों से लेकर कई दिनों की भी हो सकती है। स्थगन की एक अन्य किस्म तब होती है, जब पीठासीन अधिकारी अगली बैठक की तिथि अथवा समय निर्धारित किए बिना स्थगित कर देते हैं। इसे अनिश्चित काल के लिए स्थगित करना अर्थात्

कोई समय/कोई दिवस निर्धारित नहीं किए बिना स्थगित करना कहा जाता है। स्थगन सत्र की समाप्ति नहीं होता अपितु भावी तिथि तथा समय तक के लिए सदन की कार्यवाहियों को स्थगित करना होता है।

8.29 लोकसभा भंग होने के समय पर विधेयकों की स्थिति

8.29.1 संक्षेप में, लोक सभा के भंग होने के समय पर, उसके पास कारोबार की विभिन्न लंबित मदों की स्थिति निम्नानुसार हैः–

क) लोकसभा भंग होने के समय पर लोकसभा में पड़े सभी लंबित विधेय, चाहे सदन में ही उठाए गए हों अथवा राज्यसभा द्वारा प्रेषित किए गए हो, व्ययगत हो जाते हैं।

खद्ध लोकसभा द्वारा पारित विधेयक, भंग होने की तिथि तक निपटान नहीं किए गये और राज्यसभा में लंबित हो तो वह व्यपगत हो जाते हैं।

ग) जो विधेयक राज्य सभा में मूलतः तैयार किए गए हैं और लोकसभा द्वारा पारित नहीं किए गए अपितु राज्यसभा में लंबित पड़े हैं वह व्यपगत नहीं होंगे।

घ) दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक, जो राष्ट्रपति की सहमति के लिए भेजे गए हों, लोकसभा के भंग होने पर व्यपगत नहीं होते।

ड) लोकसभा में लंबित पड़े अन्य सभी कार्यव्यापार अर्थात् प्रस्ताव, संकल्प, संशोधन, अनुदानों के लिए पूरक मांगे आदि, जिस भी स्तर पर होते हैं, लोकसभा भंग होने पर व्यपगत हो जाते हैं।

8.30 कार्यपालिका पर संसदीय नियंत्रण

8.30.1 कार्यपालिका पर संसदीय नियंत्रण के माध्यम निम्नानुसार हैंः–

1. कार्यपालिका, जो कि मंत्रिपरिषद् के रूप में कार्य संचलन तब तक करती है जब तक संसद का विश्वास प्राप्त होता है विशेषकर लोकसभा का। यदि लोकसभा सफलतापूर्वक अविश्वास प्रस्ताव पारित कर देती है तो मंत्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना ही होगा।

2. कार्यपालिका के औपचारिक प्रमुख होने के नाते यदि, राष्ट्रपति संविधान का उल्लंघन करता है तो राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने की शक्ति संसद के पास है।
3. यदि मंत्रिपरिषद् के सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया गया विधेयक संसद में पराजित हो जाता है तो यह संसद के बहुमत की हानि के समतुल्य है और मंत्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना ही होगा।
4. यदि संसद में बजटीय प्रस्तावों पर सफलतापूर्वक कटौती प्रस्ताव लाया जाता है, मंत्रिपरिषद् को त्यागपत्र दे देना चाहिए।
5. संसद का नियंत्रण प्रस्तावों के माध्यम से भी किया जाता है जैसे कि स्थगन प्रस्तावः अल्प सूचना देकर प्रश्न पूछनाः ध्यानाकर्षण प्रस्तावः निंदा प्रस्तावः प्रश्न (तारांकित एवं अतारांकित प्रश्न तारांकित प्रश्नों का उत्तर संबंधित मंत्री द्वारा देना होता है) और इसी प्रकार के अन्य विषय

8.31 सदन को भंग करना

8.31.1 भंग करने से सदन का वह कार्यकाल समाप्त हो जाता है और नई लोकसभा का चयन करने के लिए आम चुनाव अवश्य होने चाहिए। यह ध्यान रहे कि यह लोकसभा होती है जिसे भंग किया जाता है। राज्यसभा स्थयी निकाय है और इसे भंग नहीं किया जा सकता। भंग करने से तात्पर्य है सदन का कार्यकाल समाप्त होना, जबकि सत्रावसान सत्र के समाप्त होने को कहते हैं।

8.32 संसद के परम अधिकार

8.32.1 संसद सदस्यों को वह अधिकार, परम अधिकार विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं जोकि अन्य नागरिकों को नहीं होते। इसके पीछे उद्देश्य यह है कि इससे वे अपने कार्यों को कुशलतापूर्वक एवं निडर होकर संपन्न करें।

व्यक्तिगत तौर परः– यह निम्न परमाधिकार हैं। जो कि संसद सदस्य द्वारा व्यक्तिगत स्तर पर प्रयोग किए जाते हैंः–

क) वाणी की स्वतंत्रताः अनु0 19(1) के अन्तर्गत संसद के सदस्यों को मिली हुई वाणी की स्वतंत्रता एक आम नागरिक से कहीं अधिक है, वह सदन के भीतर कानून के अन्तर्गत, किसी भी कार्रवाई के बाहर है यहां तक कि सार्वजनिक भाषणों में भी वह संसद के द्वारा बोलने की स्वतंत्रता का पात्र है। लेकिन ऐसी स्वतंत्रता की दो सीमाएं हैं।

i) वह सदन के नियमों एवं प्रक्रियाओं के अनुसार होना चाहिए।

ii) संसद सदस्य उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के आचरण पर टिप्पणी नहीं कर सकते, सिवाय व्यायाधीशों को हटाने के संकल्प के।

गिरफ्तारी से स्वतंत्रताः संसद का सदस्य सदन के आरंभ हाने से 40 दिन पूर्व तथा सत्रावसान के 40 दिनों के बाद तक गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। यह बचाव केवल सिविल मामलों में ही है और यह आपराधिक कार्यवाहियों अथवा न्यायालय की अवमानना अथवा बचावकारी रोक के लिए नहीं है।

1. जूरी से स्वतंत्रताः संसद सदस्य को, संसद के सत्र के दौरान न्यायालय में, लंबित मामले में गवाह के रूप में उपस्थित होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता ऐसा इसलिए है क्योंकि, अन्य सभी कार्यों से ऊपर सदन की कार्यवाहियों में भाग लेना है।

ख) सामूहिक तौर परः कतिपय ऐसे विशेषाधिकार है जो संसद सदस्य सामूहिक तौर पर प्रयोग करते हैंः

2. संसदीय कार्यवाहियों को प्रकाशित करने अथवा प्रकाशित न करने के अधिकार सहित, ऐसी रिर्पोटों को प्रकाशित करने के लिए एकल व्यक्तियों को दंडित करने का अधिकार

3. सदन से नागरिकों को निकालने का अधिकार

4. संसद के आंतरिक कार्यों को नियंत्रित करने का अधिकार
5. इसके कार्यों के बारे में निर्धारण करने का अधिकार
6. सदन की अवमानना के लिए दंड देने का अधिकार
7. सदस्यों एवं आगन्तुकों को सदन के विशेषाधिकारों को भंग करने के लिए दंड देने का अधिकार

8.33 विधेयकों की श्रेणियां एवं पारित करना

8.33.1 संसद का सबसे महत्वपूर्ण कार्य कानून बनाना है। विधायी प्रक्रिया विधेयक के रूप में आरंभ की जाती है। एक विधेयक प्रस्तावित कानून होता है। यह एक कानून बन जाता है जब इसे राष्ट्रपति द्वारा सहमति दे दी जाती है।

8.33.2 इन विधेयकों को साधारण, वित्त, धन एवं संवैधानिक संशोधन विधेयकों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। यह विधेयक दो प्रकार के होते हैं सरकारी विधेयक एवं सदस्यों के व्यक्तिगत विधेयक/अनु0 3 के अन्तर्गत, धन, वित्तीय एवं साधारण विधेयक आवश्यक तौर पर सरकारी विधेयक होते हैं क्योंकि यह केवल राष्ट्रपति की सिफारिश पर प्रस्तुत किए जाते हैं। अन्य विधेयको को अन्य संसद सदस्यों द्वारा (मंत्री के अलावा कोई सदस्य प्राइवेट सदस्य होता है) भी प्रस्तुत किया जा सकता है। दोनों प्रकार के विधेयकों को पारित करने की प्रक्रिया एक जैसी होती है।

8.34 साधारण विधेयक

8.34.1 सभी विधेयक, वित्त विधेयक, धन विधेयक एवं संवैधानिक संशोधन विधेयक साधारण विधेयक हैं।

8.34.2 ऐसे विधेयक संसद के किसी भी सदन में (लोकसभा अथवा राज्यसभा) राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना प्रस्तुत किए जा सकते हैं सिवाय अनुच्छेद 3

के अन्तर्गत आने वाले विधेयकों के (अर्थात् राज्य को प्रदेश के पुनर्गठन से संबंधित विधेयक)

8.34.3 यह विधेयक दोनों सदनों द्वारा साधारण बहुमत से पारित किए जाते हैं। दोनों सदन ऐसे विधेयकों पर समान अधिकार रखते हैं और यदि किसी कारणवश कोई गतिरोध उत्पन्न होता है तो संयुक्त बैठक आयोजित करके उसे दूर कर लिया जाता है।

8.34.4 राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह एक बार ऐसे विधेयकों को पुनर्विचार के लिए लौटा सकते हैं।

8.34.5 प्रत्येक सदन ने विधेयक को पारित करने के लिए प्रक्रिया निर्धारित की हुई है। सदन की प्रक्रिया के अनुसार विधेयक को तीन स्तरों से होकर निकलना पड़ता है जिसे पाठन (वीडिंग) कहते हैं।

क) प्रथम पाठनः विधेयक सदन में प्रस्तुत किया जाता है। इस स्तर पर कोई चर्चा नहीं होती।

ख) द्वितीय पाठनः यह विचार विमर्श करने का स्तर होता है जब विधेयक पर खंड पर खंड चर्चा होती है।

ग) तृतीय पाठनः इस स्तर पर आने के दौरान विधेयक पर संक्षेप में सामान्य विचार विमर्श किया जाता है और विधेयक को अंत में पारित कर दिया जाता है।

8.34.6 जब एक सदन द्वारा विधेयक पारित हो जाता है तो उसे विचारार्थ अन्य सदन में भेजा जाता है।

संसद के मध्यावकाश के दौरान अध्यादेश जारी करने की राष्ट्रपति की शक्ति/अधिकार

अनुच्छेद 123 वे अन्तर्गत, मंत्रिपरिषद् की सलाह पर राष्ट्रपति संघीय विधान के किसी भी विषय से संबंधित अध्यादेश(शों) को जारी करने का अधिकार रखता है जब संसद का सत्र चालू न हो और वह इस बात से संतुष्ट हो कि परिस्थितियां ऐसी हैं, आवश्यक नहीं है कि आपातकाल है जिसमें 'तत्काल कार्रवाई' करने की आवश्यकता है। चाहे उच्चतम न्यायालय हो अथवा कोई अन्य न्यायालय, राष्ट्रपति के परिस्थितिवश निर्णय लेने पर कोई भी प्रश्न नहीं पूछ सकता, सिवाय 'असद्भावना' के आधार पर संभावना होने पर।

ऐसे अध्यादेश को अनु0 13 (3)(क) के अन्तर्गत उसी प्रकार का 'कानून' माना जाएगा जैसा कि अन्य अध्यादेश को माना जाता है। यह छः महीने की अवधि तक वैध होगा। लेकिन इसे संसद के पुनः एकत्र होने के छः सप्ताह के भीतर दोनों सदनों का अनुमोदन मिल जाना चाहिए अन्यथा यह छः सप्ताहों की अवधि की समाप्ति पर स्वतः ही व्यपगत हो जाएगा।

8.35 धन विधेयक

8.35.1 धन विधेयक को संविधान के अनु0 110 में परिभाषित किया गया है। अनुच्छेद के अनुसार इस अनुच्छेद के (क डी) से (छ गी) में वर्णित सभी अथवा किसी एक मामले से संबंधित कोई विधेयक हो, उसे धन विधेयक माना जाएगा। यह हैं:–

क) किसी कर को अधिरोपित करना, समाप्त करना, माफ करना उसके परिवर्तन करना अथवा विनियमित करना।

ख) भारत सरकार द्वारा धन उधार का विनियमत अथवा गारंटी देना

ग) भारत की समेकित अथवा आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा ऐसी निधि से धन का आहरण अथवा भुगतान करना।

घ) भारत की समेकित निधि (सीएफआई) से धन का समायोजन

ड) भारत की समेकित निधि (सीएफआई) ''प्रभारित'' रूप में किसी व्यय की घोषणा

च) भारत की समेकित निधि से धन जारी करना अथवा प्राप्ति तथा संघ अथवा राज्यों के खातों की लेखा परीक्षा करना

छ) (क) से (च) तक उप वाक्यांशों में निर्दिष्ट किसी मामले में कोई प्रासंगिक मामला।

8.35.2 यदि धन विधेयक की वैधता पर कोई प्रश्न उठता है तो लोकसभा अध्यक्ष का निर्णय अंतिम तौर पर मान्य होगा। लोकसभा अध्यक्ष विधेयक को धन विधेयक के रूप में विधिवत् प्रमाणित करता है क्योंकि यह विधेयक विशेष प्रक्रियाओं के माध्यम से (अनु0 109) पारित होता है।

8.35.3 धन विधेयक, लोकसभा में राष्ट्रपति की सिफारिश के बाद पारित होता है।

8.35.4 लोकसभा द्वारा पारित होने के बाद धन विधेयक राज्यसभा में पारित होने के लिए जाता है जिसके पास चार विकल्प होते हैं:–

क) विधेयक को मूल रूप में पारित करना

ख) विधेयक को अस्वीकृत करना

ग) 14 दिनों तक कोई कार्रवाई न करना

घ) सुझावात्मक संशोधनों के साथ विधेयक को लोकसभा में भिजवा देना।

8.35.5 (ख) अथवा (ग) के मामले में, विधेयक राज्य सभा द्वारा स्वतः पारित किया गया माना जाएगा। (घ) के मामले में, लोकसभा को एकल रूप से अधिकार है कि वह एक अथवा सभी सिफारिश (शों) को स्वीकार करे अथवा अस्वीकार को और ऐसे मामले में भी विधेयक को सिफारिशों सहित अथवा सिफारिशों के बिना पारित माना जाएगा।

1. धन विधेयकों को पारित करने के लिए संसद की संयुक्त बैठक आयोजित करने का कोई प्रावधान नहीं है।

2. लोकसभा तथा राज्यसभा द्वारा धन विधेयक को पारित करने के बाद उसे राष्ट्रपति के समक्ष भेजा जाता है, जो कि अन्य विधेयकों के मामले कर सकते हैं अर्थात् रोक सकते हैं, परन्तु इन विधेयकों को रोकने का कोई अधिकार नहीं है। (अनु0111)

3. 'विनियोग विधेयक' तथा 'वार्षिक वित्त विधेयक' धन विधेयक हैं।

8.36 वित्तीय विधेयक

8.36.1 कोई भी विधेयक जो राजस्व अथवा व्यय से संबंधित है, परन्तु लोकसभा अध्यक्ष द्वारा धन विधेयक के रूप में प्रमाणित नहीं है, वित्तीय विधेयक होता है। यह वित्तीय विधेयक दो श्रेणियों के होते हैंः–

क) अनु0 110 में निर्दिष्ट मामलों में किसी एक से संबंधित विधेयक परन्तु विशेष रूप से उन मामलों से संबंधित नहीं हों। उदाहरण के लिए, कराधान खंड बाला विधेयक, यह संपूर्णता कराधान से संबंधित नहीं है। यह प्रथम श्रेणी का वित्तीय बिल कहलाता है।

ख) कोई साधारण विधेयक जिसमें भारत की समेकित निधि से व्यय संबंधी प्रावधानों का वर्णन हो। इसे द्वितीय श्रेणी का वित्तीय बिल कहा जाता है।

8.36.2 जहां तक इनके पारित करने की प्रक्रिया का संबंध है, वित्तीय विधेयक साधारण विधेयक की भांति होता है सिवाय यह कि वित्तीय विधेयक, राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, और इसे केवल लोकसभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है। वस्तुतः वित्तीय विधेयक सामान्य प्रक्रिया के अनुसार ही पारित किया जाता है जैसा कि सामान्य विधेयक के मामले में होता है।

बहुमत की किस्में

संसद में विशिष्ट विधेयक अथवा प्रस्तावों को पारित करने में, बहुमत की कतिपय किस्में होती है जिनका अनुपालन किया जाता है।

1. सामान्य बहुमतः 'कार्यसाधक बहुमत' भी कहा जाता है, यह विधानमंडल के 50 प्रतिशत से अधिक उपस्थित एवं मत देने वालों का बहुमत कहलाता है, इसमें

मत न देने वाले सदस्यों को नहीं गिना जाता। उदाहरण के लिए, संसद के कुल सदस्यों एवं मतदान करने वालों की संख्या 500 है, 251 अथवा उससे अधिक सदस्यों की क्षमता सामान्य बहुमत कहलाया जाएगा। विश्वास, अविश्वास अथवा निंदा प्रस्ताव, धन, वित्तीय, अथवा साधारण विधेयक, बजट, राज्य विधान सभा (ओं) आदि द्वारा संसद के संशोधन का अनुसमर्थन सामान्य बहुमत द्वारा पारित होते हैं।

2. पूर्ण बहुमतः यह सदन की कुल क्षमता का 50 प्रतिशत से अधिक बहुमत होता है, जिसमें वह सदस्य भी शामित होते हैं जो मत डालने से अगल रहते हैं। उदाहारण के लिए, राज्यसभा के मामले में, जिसकी कुल सदस्य क्षमता 245 सदस्य हैं, 123 और उससे ऊपर होने पर पूर्ण बहुमत होगा।
3. वास्तविक बहुमतः यह सदन की वास्तविक क्षमता के 50 प्रतिशत से अधिक होती है। (रिक्तियों को नहीं गिना जाता) अन्य शब्दों में, सदन की वास्तविक क्षमता, सदन की कुल क्षमता में से रिक्तियों की संख्या घटाकर शेष आने वाली संख्या मानी जाती है। राज्यसभा के मामले में (कुल क्षमता 245) यदि 15 कुल रिक्तियॉ है, 230 वास्तविक क्षमता होगी और इसका 50 प्रतिशत से अधिक (अर्थात् 230)–116 अथवा उससे अधिक को वास्तविक बहुमत माना जाएगा। भारत के उपराष्ट्रपति को हटाने के लिए (इसके लिए संकल्प केवल राज्यसभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है) इस संबंध में संकल्प को पारित करने के लिए वास्तविक बहुमत वांछित होता है।(अनु0 67(ख))
4. विशेष बहुमतः उक्त तीन के अलावा सभी प्रकार के बहुमत विशेष बहुमत कहलाए जाते हैं। यह निम्नलिखित किस्मों के होते हैंः–

1. अनु0 249 के अन्तर्गत विशेष बहुमत। यह मूलतः सदन में उपस्थित एवं वोट देने वाले सदस्यों का 2/3 का बहुमत होता है जिसमें वोट न देने वालों को शामिल नहीं किया जाता। उदाहरण के लिए, यदि राज्यसभा में कुल 200 सदस्य उपस्थित है(कुल क्षमता 245) और मत देते हैं तो इसका (200) 2/3 भाग अनु0 249 के अन्तर्गत विशेष बहुमत माना जाएगा। (अर्थात् अखिल

भारतीय सेवाओं के लिए एक अथवा अधिक का सृजन) इसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए, यदि सदन में 100 सदस्य उपस्थित हैं और उनमें से 10 मत देने से बचते हैं तो इस मामले में इसका (100–10 90) केवल 2/3 हिस्सा अर्थात् 60 सदस्य विशेष बहुमत में माने जाएंगें।

2. अनु0 61 के अन्तर्गत विशेष बहुमत(भारत के राष्ट्रपति पर महाभियोग) अनु0 61 के अन्तर्गत, रिक्तियों की संख्या शामिल करते हुए, सदन की कुल क्षमता के 2/3 भाग से कम सदस्य न हों, उतने सदस्यों द्वारा संकल्प पारित होना चाहिए। उदाहरण के लिए, भारत के राष्ट्रपति के महाभियोग के लिए संकल्प, उच्च सदन के सदस्यों की संख्या, 245, कुल क्षमता का 2/3 भाग के सदस्यों द्वारा समर्पित होना चाहिए जोकि 164 अथवा उससे अधिक सदस्य संख्या बैठती है।

अनु0 368 के अन्तर्गत विशेष बहुमत (संवैधानिक संशोधन) संवैधानिक संशोधन के लिए विधेयक पारित होने के लिए उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों की संख्या 2/3 भाग द्वारा पारित होना अपेक्षित है। इस विषय में संयुक्त बैठक करने का कोई प्रावधान नहीं है। इसके लिए सदन का पूर्ण बहुमत भी होना चाहिए।

संवैधानिक संशोधन विधेयकः उच्चतम न्यायालयों अथवा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाने हेतु संकल्प मुख्य चुनाव आयुक्त, नियंत्रक एवं महालेखाकार आदि को हटाने हेतु अनु0 368 के अन्तर्गत विशेष बहुमत द्वारा पारित होते है। लेकिन, जब कभी भी, संविधान में बहुमत की वांछित किस्म का विशेष उल्लेख नहीं होता, तो उसका तात्पर्य साधारण बहुमत से होता है।

8.37 संवैधानिक संशोधन विधेयक

8.37.1 अनु0 368 में, संसद की संविधान में संशोधन की शक्ति एवं उसकी क्रियाविधि दी गई है। इसके लिए विधेयक को किसी भी सदन (लोकसभा अथवा राज्यसभा) में प्रस्तुत किया जा सकता है और इसके लिए राष्ट्रपति की

सिफारिश की आवश्यकता नहीं है। ऐसा विधेयक अनुच्छेद 368, के अन्तर्गत वांछित विशेष बहुमत के साथ, प्रत्येक सदन द्वारा, अलग–अलग, सदन के उपस्थित एवं मत देने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से कम न हो, उतने सदस्यों द्वारा पारित होना चाहिए। यह बहुमत सदन के पूर्ण बहुमत से अधिक होना चाहिए। ऐसे विधेयक को पारित करने के लिए (अनु0 108) संसद की संयुक्त बैठक करना संभव नहीं है। यदि विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित हो जाता है, तो इसे राष्ट्रपति की सहमति के लिए भेजा जाता है।

24वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम द्वारा, राष्ट्रपति के लिए यह अनिवार्य है कि वह संविधान संशोधन विधेयक पर सहमति दे।

8.37.2 परन्तु संसद की संशोधन शक्ति, संविधान के मूल ढॉचे के आधार पर ही होगी। वस्तुतः संशोधन शक्ति सीमित है। उच्चतम न्यायाल ऐसे संशोधन को अमान्य करार दे सकता है, यदि वह संविधान के मूल ढॉचे के साथ सहमति नहीं दर्शाता।

8.37.3 सरकार को न्यायालय के निर्णय को अपने विरूद्ध इसे चुनौती नहीं समझना चाहिए, अपितु राज्य के दो महत्वपूर्ण अंगों के बीच सहयोग एवं समझौते की भवना से स्वीकारना चाहिए।

8.38 <u>विधेयकों पर सहमति</u>

8.38.1 कोई भी विधेयक, राष्ट्रपति की सहमति के बिना कानून नहीं बन सकता चाहे वह संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित क्यों न हुआ हो। अनुच्छेद 111 के अनुसार, जब कोई विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित हो जाता है, उसे राष्ट्रपति के पास, उसकी सहमति के लिए भेजा जाता है। राष्ट्रपति या तो–

क) विधेयक पर अपनी सहमति देता है, अथवा

ख) वह अपनी सहमति रोक कर रख सकता है, यदि वह धन विधेयक अथवा संवैधानिक संशोधन नहीं है।

ग) वह, धन विधेयक अथवा संवैधानिक संशोधन विधेयक न होने की स्थिति में, उसे संदेश सहित अथवा बिना संदेश के सदन में समक्ष, पुनर्विचार के लिए, अपने संशोधन सुझाव देते हुए लौटा सकता है। जब कोई विधेयक इस प्रकार लौटाया जाता है तो दोनों सदनों को राष्ट्रपति के संदेश के परिप्रेक्ष्य में उस पर पुनर्विचार करना होगा। लेकिन, यदि विधेयक सदनों द्वारा संशोधन सहित अथवा संशोधन के बिना पारित करके राष्ट्रपति की सहमति के लिए उनके पास भेजा जाता है तो राष्ट्रपति अपनी सहमति को रोक कर नहीं रखेगें।

8.39 <u>सामान्य बहुमत द्वारा संशोधन</u>

8.39.1 संविधान के निम्नलिखित प्रावधानों के संशोधन चाहने वाले विधेयक, के लिए, केवल साधारण बहुमत वांछित होता है और ऐसे विधेयक संविधान के अनु0 368 के अंतर्गत संविधान (संशोधन) विधेयक नहीं माने जातेः–

क) नए राज्य की संस्थापना की अभिस्वीकृति, नए राज्यों का गठन एवं सीमा क्षेत्रों में बदलाव, सीमाओं तथा वर्तमान नामों में परिवर्तन करना (अनु02,3,एवं4)

ख) राज्य में विधायी परिषदों को बनाना अथवा समाप्त करना (अनु0 169)

ग) अनुसूचित क्षेत्रों एवं अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों का प्रशासन एवं नियंत्रण करना (पांचवी अनुसूची का पैरा 7), तथा

घ) असम, मेघालय एवं मिजोरम के राज्यों में जनजाति क्षेत्रों का प्रशासन (छठी अनुसूची का पैरा 21)

8.40 <u>विशेष बहुमत द्वारा संशोधन एवं राज्यों द्वारा अनुसमर्थ</u>

8.40.1 संविधान के निम्नलिखित प्रावधानों में संशोधन लाने वाले विधेयक को संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत द्वारा पारित होना होता है तथा राज्यों के डेढ़ गुना से कम न हो, उतने सदस्यों द्वारा अनुसमर्थित भी होना चाहिए, उन विधायकों द्वाारा राष्ट्रपति की सहमति के लिए प्रस्तुत ऐसे विधेयक से पूर्व संकल्प पारित करना होगा।

क) राष्ट्रपति का चुनाव (अनु0 54 एवं 55):

ख) संघ एवं राज्यों की कार्यपालिका शक्ति की सीमा(अनु0 73 एवं 162):

ग) उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय (संविधान के भाग 5 के अध्याय iv, अनु0 241, तथा भाग iv का अध्याय 5)

घ) संघ एवं राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का संवितरण (संविधान के भाग xi का अध्याय 1 तथा सातवीं अनुसूची)

ड़) संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्वः अथवा

च) संविधान में स्वतः संशोधन की प्रक्रिया (अनु0 368)

8.40.2 संविधान में ऐसी कोई समय सीमा उपलब्ध नहीं कराई गई है जिसके भीतर राज्यों को, संविधान विधेयक (संशोधन) के अपने अनुसमर्थन को अवश्य प्रकट करना होगा जोकि इस उद्देश्य के लिए उनके पास भेजा जाता है।

8.41. बजट

8.41.1 अनु0 112 के अनुसार, राष्ट्रपति, प्रत्येक वित्तीय वर्ष के संबंध में, संसद के दोनों सदनों के समक्ष एक वार्षिक वित्तीय विवरण, जिसे बजट कहा जाता है, प्रस्तुत करने के निमित्त बनेंगे। यह विवरण उस वर्ष के लिए अनुमानित आय एवं व्यय का ब्यौरा देता है।

8.41.2 अनुमानित व्यय अलग से दो शीर्षों के अन्तर्गत दर्शाया जाता हैः

क) भारत की समेकित निधि से प्रभारित की गई राशियां : तथा

ख) भारत की समेकित निधि से अन्य खर्चों को पूरा करने के लिए वांछित राशियां

8.41.3 बजट, सरकार की वित्तीय एवं आर्थिक नीतियों तथा कार्यक्रमों की समीक्षा एवं व्याख्या करने का अवसर प्रदान करता है।

8.41.4 बजट प्रस्तुत करने के बाद, लोकसभा, विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों के प्रस्तावित खर्चों (अनुदान के लिए मांगें) पर चर्चा करती है और एक–एक करके अनुमोदित करती है। तब अनुदानों के लिए विभिन्न मांगों के माध्यम से अनुमोदित सभी खर्चे तथा भारत की समेकित निधि पर प्रभारित लागतों को एक एकल विधेयक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है ''विनियोजन विधेयक'' कहा जाता है। कराधान के लिए, राजस्व वृद्धि के उद्देश्य से, प्रस्ताव अलग

से प्रस्तुत किया जाता है जिसे ''वित्तीय विधेयक'' कहा जाता है। यह दोनों विधेयक धन विधेयक कहा जाता है। यह दोनों विधेयक धन विधेयक है और तद्नुसार ही पारित किए जाते हैं।

8.42. लेखानुदान

8.42.1 विनियोजन अधिनियम पारित करने से पूर्व भारत की समेकित निधि से किसी प्रकार के धन का आहरण नहीं किया जा सकता। परन्तु इसे पारित करने में बहुत अधिक समय लगता है, और सरकार को विनियोजन अधिनियम पारित होने से पूर्व धन को खर्च करने के लिए धन की आवश्यकता पड़ती है। तद्नुसार, अनुच्छेद116(क) के अन्तर्गत, लोकसभा, संसद द्वारा विनियोजन अधिनियम पारित होने तक, कार्यपालिका को भारत की समेकित निधि से सीमित राशि खर्च करने के लिए स्वीकृति प्रदान कर सकती है।

8.43. वित्तीय प्रणाली पर संसदीय नियंत्रण

8.43.1 वित्तीय मामलों में, संसद का कार्यपालिका पर प्रभावी नियंत्रण है। वार्षिक बजट संसद में पेश किया जाता है और उसके द्वारा पारित किया जाता है। विनियोजन एवं वित्तीय विधेयक भी संसद द्वारा पारित किए जाते हैं। जब तक विनियोजन विधेयक पारित नहीं होता, भारत की समेकित निधि से सरकार कोई धन आहरित नहीं कर सकती।

8.43.2 यह संसद लोक लेखा समिति तथा प्राक्कलन समिति के माध्यम से वित्तीय मामलों पर नियत्रंण रखती है। लोक लेखा समिति विनियोजन के लेखों पर विचार करती है। यह नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट पर भी विचार करती है। रिपोर्ट, सदन को प्रस्तुत की जाती है। प्राक्कलन समिति, समिति को उचित लगने वाले बजट के ऐसे प्राक्कलनों (लोकसभा में प्रस्तुत) को जांचती है, कार्य–कुशलता बढाने के लिए अन्य कदमों के बारे में, खर्च करने में मित्तव्ययिता बरतने के सुझाव देती है, यह देखती है कि धन समुचित रूप से बढ़ता जा रहा है तथा संसद में किस प्रकार प्राक्कलनों को प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यह भी सुझाव देती है।

भारत की समेकित निधि (सीएफआई)

यह भारत सरकार की विशालतम निधि है। जिसमें भारत सरकार द्वारा प्राप्त सभी राजस्व, ऋणों से प्राप्त धन एवं आय, जमा होती है। किसी भी प्रकार का धन जमा होना अथवा प्रतिपूर्ति करना, संसद के समुचित विधान के बिना भारत की समेकित निधि से नहीं किया जा सकता। लेकिन 'प्रभारित व्यय' के लिए संसद के अनुमोदन की अपेक्षा नहीं है और वह निधि से स्वतः ही आहरित होते हैं। प्रत्येक राज्य की अपनी स्वयं की समेकित निधि है, जोकि उस राज्य के विधान मंडल के प्रधिकार में होती है।

भारत का लोक लेखा

इस निधि में, भारत की समेकित निधि में शामिल निधियों के अलावा, आय के अन्य सभी स्रोत शामिल होते हैं। उदाहरण के लिए, संघ के कार्यों के संबंध में किसी अधिकारी अथवा न्यायालय द्वारा प्राप्त धन जैसे कि पेंशन, भविष्य निधि आदि।

भारत की आकस्मिक निधि

यह अनु0 267 के अन्तर्गत प्रदत्त शक्तियों के आधार पर 1950 में संसद के एक अधिनियम द्वारा तैयार की गई थीं। यह निधि किसी आकस्मिक खर्चे को पूरा करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा व्यय करने के लिए रखी गई है क्योंकि संसद का अनुमोदन लेने के लिए समय लगने की संभावना होती है इस प्रकार व्यय की गई राशि को यदि संसद द्वारा कानून द्वारा स्वीकृति दी जाती है तो पुनः भारत की समेकित निधि से अलग रख दिया जाता है। उदाहरण के लिए, जब छठी लोकसभा 1979 में भंग की गई थी तो सातवीं लोकसभा के खर्च को पूरा करने के लिए भारत की आकस्मिक निधि से राष्ट्रपति द्वारा निधियां स्वीकृत की गई थीं। राज्यों में अपनी स्वयं की आकस्मिक निधियां, संबंधित राज्य के राज्यपालों द्वारा निपटान हेतु रखी गई हैं।

8.44 गिलोटिन

8.44.1 लोकसभा द्वारा, विभिन्न मंत्रालयों की कतिपय मांगों के लिए उन पर बिना किसी प्रकार की चर्चा किए बिना अनुदान स्वीकृत किए जाते हैं। इसे गिलोटिन कहा जाता है। मूलतः यह समय की कमी के कारण किया जाता है।

8.44.2 लेकिन, इस प्रावधान पर प्रश्न उठाए गए कि इससे विधान मंडल का कार्यपालिका पर नियंत्रण कम हो सकता है। इससे बचने के लिए 24 विभागीय संसदीय समितियां (स्थायी संसदीय समितियां) गठित की गई हैं। 1993 के बजट सत्र से लेकर आज तक विभिन्न मंत्रालयों की अनुदान मांग पर विचार विमर्श हेतु विभागीय, संबंधित समिति प्रणाली आरंभ की गई है।

8.44.3 प्रत्येक समिति में 45 सदस्य होते हैं–30 लोकसभा के तथा 15 राज्यसभा के और यह एक वर्ष के लिए कार्य करते हैं। प्रत्येक समिति का एक अध्यक्ष होता है। कुल 24 अध्यक्षों में से 16 की नियुक्ति लोकसभा अध्यक्ष द्वारा की जाती है जबकि राज्यसभा के सभापति शेष बचे 8 अध्यक्षों की नियुक्ति करते हैं।

8.44.4 मूलतः प्रत्येक समिति के कार्य विभिन्न मंत्रालयों विभागों की अनुदान मांगों की समीक्षा करना तथा बिना समय विस्तार किए, एक माह के भीतर सदन को रिपोर्ट प्रस्तुत करना। उनकी रिपोर्टें प्रकृत्या सिफारिश की भांति होती है और सदन के लिए बाध्यकारी नहीं होती।

8.45 <u>संसदीय समितियां</u>

8.45.1 विधान मंडल को जटिल एवं पर्याप्त मात्रा में कार्य करना होता है। विधानमंडल में समय की कमी के कारण, विशिष्ट उद्देश्य के लिए चुनी गई अथवा नियुक्त की गई समिति द्वारा आरंभिक कार्य किया जाता है। यह समितियां आवश्यक तौर पर लोकसभा से संबंधित होती है तथा लोकसभा अध्यक्ष के अधीनस्थ कार्य करती है और अपनी रिपोर्टें उनके समक्ष प्रस्तुत करती हैं। यह संसदीय समितियां स्थायी समितियों तथा तदर्थ समितियों के रूप में वर्गीकृत हैं स्थायी समितियां स्थाई होती हैं। तदर्थ समितियां विशिष्ट

उद्देश्यों के लिए गठित की जाती हैं और उस विशिष्ट कार्य की समाप्ति पर यह भी समाप्त हो जाती है।

8.45.2 अत्यन्त महत्वपूर्ण समितियां जिनकी क्षमता ब्रैकेटों में दी गई है, निम्नानुसार हैंः– व्यवसाय एवं सलाहकार समिति (15) प्राक्कलन समिति (30) लोकलेखा समिति (22) अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जन जातियों के कल्याणार्थ समिति (30)

8.45.3 राज्यसभा के सदस्यों को भी प्रतिनिधित्व दिया जाता है। प्रायः एक तिहाई, सिवाय प्राक्कलन समिति के। समितियों के सदस्य प्रायः चुने अथवा नामित किए जाते हैं जिसकी अवधि एक वर्ष से अधिक नहीं होती। जहां तक संभव होता है संसद में सभी दलों को उनकी सदस्य संख्या के अनुपात में इन समितियों में प्रतिनिधित्व दिया जाता है जिससे कि वे संसद के समग्र सदन की छोटी दुनिया बन जाएं। संसद की सभी समितियों के अध्यक्ष लोकसभा अध्यक्ष के द्वारा नियुक्त किए जाते हैं सिवाय संसद के सदस्यों के वेतन एवं भत्तों की संयुक्त समिति के जिसको अध्यक्ष समिति द्वारा स्वयं चुना जाता है। जहां कहीं भी लोकसभा अध्यक्ष किसी समिति के सदस्य होते हैं, पदेन, वह उस (उन) समिति के अध्यक्ष होते हैं। लोकलेखा समिति के अध्यक्ष लोकसभा अध्यक्ष द्वारा, लोकसभा सदस्यों में से ही नियुक्त किया जाता है और प्रायः वह विपक्षी दल का सदस्य होता है।

8.45.4 कुछ महत्वपूर्ण समितियों के ब्यौरे निम्नानुसार हैंः–

क) प्राक्कलनों पर समितिः इस समिति में 30 सदस्य होते हैं, जो कि सभी, लोकसभा से लिए जाते हैं। इस समिति में, संसद के सभी दलों को समानुपातिक प्रतिनिधित्व दिया जाता है। समिति का अध्यक्ष, लोकसभा के अध्यक्ष द्वारा सदस्यों में से ही नियुक्त किया जाता है। एक मंत्री समिति के लिए नहीं चुना जा सकता और यदि उसका सदस्य मंत्री नियुक्त हो जाता है तो वह समिति का सदस्य नहीं बना रह सकता। समिति का कार्यकाल एक वर्ष से अधिक का नहीं होता। समिति के कार्य इस प्रकार हैंः–

1. प्राक्कलनों को रेखांकित करती नीति की कार्यकुशलता पर रिर्पोट देना।
2. यह योजना की धन का उपयोग प्राक्कलनों में निहित नीति की सीमा के भीतर भली भांति किया जा रहा है।
3. यह सुझाव देना कि संसद में किए प्रकार प्राक्कलनों को प्रस्तुत किया जाना है।

क) समिति, संसद द्वारा अनुमोदित नीति की सीमाओं के भीतर भलीभांति कार्य करती है, परन्तु यदि वह कोई परिवर्तन करना चाहती है तो इसके लिए सुझाव दे सकती है।

ख) लोक लेखा समितिः 22 सदस्सीय समिति एक हस्तांतरणीय मत, 15 लोकसभा के तथा 7 राज्यसभा के सदस्य होते हैं। बाह्यतः यह समिति लोकसभा से संबंधित हैं और इसका अध्यक्ष लोकसभा अध्यक्ष द्वारा नियुक्त किया जाता है जोकि लोकसभा सदस्यों की समिति से ही होता है। परंपरा है कि लोकसभा अध्यक्ष समिति का अध्यक्ष विपक्षी दल के सदस्य को नियुक्त करता है। कोई मंत्री समिति के लिए चयन का पात्र नहीं है और जब इसके सदस्य को मंत्रालय का कोई विभाग दिया जाता है तो उसकी समिति की सदस्यता समाप्त हो जाती है। समिति का कार्यकाल एक वर्ष का होता है।

समिति के कार्यों में शामिल हैः

1. भारत सरकार के रखों को पूरा करने के लिए संसद द्वारा स्वीकृत विनियोजन दर्शातें हुए खातों की जांच
2. भारत सरकार के वार्षिक वित्त लेखों तथा सदन के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले अन्य खातों की जांच करना।
3. भारत के नियंत्रण एवं महालेखा परीक्षक (कैग) की राजस्व प्राप्तियों की रिपोर्टों की जांच करना।

<u>ग) सार्वजनिक उपक्रमों की समिति</u>

इस समिति में 15 सदस्य लोकसभा के तथा 7 सहयोगी सदस्य राज्यसभा के, दोनों सदनों में एकल हस्तांतरणीय मत के माध्यम से चुने जाते हैं। इस

समिति का अध्यक्ष, लोकसभा के सदस्यों के बीच से, लोकसभा अध्यक्ष द्वारा नियुक्त किया जाता है। मंत्री समिति का सदस्य बनने का पात्र नहीं होता। समिति के कार्य इस प्रकार हैंः–

1. लोकसभा के कारोबार के संचालन एवं क्रियाविधि के नियमों की चतुर्थ अनुसूची में निर्दिष्ट सार्वजनिक उपक्रमों के खातों एवं रिपोर्टों की जांच तथा नियंत्रक एवं महालेखाकार की रिपोर्ट, यदि कोई हो, की जांच
2. सार्वजनिक उपक्रमों की कार्यकुशलता एवं स्वायत्तता जांचना
3. लोकसभा अध्यक्ष अथवा सदन द्वारा प्रेषित मामलों अथवा निर्दिष्ट अन्य विषयों की जांच करना।

घ) अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों की कल्याणार्थ समिति

इस समिति में 20 सदस्य लोकसभा के तथा 10 सदस्य राज्यसभा से होते हैं। यह सदस्य समानुपात प्रतिनिधि सिद्धांत के माध्यम से एकल हस्तांतरणीय मत के द्वारा चुने जाते हैं। इसका अध्यक्ष समिति के सदस्यों में से लोकसभा अध्यक्ष द्वारा नियुक्त किया जाता है। मंत्री समिति का सदस्य बनने का पात्र नहीं है। इसके कार्यों में शामिल हैः–

1. अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए आयुक्त द्वारा प्रस्तुत रिपोर्टों पर विचार करना
2. केन्द्र सरकार के विभागों, केन्द्रीय सार्वजनिक उपक्रमों, राष्ट्रीयकृत बैंकों आदि की सेवाओं में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जन जातियों के प्रतिनिधित्व की जांच करना
3. अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए केन्द्र सरकार के कल्याण कार्यक्रमों के कार्य की समीक्षा करना तथा लोकसभा अध्यक्ष अथवा सदन द्वारा प्रेषित ऐसे अन्य मामलों की जांच करना।
1. राज्यकार द्वारा अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लिए कल्याण कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की जांच करना बशर्ते केन्द्र सरकार द्वारा आंशिक रूप से अथवा पूर्णतः इस कार्य के लिए निधियां उपलब्ध कराई गई हों।

समिति पद्धति

समसामयिक समय में सरकारों के पास पर्याप्त कल्याणकारी उत्तरदायित्व होते हैं। विधानों की प्रमात्रा बढ़ने के साथ–साथ विधान की जटिलता एवं तकनीकी स्वरूप की भी वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त संसद का कर्तव्य है। कि वह विधान के निष्पादन की समीक्षा करे। संसद के लिए सभी कार्यों को करना संभव नहीं है क्योंकि लोकसभा में इसके 552 सदस्य होते हैं तथा राज्यसभा में 250 सदस्य (अधिकतम संभव क्षमता) और अधिकांश से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वे शासन के कानूनी एवं तकनीकी पहलुओं से भलीभांति परिचित होंगे। विधान/कानून के कार्यों को सरल बनाने के लिए और समीक्षा को अपेक्षाकृत सरल बनाने के लिए कई प्रकार की समितियों का गठन किया गया। कुछ स्थायी समिति हैं स्वतंत्रता समिति, सरकारी आश्वासनों की समिति और इसी प्रकार की अन्य समितियां: कुछ तदर्थ समितियां होती हैं जोकि विशिष्ट उद्देश्य के लिए बनाई जाती हैं जैसे कि विधेयक पर रिपोर्टें आदि: कुछ समितियां विवादास्पद राष्ट्रीय विषयों जैसे कि बैंकिंग एवं प्रतिभूतियों की अनियमितताओं (1993–93) की जांच के लिए संयुक्त संसदीय समिति का गठन किया गया था: कुछ अन्य हैं जैसे कि प्राक्कलन समिति, लोक लेखा समिति तथा सार्वजनिक उपक्रमों की समिति: कुछ परामर्शक समितियां भी हैं जो विभिन्न मंत्रालयों से संबद्ध हैं।

8.46 प्रस्ताव एवं संकल्प

8.46.1 प्रस्ताव:– यह क्रियाविधि का माध्यम है जिसके द्वारा सदन के कार्यों को फलीभूत करना वांछित होता है। यह सदन के समक्ष प्रश्न अथवा कार्यविधि के सुझाव को प्रस्तावित करता है।

संकल्प– यह स्वतः स्पष्ट प्रस्ताव होता है। यदि संकल्प कानून के रूप में पास होता है तो इसकी कानूनी बाध्यता प्रभावी होती है परन्तु यदि यह मत की अभिव्यक्ति के रूप में होता है, तो इसका केवल विश्वासोत्पादक प्रभाव ही होती है।

8.47. प्रस्तावों की किस्में

8.47.1 निंदा प्रस्ताव– यह प्रस्ताव सत्ता दल की सरकार की नीति के विरूद्ध लाया जाता है जिसे लोकसभा के नियमों एवं क्रियाविधियों के नियम 184 के अन्तर्गत विपक्षी दलों द्वारा लोकसभा में प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि निंदा प्रस्ताव सदन में पास हो जाता है तो मंत्रिपरिषद् को, जितना जल्द से जल्द हो सके, लोकसभा का विश्वास अवश्य प्राप्त करना होगा। आगे, यदि धन विधेयक अथवा राष्ट्रपति को धन्यवाद प्रस्ताव निष्फल हो जाता है, यह भी सरकार की नीति की निंदा का पात्र हो जाता है और सरकार को लोकसभा का विश्वास मत प्राप्त करने की आवश्यकता होती है।

8.47.2 अविश्वास प्रस्तावः यह विपक्षी दल द्वारा केवल लोकसभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है। जब ऐसा प्रस्ताव सदन में लाया जाता है, संसद के सदस्यों को नीतिगत किसी मामले में सरकार की ओर से आचरण अथवा अनाचरण के किसी कार्य पर चर्चा करने का अधिकार है जिसके लिए पर्याप्त समय आबंटित किया गया है। तब सदन में भेजा जाता है। लोकसभा में अविश्वास प्रस्ताव के विकल्प के बाद, मंत्रि परिषद को त्याग पत्र देने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

8.47.3 विश्वास प्रस्तावः मिलीजुली सरकारों की परंपरा उत्पन्न होने के साथ भारतीय संसदीय परंपरा के अन्तर्गत, संसद के नियमों एवं क्रियाविधियों के अन्तर्गत जिस विश्वास प्रस्ताव का प्रावधान नहीं पाया जाता वह जब प्रचलन में है। इसका पहला उदाहरण फरवरी 1979 का था जब चरण सिंह सरकार को राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा में विश्वास मत प्राप्त करने को कहा गया था। यह पूर्णतः 'अविश्वास प्रस्ताव' की भांति होता है सिवाय इसके कि यह सरकार द्वारा स्वयं सदन के अनुमोदन की मांगों को साबित करता है। वस्तुतः यदि विश्वास प्रस्ताव निष्फल हो जाता है, मंत्रिपरिषद् को त्याग पत्र देने के लिए बाध्यम होना होगा। इसका उदाहरण 1990 में वी.पी.सिंह सरकार का तथा 1997 में देवगौड़ा सरकार का गिरना है।

8.47.4 कटौती प्रस्तावः यह बजटीय प्रक्रिया के हिस्से होते हैं जिनमें अनुदानों की राशि की कटौती करने को कहा जाता है। यह केवल लोकसभा में ही प्रस्तुत हो सकते हैं। यह तीन श्रेणियों में वर्गीकृत होते हैंः–

क) नीति विषयक कटौतीः नीति विषयक कटौती प्रस्ताव में निहित है कि प्रस्तुतकर्ता मांग को रेखांकित करते हुए नीति का अनुमोदन नहीं करता। इसकी अभिव्यक्ति का स्वरूप है''कि मांग की राशि को एक रूपया कम करके घटाया जाए।''

ख) किफायती कटौतीः इसका तात्पर्य है कि खर्च की राशि को घटाना। इसमें स्पष्टतः कहा जाता है कि राशि को घटाना है और इसकी अभिव्यक्ति का स्वरूप है ''कि मांग की राशि को रू0..... (एक निर्दिष्ट राशि) तक घटाया जाए''

ग) सांकेतिक कटौतीः यह तब शुरू की गई जहां प्रस्ताव का उद्देश्य, भारत सरकार के उत्तरदायित्व की सीमा के भीतर विशिष्ट शिकायत को संकलित करना है इसकी अभिव्यक्ति का स्वरूप है कि ''मांग की राशि को रू0 100 तक घटाया जाए।''

8.48. <u>संसद की अवमानना एवं विशेषाधिकारों को भंग करना</u>

8.48.1 जब कोई व्यक्ति अथवा प्राधिकारी किसी भी सदन के सदस्यों के किसी भी विशेषाधिकारों अथवा निरापदताओं पर व्यक्तिगत रूप से अथवा सामूहिक रूप से प्रहार अथवा अनादर किया जाता है तो उसे विशेषाधिकारों को भंग करना कहा जाता है।

8.48.2 जब संसद की अवमानना होती हैः– जब किसी प्रकार के आचरण अथवा अनाचरण द्वारा सदन के अथवा इसके किसी सदस्य के कार्यालयीन कार्यों में बाधा अथवा रूकावट, किसी व्यक्ति अथवा प्राधिकारी द्वारा पहुंचाई जाती है। संसद की अवमानना निम्नानुसार मानी जाती है :–

क) सदन, उसकी समितियों अथवा सदस्यों पर लिखे गए लेख अथवा भाषण।

ख) लोकसभा अध्यक्ष अथवा राज्य सभा के सभापति द्वारा, उनके कार्यों के विषय में, उनके द्वारा पक्षपात करने एवं उनके चरित्र पर प्रश्न चिन्ह लगाना।

ग) सदन की कार्यवाहियों की झूठी अथवा तोड़ मरोड़ करके रिपोर्ट का प्रकाशन करवाना।

9. राज्य कार्यपालिका

9.1.1 सरकार का ढांचा– राज्यों में यह केन्द्र की भांति होता है। अंतर केवल इतना है कि राज्य कार्यपालिका की शक्तियां एवं प्राधिकार जहां राज्य की सीमा के भीतर होते हैं, संघ कार्यपालिका के अधिकार एवं शक्तियां समूचे भारत पर विस्तारित होते हैं।

9.2 राज्यपाल

9.2.1 राज्यपाल राज्य का कार्यकारी अध्यक्ष होता है तथा राज्य की मंत्रिपरिषद् के परामर्श पर कार्यवाई करता है। सामान्यतः एक राज्य का एक ही राज्यपाल नियुक्त किया जाता है, परन्तु सातवें संवैधानिक संशोधन 1956 के बाद, एक राज्यपाल को एक अथवा अधिक राज्यों का राज्यपाल अथवा संघ शासित क्षेत्रों का उपराज्यपाल बनाया जा सकता है। संघीय स्तर पर राष्ट्रपति की भांति, राज्य के सभी कार्यकारी कार्य राज्यपाल के नाम से दिए जाते हैं।

9.2.2 राज्यपाल की नियुक्ति, संघ के मंत्रिपरिषद की सिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। वस्तुतः वह केन्द्र का प्रतिनिधि होता है और राज्य के कार्यों पर अपनी साप्ताहिक रिपोर्टें भेजता है। उसकी सेवा का कार्यकाल 5 वर्षों का होता है और उससे पहले उसे निलंबित किया जा सकता है अथवा जब तक उसका उत्तराधिकारी कार्यभारत नहीं संभाल लेता, तब तक उसे पद पर बने रहने का कहा जा सकता है। राष्ट्रपति द्वारा उसका स्थानांतरण एक राज्य से दूसरे राज्य में किया जा सकता है। उसके वेतन एवं भत्ते, राज्य की समेकित निधि से आहरित किए जाते हैं।

9.2.3 राज्यपाल की नियुक्ति के लिए, उसमें निम्नलिखित अर्हताएं वांछित हैं–

क) उसे भारत का नागरिक अवश्य होना चाहिए।

ख) उसने 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर ली हो।

ग) उसने लाभ का कोई पद नहीं लिए धारित किया हो।

घ) यदि संसद अथवा राज्य विधानसभा का सदस्य राज्यपाल के पद पर तैनात हो जाता है तो उसका पद रिक्त हो जाएगा।

9.3.1 विधान मंडल के असंबद्ध सदस्य– यह वह सदस्य होते हैं जिनकी स्थिति निष्कासन अथवा अपसर के बाद राज्नैतिक दल की होगी या नहीं यह विधानमंडल के पीठासीन अधिकारी द्वारा निर्णित किया जाना होगा।

9.4 राज्यपाल की उन्मुक्तियॉ

9.4.1 अनु0 361 के अन्तर्गत, राज्यपाल, अपने पद की कर्तव्यों एवं अधिकरों के कार्य निष्पादन के लिए किसी न्यायालय में जवाबदेह नहीं है।

9.4.2 जब तक व्यक्ति राज्यपाल के पद पर कार्यरत है किसी प्रकार की आपराधिक कार्यवाहियां उसके विरूद्ध बनाई अथवा जारी नहीं रखी जा सकती लेकिन सिविल मामलों में ऐसी कोई उन्मुक्ति उपलब्ध नहीं है, केवल यही राहत है कि राज्यपाल को ऐसी कार्यवाहियों के पूरे ब्यौरे देते हुए दो माह का पूर्व नोटिस दिया जाना चाहिए।

9.4.3 जब तक व्यक्ति राज्यपाल के पद पर आसीन है, न्यायालय उसके विरूद्ध कोई गिरफ्तारी वांरट अथवा आदेश जारी नहीं कर सकता।

9.5 राज्यपाल के कार्य एवं शक्तियां

9.5.1 राष्ट्रपति की भांति, राज्य का राज्यपाल सेना अथवा राजनायिक शक्तियों का स्वामी नहीं होता। लेकिन, उसकी कार्यकारी, विधायी एवं न्यायायिक शक्तियां राष्ट्रपति की भांति होती हैं, सिवाय कुछ सीमाओं एवं प्रतिबंधों के। राज्यपाल के पास कुछ विवेकाधीन शक्तियां भी दी गई हैं जो कि राष्ट्रपति के पास नहीं होतीं।

9.6.1 कार्यकारी शक्तियांः केन्द्र में राष्ट्रपति की भांति, राज्यपाल भी राज्य का कार्यकारी प्रमुख होता है। राज्य सरकार के सभी कार्यकारी कार्यों को उसके नाम से किया जाता है। बिहार, ओडिसा, एवं मध्यप्रदेश के राज्यपालों का यह देखना विशिष्ट दायित्व है कि जनजातियों के कल्याण के लिए मंत्री नियुक्त किया जाता है। असम में, राज्यपाल को विशेष अधिकार, संविधान की VIठी अनुसूची के अन्तर्गत उपलब्ध कराए गए अनुसार, आदिवासी क्षेत्रों के प्रशासन से संबंधित कार्यों के लिए दिए गए हैं।

9.6.2 वह मंख्य मंत्री को नियुक्त करता है और उसके परामर्श पर अन्य मंत्रियों को।

9.6.3 वह राज्य का महा अधिवक्ता नियुक्त करता है तथा राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की भी नियुक्ति करता है। लेकिन, राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों को केवल राष्ट्रपति द्वारा ही हटाया जा सकता है।

9.6.4 वह राज्य विधान सभा के लिए एक एंग्लो इंडियन समुदाय के व्यक्ति को नामित करता है।

9.6.5 वह विधान परिषद् के कुल सदस्यों का 1/6 भाग सदस्यों को नामित करता है।

9.6.6 राज्यपाल राज्य की मंत्रिपरिषद् के विचारार्थ किसी मामले को, जिसे वह समझता है, उनके ध्यानाकर्षित करने की आवश्यकता है, भिजवा सकता है। वह, राज्य के प्रशासन पर मंत्रिपरिषद् के किसी निर्णय के बारे में निरंतर अवगत कराते रहने को भी कह सकता है, और राज्य के मुख्य मंत्री को, राज्यपाल को ऐसी सूचना उपलब्ध कराने तथा निरंतर अनुपालन करते रहने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। राज्यपाल, राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में भारत के राष्ट्रपति के साथ परामर्श करने का पात्र है।

9.7.1 विधायी शक्तियां– राज्यपाल की विधायी शक्तियां कठोर हैं। वह राज्य विधान सभा का एक अभिन्न अंग है। उसकी विधायी शक्तियां निम्नानुसार हैंः–

2. वह राज्य के किसी भी सदनल को संबोधित कर सकता है, संदेश भिजवा सकता है सम्मन भिजवा सकता है अथवा सत्र का आवसान कर सकता है।
3. वह विधानसभा के समक्ष राज्य का बजट प्रस्तुत हो, यह सुनिश्चित करता है।
4. धनविधेयक को प्रस्तुत करने की लिए उसकी पूर्व सिफारिश वांछित है।
5. राज्य विधान सभा द्वारा पारित धनविधेयक सहित किसी भी विधेयक को रोककर रखने का उसका अधिकार है। वह राष्ट्रपति की सहमति के लिए भी विधेयक को सुरक्षित रख सकता है।

6. उसके पास अध्यादेश जारी करने की शक्तियों भी हैं जब राज्य विधानसभा की एक अथवा दोनों सदन चल नहीं रहे हों। लेकिन कुछ मामलों में, अध्यादेश, राष्ट्रपति की पूर्व संस्वीकृति के बाद ही राज्यपाल द्वारा जारी किया जा सकता है। अध्यादेश के पास कानून का बल होता है।

9.8.1 वित्तीय शक्तियां–राज्यपाल की वित्तीय शक्तियां निम्नानुसार हैंः–

1. राज्यपाल की बिना पूर्वानुमति के राज्य विधान सभा में कोई धन विधेयक अथवा वित्तीय विधेयक प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।
2. संविधान ने राज्यपाल को, वार्षिक बजट तथा यदि आवश्यक हो, अनुपूरक बजटों को भी, तैयार कराने तथा राज्य विधान सभा में प्रस्तुत कराने का दायित्व सौंपा है।
3. जोकि विधान सभा द्वारा प्राधिकृत किए जाने के लिए लंबित पड़ा हो, किसी आकस्मिक खर्चें को पूरा करने के लिए राज्य की आकस्मिकता निधि से अग्रिम लेना।

9.9.1 न्यायायिक शक्तियांः राष्ट्रपति की भांति, राज्यपाल को भी, जिन मामलों में राज्य विधान परिषद् कानून बनाने में सक्षम है, उनमें से कतिपय मामलों में माफी देने, प्राणदंड स्थगन, दंड स्थगन अथवा दंड में कमी/माफी अथवा सजा परिवर्तन करने की स्वीकृति देने की शक्तियां हैं। उसके पास प्राणदंड सजा की माफी देने अथवा सजा परिवर्तित करने की शक्तियां नहीं हैं।

9.10.1 आपात्कालीन शक्तियांः राज्यपाल के पास स्वतः कोई आपात्कालीन शक्तियां नहीं हैं, परन्तु वह राष्ट्रपति को सूचित कर सकता है कि राज्य में कानून एवं व्यवस्था की स्थिति बिगड़ गयी है और राज्य को संविधान के प्रावधानों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता। जब ऐसी रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्राप्त होगी, वह राज्य में राष्ट्रपति शासन (अनु0 356) लागू कर देगा। राष्ट्रपति शासन लागू होने के मामले में, राज्यपाल, प्रशासन की बागडोर अपने हाथ में ले लेता है और प्रशासनिक अधिकारियों (सिविल सेवकों) की सहायता से चलाता है।

9.11 राज्यपाल एवं मंत्रियों की परिषद्

9.11.1 केन्द्र की भांति नहीं, जहां मंत्रियों की परिषद् का निर्णय राष्ट्रपति के लिए मानना बाध्यकारी है (अनु0 74(1)), राज्यपाल को अनु0 163 के अन्तर्गत संवैधानिक रूप से विवेकाधीन शक्तियां दी गई हैं और अनु0 163 के खंड में स्पष्टतः उद्धृत है कि जब कभी भी विवेकाधीन शक्तियों के अन्तर्गत मामला होगा, राज्यपाल का निर्णय अतिम होगा। राज्यपाल भी, राष्ट्रपति द्वारा प्रदत्त विशिष्ट जिम्मेदारियों को निभाते समय राज्य के मंत्रियों की परिषद् की सलाह मानने के लिए भी बाध्य नहीं है। लेकिन उच्चतम न्यायाल ने संजीवी बनाम मद्रास राज्य (1970) मामले में निर्णय दिया था कि, जहां राज्यपाल को अपने कार्यों में 'उसके विवेकाधीन– शक्तियों का प्रयोग करना हो, उसके अलावा, राज्यपाल को मंत्रियों की परिषद् की सलाह मामनी होगी।

9.11.2 वे कार्य जो राज्यपाल को विशेष रूप से अपनी विवेकाधीन शक्तियों के अंतर्गत करने हैंः–

क) जैसा कि छठी अनुसूची में वर्णित है, असम के राज्यपाल, अपने विवेक से, राज्य द्वारा जिलापरिषद् को, खनिज पदार्थों के लिए लाईसेंसों से प्राप्त रायल्टी के रूप में देय राशि का निर्धारण कर सकते हैं।

ख) अनु0 239 (2) द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अन्तर्गत राज्य का राज्यपाल, जिसे समीप के संघ शासित क्षेत्र का प्रशासक भी नियुक्त किया गया है, ऐसे प्रशासक के रूप में अपने मंत्रियों की परिषद् के प्रशासक की भांति स्तवंत्र रूप से कार्य कर सकता है।

9.12 महा अधिवक्ता

9.12.1 महाधिवक्ता राज्य का प्रथम विधि अधिकारी होता है। उसका पद एवं कार्य भारत के महान्यायवादी से तुलनीय हैं। उसकी नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है और उस पद पर उसकी इच्छा से तैनात होता है। उसके पारिश्रमिक भी राज्यपाल द्वारा ही निर्धारित किए जाते हैं। महाधिवक्ता के पद पर नियुक्त होने के लिए, उसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद पर नियुक्त

होने के लिए उसे उच्च न्यायालय पद की अर्हताएं अवश्य पूरी करनी होंगी। उसे, वोट के किसी अधिकार के बिना, राज्य की विधान सभा के किसी भी सदन की कार्यवाहियों में बोलने एवं भाग लेने का अधिकार है। उसे राज्य में किसी भी न्यायालय में श्रोता बनने का भी अधिकारी है।

9.13 राज्य विधानमंडल

9.13.1 प्रत्येक राज्य के विधान मंडल में एक राज्यपाल तथा दो सदन होते हैं। जम्मू कश्मीर, बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं उत्तर प्रदेश के विधान मंडल द्विसदनी है अर्थात् विधान सभा तथा विधान परिषद् दोनों हैं। अन्य राज्यों में एक सदन वाला विधान मंडल है अर्थात् राज्य विधान परिषद्।

राज्यपाल के पद के विषय में सरकारिया आयोग की रिर्पोट

राज्यपाल के पद पर तैनात व्यक्ति में विशालतर तटस्थता लाने के लिए, सरकारिया आयोग ने राज्यपाल के पद पर तैनाती करते हुए कतिपय मानकों का सुझाव दिया है जो कि केन्द्र सरकार को राज्यपाल की नियुक्ति के समय ध्यान में रखने चाहिए। वे सुझाव इस प्रकार हैंः–

1. राज्यपाल पद पर तैनाती से पूर्व राज्य सरकार से परामर्श अवश्य कर लेना चाहिए।
2. राज्यपाल उसी राज्य से संबंधित नहीं होना चाहिए।
3. वह समाज का एक लब्ध प्रतिष्ठित व्यक्ति होना चाहिए।
4. उसे उस राज्य की स्थानीय रानीति से स्वयं को अलग रखना चाहिए।
5. उसे पद ग्रहण करने से कुछ समय से पूर्व ही सक्रिय राजनीति से दूर रहने वाला होना चाहिए।
6. उसे केन्द्र में सत्तापक्ष का राजनीतिज्ञ नहीं होना चाहिए यदि उसे जिस राज्य में राज्यपाल के पद पर तैनात किया जा रहा है वहां किसी अन्य दल (दलों) का शासन हो।
7. अल्पसंख्यक समूहों के व्यक्तियों को राज्यपाल पद का अवसर देते रहना जारी रहना चाहिए।

8. राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति को, पाक्षिक रिपोर्टें भेजने की परंपरा अवश्य जारी रहनी चाहिए।

राज्यपाल द्वारा किसी विधेयक को राष्ट्रपति के पास भेजने की राज्यपाल की शक्ति अवश्य जारी रहनी चाहिए।

राष्ट्रपति एवं राज्यपाल की शक्तियां एवं पद प्रतिष्ठा

राष्ट्रपति का पद कार्यात्मक होने की अपेक्षा औपचारिक अधिक है। परन्तु राज्यपाल का पद औपचारिक होने के साथ–साथ कार्यात्मक भी है।

संविधान ने राज्यपाल को कतिपय विवेकाधीन शक्तियां स्पष्ट रूप से दी हैं। परन्तु राष्ट्रपति के लिए कोई सुस्पष्ट विवेकाधीन कार्य नहीं दिए गए हैं। उन्हें संविधान से अनुमानित किया जाता है।

राष्ट्रपति की सभी विवेकाधीन शक्तियों के अलावा, राज्यपाल के पास निम्नलिखित शक्तियां भी होती हैं जोकि राष्ट्रपति के पास नहीं होतीं।

अधिनियम 163(1) के अनुसार, राज्यपाल के कार्यों को करने में मंत्रियों की परिषद् होगी जोकि उसके कार्यों में परामर्श एवं सहायता प्रदान करेगी सिवाय उन कार्यों के जहां उससे अपनी विवेकानुसार कार्य करना अपेक्षित होगा। वस्तुतः राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियां अनु0 163 में स्पष्ट रूप से उद्धृत की गई हैं, अनु0 163(2) के अनुसार, यदि कोई प्रश्न उठता है कि मामला विवेकाधीन है अथवा नहीं, राज्यपाल अपने विवेक से निर्णय लेगा और वह निर्णय अंतिम माना जाएगा।

अनु0 200 के अन्तर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्यपाल राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयक को राष्ट्रपति के पास विचारार्थ भेजे जाने को सुरक्षित रख सकता है। ऐसी शक्ति राष्ट्रपति के पास नहीं है।

अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत, राज्यपाल राष्ट्रपति को राज्य का प्रशासन अधिग्रहीत करने हेतु आमंत्रित कर सकता है, यदि उसे यह महसूस होता है कि राज्य सरकार संविधान के प्रावधानों के अनुसार कार्य नहीं कर सकती।

वस्तुतः राज्य का प्रशासन प्रत्यक्षतः राज्यपाल के नियंत्रणाधीन हो जाता है। परन्तु ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि राष्ट्रपति प्रशासन का कार्यभार सम्भाले। राज्यपाल, मंत्रियों की परिषद् की सहायता और परामर्श के बिना (राष्ट्रपति शासन के दौरान) भी राज्यपाल होता है। परन्तु राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सहायता तथा परामर्श के बिना कार्य नहीं कर सकता। इसलिए केन्द्र के लिए ''राष्ट्रपति शासन'' का कोई प्रावधान नहीं है। कुछ राज्यों के राज्यपालों को संविधान (अनु0 311) के अन्तर्गत ''विशिष्ट उत्तरदायित्व'' स्वीकृत किए गए हैं। वास्तव में यह शक्ति, राष्ट्रपति को दी गई है जोकि राज्य के राज्यपालों को विशिष्ट कार्यों एवं कर्तव्यों को निष्पादित करने के निदेश देता है। यह ''विशिष्ट उत्तरदायित्व'' पूर्णतः राज्यपाल के विवेक पर होता है और उसके व्यक्तिगत निर्णय को किसी भी अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती। विशिष्ट उत्तरदायित्वों के रूप में विभिन्न राज्यपालों के विभिन्न कार्य होते हैं।

क) महाराष्ट्र एवं गुजरात के राज्पालों के लिए यह क्रमशः विदर्भ एवं सौराष्ट्र के विकास के लिए विशेष देखभाल से संबंधित है।

ख) नागालैंड के राज्यपाल के लिए यह नागा द्वारा जब तक अशांति फैलाते हैं, कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने का दायित्व है।

ग) मणिपुर के राज्यपाल के लिए, पर्वतीय क्षेत्रों में समिति के कार्यों के समुचित रूप से कराने के संबंद्ध में है।

घ) सिक्किम के राज्य के लिए यह राज्य में मूलतः शांति बनाए रखने के लिए तथा विभिन्न वर्गों के सामाजिक एवं आर्थिक अन्नयन को सुनिश्चित करने के लिए समान व्यवस्थाएं बनाने के लिए है।

ड़) बिहार, ओडिशा एवं मध्यप्रदेश में राज्यपालों को यह देखना है कि जनजाति के विकास के लिए अलग मंत्रालय का अथवा विशेंश मंत्रालय का गठन हुआ है अथवा नहीं। राज्यपाल का पद गरिमा एवं प्राधिकार, दोनों का है जबकि राष्ट्रपति का पद अधिक गरिमा एवं अधिक प्रतिष्ठा वाला है।

9.14 विधान परिषद् (लैजिस्लेटिव काउंसिल)

9.14.1 संविधान के अनुसार, विधान परिषद् के सदस्यों की संख्या राज्य की विधान सभा की कुल क्षमता का एक तिहाई से अधिक नहीं होना चाहिए। लेकिन यह क्षमता 40 से कम भी नहीं होनी चाहिए।

9.14.2 विधान परिषद् के सदस्य समाज के विभिन्न वर्गों एवं धाराओं से आते हैं।

क) पंचायतों, नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों आदि द्वारा चुने गए सदस्य एक तिहाई से कम न हों।

ख) विधानसभा द्वारा चुने गए सदस्य, एक तिहाई से कम न हों

ग) राज्य में तीन वर्षों से रहने वाले स्नातकों द्वारा चुने जाने वाले सदस्य, 1/12 से कम न हों।

घ) शैक्षणिक संस्थानों में तीन वर्षों के अध्यापन के अनुभव वाले व्यक्तियों द्वारा चुने जाने वाले सदस्य 1/12 भाग से कम न हों

ड़) शेष बचे 1/6 भाग राज्यपाल द्वारा समाज के विशिष्ट एवं सम्मानित व्यक्तियों में से साहित्य, विज्ञान, कला, सहयोगी आंदोलन तथा समाज सेवा के क्षेत्र से नामित किए जाने होते हैं।

9.14.3 केन्द्र के ऊपरी सदन की भांति, राज्य की विधान परिषद् कभी भी भंग नहीं होती है। इसके सदस्य 6 वर्षों की अवधि के लिए चुने जाते हैं तथा इसके सदस्यों को 1/3 भाग प्रत्येक दो वर्षों में सेवानिवृत्त होता है।

9.15 <u>विधान परिषद् को बनाना एवं समाप्त करना</u>

9.15.1 संसद के पास यह अधिकार अनु0 169 के अन्तर्गत है कि वह राज्य की विधान परिषद् को बना सकती है अथवा समाप्त कर सकती है। संबंधित राज्य विधान सभा को उपस्थित सदस्यों के 2/3 सदस्यों से अधिक बहुमत तथा मत मिलने के बाद एक संकल्प पारित करना चाहिए। इसके पश्चात् विधेयक अनुमोदन के लिए संसद भेजा जाता है जो उसे पारित कर सकती है अथवा नहीं भी कर सकती। संसद में, ऐसे संकल्प साधारण बहुमत द्वारा पारित होते हैं।

9.16 विधानसभा (लैगिस्लेटिव असेम्बली)

9.16.1 विधानसभा राज्य विधान लंडल का लोकसदन है जहां सदस्य, पांच वर्षों की अवधि के लिए जनता द्वारा प्रत्यक्षतः चुने जाते हैं, जबतक कि सदन, उससे पहले राज्यपाल द्वारा भंग न किया जाए। इस लोक सदन की क्षमता 60 सदस्यों से कम नहीं होनी चाहिए और 500 से अधिक नहीं होनी चाहिए। लेकिन राष्ट्रपति के पास यह अधिकार है कि वह इस संख्या में परिवर्तन कर सकता है और वास्तव में, गोवा एवं सिक्किम विधानमंडल की क्षमताएं 60 सदस्यों से कम हैं। राज्यपाल यदि यह समझता है कि ऐंग्लों इंडियन समुदाय को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल रहा तो वह इस सदन के लिए एक ऐंग्लो इंडियन सदस्य को नामित कर सकता है।

9.16.2 राज्य विधान मंडल के सत्र एवं उसके अधिकारियों के साथ–साथ उनके कार्य भी लगभग संघीय स्तर पर होने वाले कार्यों के समान ही होते हैं।

9.17 विधायी प्रक्रिया

एक सदनी विधान मंडल में प्रक्रिया बहुत ही सरल होती है। प्रत्येक विधेयक विधानसभा में तैयार होता है, विधिवत् उसके द्वारा पारित होता है तथा उसके बाद राज्यपाल के पास उसकी सहमति के लिए भिजवा दिया जाता है। लेकिन द्विसदनी विधान मंडल में, यह प्रक्रिया भिन्न है। धन विधेयक संसद में प्रस्तुत होने वाले धन विधेयकों, की प्रक्रिया की भांति ही पारित होते हैं।

9.18 वित्तीय एवं साधान विधेयक

9.18.1 विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित होने चाहिएं। विधान परिषद्, विधानसभा की भांति उसके समान स्तर की नहीं होती जबकि संसद में लोकसभा और राज्यसभा दोनों का समान स्तर माना जाता है। राज्य की विधानसभा द्वारा पारित विधेयक को विधान परिषद् में भेजा जाता है, वह तीन संभावनाएं हो सकती हैंः

क) परिषद् द्वारा विधेयक नामंजूर कर दिया जाए।

ख) परिषद् के पास विधेयक भेजने की तिथि से तीन महीनों से अधिक का समय व्यतीत हो जाए और विधेयक बिना पास हुए परिषद् के पास हो, अथवा

ग) परिषद् द्वारा विधेयक संशोधनों के साथ पास पारित किया जाए।

9.18.2 तब विधेयक को विधानसभा को लौटाया जाता है। विधान सभा सिफारिशें मान भी सकती है और नहीं भी मान सकती। यदि इस प्रकार विधानसभा द्वारा दूसरी बार विधेयक पारित करके और विधान परिषद् के पास भेजा जाता हैः–

क) परिषद् द्वारा विधेयक नामंजूर कर दिया जाता है, अथवा

ख) विधेयक बिना पारित किए, परिषद के पास, जिस तिथि को प्राप्त हुआ था उससे एक महीने के बाद भी पड़ा रहे,

ग) विधेयक परिषद् द्वारा सिफारिशों सहित पारित किया जाए जिससे विधानसभा सहमत न हो।

9.18.3 विधेयक को दोनों सदनों द्वारा पास हुआ माना जाएगा, जिस रूप में वह दूसरी बार विधानसभा द्वारा पारित किया गया था। विधान परिषद् के पास अधिकार है कि वह साधारण विधेयक प्रस्तुत करे, परन्तु यदि विधानसभा उसे अस्वीकृत करती है तो वह विधेयक समाप्त हुआ माना जाएगा।

9.18.4 संघीय स्तर पर जैसा होता है, राज्य विधान मंडल में वैसा नहीं होता कि किसी विधेयक को पारित करने के किसी प्रकार का व्यवधान आने पर उसे सुलझाने के लिए संयुक्त बैठक आयोजि करने का प्रावधान हो। दोनों सदन, संयुक्त रूप से केवल एक अवसर पर एकत्र होते हैं–विधानसभा के आम चुनाव के तत्काल बाद, राज्यपाल द्वारा दोनों सदनों को संबोधित करने पर अथवा प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरंभ होने पर।

10 केन्द्र राज्य संबंध

10.1.1 केन्द्र एवं राज्य के बीच शक्तियों का संवितरण संघवाद (फैडरलिज़्म) का एक आवश्यक लक्षण है। संघवाद संविधान में केन्द्र में संघ तथा बाह्य परिधि पर राज्यों की द्विस्तीय राज्यव्यवस्था होती है। जिसमें प्रत्येक को, संविधान द्वारा उनको प्रदत्त क्षेत्राधिकारों में क्रमशः प्रभुसत्ता संपन्न शक्तियां प्रदान की है। ''एक अपने स्वयं के क्षेत्र में अन्य का अधीनस्थ नहीं है, एक एक प्राधिकार दूसरे, अन्य के साथ समन्वय करना है।''

10.1.2 संघवाद का मूल सिद्धांत है कि विधान मंडल, कार्यपालिका तथा वित्तीय प्राधिकार केन्द्र एवं राज्य के बीच, केन्द्र द्वारा पारित किसी कानून द्वारा नहीं विभाजित किए गए हैं अपितु स्वयं संविधान द्वारा दिए गए हैं।

10.2 विधायी संबंध

10.2.1 यद्यपि संघवाद प्रणाली केन्द्र एवं राज्यों के बीच शक्तियों के विभाजन का आधार तत्व है, परन्तु ऐसे विभाजन प्रत्येक देश में उनकी स्थानीय एवं राजनैतिक पृष्ठभूमि के अनुसार भिन्न–भिन्न होते है। अमेरिकन संविधान केवल केन्द्र सरकार की शक्तियों का वर्णन करता है, राज्यों के पास अवशिष्ट शक्ति छोड़ दी है। आस्ट्रेलिया, अमेरिकन ढांचे का अनुमोदन करता है। कनाडा में, दोहरा नाम निर्देशन है, संघवाद एवं प्रादेशिक जिनके पास अधिक शक्तियां हैं। अवशिष्ट शक्ति केन्द्र के पास है।

10.2.2 हमारे संविधान निर्माताओं ने कनाडा की योजना का अनुसरण किया था, जिसमें मजबूत केन्द्र का विकल्प अपनाया गया। लेकिन उन्होंने एक और सूची जोड़ी समवर्ती सूची।

10.2.3 वर्तमान संविधान द्वारा भारत सरकार अधिनियम 1935 द्वारा एक प्रणाली अपनाई गई और शक्तियों को संघ तथा राज्यों के बीच तीन सूचियों में विभाजित किया–संघीय सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची।

10.2.4 संघ सूची में 99 विषय हैं। संघ की सूची में उद्धृत किए गए विषय राष्ट्रीय महत्व के हैं जैसे कि रक्षा, विदेश कार्य, बैंकिंग, मुद्रा एवं सिक्के आदि।

10.2.5 राज्यसूची में 62 विषय हैं। यह स्थानीय महत्व के हैं जैसे कि कानून एवं व्यवस्था स्थानीय सरकार, सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, कृषि आदि।

10.2.6 समवर्ती सूची में 52 विषय हैं। इस समवर्ती सूची में दिए गए विषयों पर केन्द्र एवं राज्य दोनों ही कानून बना सकते हैं, परन्तु यदि केन्द्रीय एवं राज्यों में, समवर्ती विषयों के बीच विवाद उत्पन्न होगा तो, केन्द्र का कानून लागू होगा।

10.2.7 अवशिष्ट शक्तियां–अनुच्छेद 248 में संसद के पास अवशिष्ट शक्तियां हैं। इसमें कहा गया है कि संसद के पास राज्य सूची अथवा समवर्ती सूची में न दिए गए किसी भी विषय पर कोई भी कानून बनाने की विशिष्ट शक्ति है।

10.3.1 <u>राज्य विषयों पर संसद की वैधानिक शक्ति</u>

यद्यपि सामान्य समय में, शक्तियों के विभाजन का कड़ाई से अनुपालन करना जारी रखा जाए और न तो राज्य, न ही केन्द्र, संविधान द्वारा प्रदत्त सीमा में एक–दूसरे पर, अतिक्रमण कर सकते हैं, कुछ विशेष परिस्थितियों में, अधिकार विभाजन की उक्त प्रणाली को या तो निलंबित किया जाता है अथवा संघ की शक्ति को बढ़ाकर राज्यसूची में दिए गए विषयों तक विस्तारित कर दिया जाता है। वे विशेष परिस्थितियां निम्नानुसार हैं:–

10.3.2 <u>राष्ट्रीय हितों में कानून बनाने की संसद की शक्ति</u>

अनु0 249 के अनुसार, यदि राज्यसभा 2/3 उपस्थित सदस्यों द्वारा समर्पित एवं उसकी वोट प्राप्ति के बाद एक संकल्प पारित करती है जिसमें राज्यसूची में निर्दिष्ट विषय के भीतर वर्णित किसी मामले के संबंध में संसद को कानून बनाना चाहिए क्योंकि यह राष्ट्र हित में, तत्काल बनाना अनिवार्य है, तो संसद के लिए समूचे भारत अथवा उसके किसी हिस्से के लिए कानून बनाना पूर्णतः

कानून होगा और वह संकल्प लागू रहेगा। ऐसे संकल्प सामान्यतः एक वर्ष तक लागू रहते हैं, इन्हें चाहे जितनी बार आवश्यक हों, नवीकृत किया जा सकता है, परन्तु एक बारे में एक वर्ष से अधिक नहीं।

10.3.3 आपात्काल की उद्घोषणा के दौरानः अनु0 250 के अनुसार जब, आपातकाल लागू हो, संसद को राज्यसूची में दिए गए सभी मामलों के संबंध में समचे भारत अथवा उसके किसी भाग के लिए कानून बनाने की शक्ति होगी।

10.3.4 राज्यों की सहमति के साथ कानून बनाने की संसद की शक्तिः अनुच्छेद 252 के अनुसार, यदि दो अथवा दो से अधिक राज्यों के विधानमंडल इस आशय का एक संकल्प पारित करते हैं कि राज्य सूची में दिए गए किसी मामले पर संसद द्वारा कानून बनाना वांछनीय है, तो संसद के लिए उस मामले पर कानून बनाना विधिसम्मत होगा। कोई अन्य राज्य उस विषय में संकल्प पारित करके ऐसे कानून को अपना सकता है। ऐसा कानून केवल संसद के अधिनियम द्वारा संशोधित अथवा निरस्त किया जा सकता है न कि उस राज्य के विधान मंडल के अधिनियम द्वारा।

10.3.5 अन्तरराष्ट्रीय संधियों एवं करारों को प्रभावी बनाने के लिए कानून बनाने की संसद की शक्ति।

अनु0 253 में संसद को, समूचे भारत अथवा उसके किसी भाग के लिए किसी कानून को बनाने अथवा अन्तरराष्ट्रीय करारों एवं संधियों समझौंते को कियान्वित करने की शक्तियां दी गई हैं चाहे ऐसी संधियों तथा करारों के विषय राज्य सूची के भीतर आते हों अन्य शब्दों में, शक्तियों के सामान्य वितरण से अन्तराष्ट्रीय दायित्व को निभाने के लिए कानून बनाने में संसद के मार्ग में कोई बाधा नहीं खड़ी होगी चाहे ऐसा कानून राज्यसूची में दिए गए किसी विषय से संबंधित कानून बनाने से संबंधित क्यों न हो।

10.3.6 राज्य में संवैधानिक मशीनरी के विफल होने के मामले अनु0 356 के अन्तर्गत, संसद को राज्य सूची में दिए गए सभी मामलों के संबंध में कानून बनाने की शक्तियां प्राप्त है जब संसद यह उद्घोषणा करती है कि राज्य सरकार संविधान के प्रावधानों के अनुसार कार्य नहीं कर सकती और संसद राज्यों के सभी विधायी कार्य अपने हाथ में ले लेती है।

10.4.1 वस्तुतः संघ एवं राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के संवितरण की योजना से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि संविधान के निर्माताओं ने राज्य विधान मंडलों की अपेक्षा संघीय संसद को अधिक शक्तियां दी हैं।

जम्मू और कश्मीर को विशेष दर्जा

1947 में, स्वतंत्रता मिलने के समय, जम्मू एवं कश्मीर राज्य ने निर्णय लिया था कि वह न तो पकिस्तान के साथ मिलेगा न ही भारत के साथ। लेकिन, जल्दी ही पाकिस्तान ने राज्य की सेना को अपने साथ मिलाना चाहा। इसी बीच महाराजा ने राज्य की स्वायत्तता के लिए कतिपय रियायतों के साथ भारत के साथ''राज्यारोहरण का प्रपत्र'' पर हस्ताक्षर कर लिए। राज्य को विशेष राज्य का दर्ज़ा संविधान के अनुच्छेद 370 में दिया गया है।

विशेष राज्य का दर्ज़ा देने के संबंध में महत्वपूर्ण बातें निम्नानुसार हैं:–

क) राज्य का अपना स्वयं का संविधान है। इसका यह अर्थ भी निहित है कि राज्य में 'दोहरी नागरिकता' के सिद्धांत का पालन किया जा रहा है।

ख) अन्य राज्यों के मामले से विपरीत, जम्मू एवं कश्मीर की अवशिष्ट शक्ति, राज्य के विधान मंडल के पास है, न कि संसद के पास।

ग) केवल युद्ध अथवा बाह्य विद्रोह के आधार पर घोषित राष्ट्रीय आपातकाल जम्मू एवं कश्मीर राज्य पर स्वतः विस्तारित होकर लागू होगा। इसका तात्पर्य यह है कि सेना के विद्रोह के आधार पर घोषित राष्ट्रीय आपातकाल जम्मू एवं कश्मीर पर स्वतः विस्तारित नहीं होगा।

घ) राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति राज्य के मुख्यमंत्री से परामर्श करने के बाद ही होगी।

ड़) किसी भी परिस्थिति में जम्मू एवं कश्मीर राज्य के लिए राज्य सूची के विषयों पर (7वीं अनुसूची) संसद को कानून बनाने का अधिकार नहीं है।

च) राज्य पर वित्तीय आपातकाल (अनु0 360) नहीं लागू किया जा सकता।

छ) राष्ट्रपति शासन के अलावा, राज्यपाल का शासन भी राज्य पर लागू किया जा सकता है जो कि अधिकतम छः महीनों के लिए लागू किया जा सकता है।

ज) संसद के नजरबंदी निवारक कानून (अनु0 22) राज्य पर स्वतः लागू नहीं होते।

झ) राज्य का नाम, सीमा, क्षेत्रफल संसद द्वारा, राज्य विधान मंडल की सहमति के बिना परिवर्तित नहीं किए जा सकते।

ट) इस राज्य के लिए अनु0 19(1) तथा 31(2) उन्मूलित नहीं किए गए हैं, अतः 'संपत्ति का अधिकार' अभी भी जम्मू एवं कश्मीर की जनता को गारंटी प्रदान करता है।

10.5 राज्य विधान मंडल पर राज्य का नियंत्रण

10.5.1 राज्य विषयों पर सीधे ही कानून बनाने की संसद की शक्ति के अलावा, संविधान द्वारा यह व्यवस्था दी गई है कि राज्य विधान मंडल द्वारा विधेयक पारित करने से पूर्व केन्द्र की सहमति लेने से वह विधेयक कानून बन सकता है।

क) यद्यपि राज्य को, राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार है, केन्द्र के पास राज्य विधान मंडल को संघीय कानूनों के साथ, समन्वय बनाए रखने के लिए निर्देश देने का अधिकार है।

ख) सार्ववनिक उद्देश्यों के लिए निजी संपत्ति के अधिग्रहण के लिए राज्य विधान मंडल द्वारा पारित कोई कानून तब तक कानून नहीं बनेगा जब तक उस पर राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त न हुई हो। (अनु0 31ए)

ग) अनु0 200 के अन्तर्गत राज्यपाल को, राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयक के निर्णय को सुरक्षित रखने का अधिकार प्राप्त है। आगे, इसी अनुच्छेद के अन्तर्गत राज्यपाल को निर्देश दिया गया है कि वह उच्च न्यायालय की गरिमा एवं कार्य पद्धति को प्रभावित करने वाले किसी भी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ निर्णय को सुरक्षित रखें।

घ) अनु0 288 (2) के अन्तर्गत, राज्य को जल, विद्युत उसके भंडारण उसे उत्पन्न करने, उसको उपयुक्त अथवा वितरित करने पर केन्द्रीय प्राधिकरणों जैसे कि राष्ट्रीय ताप विद्युत निगम प्राईवेट लिमिटेड(नैशलन थर्मल पावर कॉरपोरेश) (एनटीपीसी) राष्ट्रीय जल विद्युत निगम (एनएचपीसी) आदि द्वारा वितरण करने पर करों को लगाने का अधिकार है। परन्तु इस प्रकार का कानून केवल राष्ट्रपति की सहमति के बाद ही प्रभावी होगा।

ड) अनु0 304(ख) के अन्तर्गत, राज्य विधान मंडल, व्यापार, वाणिज्य एवं जनहित के, राज्य में परस्पर व्यवहार की स्वतंत्रता पर उपयुक्त प्रतिबंधों को लगाने से संबंधित विधेयकों को पारित करने के लिए प्राधिकृत है। परन्तु ऐसे किसी विधेयक को सदन में प्रस्तुत करने के लिए राष्ट्रपति का पूर्व अनुमोदन कराने की आवश्यकता है।

च) संसद, केन्द्र सरकार को, राज्य सरकार के कार्यों एवं कर्तव्यों को अथवा उसके कर्मचारियों को, उस संबंधित राज्य की सहमति के बिना भी प्रत्यायोजित करने के लिए प्राधिकृत कर सकती है। (अनु0 258)

10.6 <u>प्रशासनिक संबंध</u>

10.6.1 संघीय राज्य व्यवस्था की सफलता एवं क्षमता सरकारों के बीच अधिकतम सहयोग एवं समन्वय पर निर्भर करती है। वास्तव में, सरकार की संघीय प्रणाली में संघ एवं राज्यों के बीच प्रशासनिक संबंधों का समायोजन एक जटिल समस्या है। इसलिए, भारत के संविधान निर्माताओं ने केन्द्र एवं राज्यों के बीच प्रशासनिक अधिकार क्षेत्र में विवादों से बचने के लिए विस्तृत प्रावधानों को शामिल करने का निर्णय किया था।

सारगर्भित सांराश एवं वास्तविक सारांश का सिद्धांत

अपने–अपने क्षेत्रों में संघ एवं राज्य विधानमंडलों को सर्वोच्च बनाया गया है और उन्हें एक के लिए आरक्षित क्षेत्र में दूसरे को अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। यदि, एक के द्वारा पारित कानून दूसरे के अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करता है तो न्यायालय सारगर्भित सारांश एवं वास्तविक सारांश का सिद्धांत लागू करेगा।

यदि, यह पाया जाता है कि कानून का वास्तविक सारांश विधान मंडल को सौंपे गए विषयों के भीतर है और कानून का आशय सच्चा है तो उस कानून को समग्र तौर पर वैध माना जाएगा चाहे उसमें कुछ अतिव्याप्ति ही क्यों ना हो। इसका औचित्य यह है कि चूंकि केन्द्र एवं राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन स्पष्ट रूप से नहीं हो सकता, किसी प्रावधान की मौखिक रूप से कड़ी व्यख्या, अतिव्याप्ति के आधार पर कई कानूनों के अवैधीकरण की ओर ले जाएगी। उच्चतम न्यायालय ने 1959 में राजस्थान सरकार बनाम जी. चावला मामले में इस सिद्धांत को प्रतिपादित किया था। न्यायालय के विचार में ऐसे अतिक्रमण केवल प्रासंगीक होते हैं अतः हमले की सीमा नगण्य है।

आभासी कानून का सिद्धांत

यह सिद्धांत स्पष्ट रूप से संघीय संविधान पर लागू होता है। संघीय संविधान में, विधान मंडल द्वारा अपनी शक्ति की सीमा का उल्लंघन या तो प्रकट एवं प्रत्यक्ष होगा अथवा छद्मवेशी, अप्रत्क्ष और बनावटी होगा । यदि कानून छद्मवेशी, अप्रत्यक्ष और बनावटी है तो उसे 'आभासी' कानून कहा जाता है। इस मामले में, यद्यपि जिस विषय पर विधान मंडल द्वारा कानून बनाया जाता है, बाह्य रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि यह उसकी सक्षमता के भीतर है परन्तु उसकी वास्तविक मंशा अन्य विधान मंडल की शक्ति का बनावटी रूप से उल्लंघन करना अथवा छद्मवेशी रूप से उल्लंघन करना है। आभासी कानून के सिद्धांत को लागू करते हुए, न्यायालय समूचे कानून को अवैध बता सकता है। इस सिद्धांत का उद्देश्य एवं भावना यह है कि जो कानून प्रत्यक्ष

रूप से कुछ नहीं कर सकता, वह वही अप्रत्यक्ष रूप से भी नहीं कर सकता। इस सिद्धांत को उच्चतम न्यायालय द्वारा मूपिल नायर बनाम केरल राज्य के मामले में निर्णय मे सुनाया गया था।

10.6.2 संयुक्त राज्य अमेरिका में, संघवाद एवं राज्य प्रशासन एक दूसरे के समानांतर चलते हैं और कोई भी दूसरे पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष अधिकार नहीं दर्शाता। परन्तु, भारत में, मामला भिन्न है। संविधान ने केन्द्र को मजबूत बनाने के लिए पक्का पक्षपात दर्शाया है। केन्द्रीय प्रशासन राज्य प्रशासन पर प्रबल दबाव डालता है।

क) राज्य की कार्यपालिका शक्ति इस प्रकार प्रयोग की जानी चाहिए जिससे संसद के कानूनों (अनु0 256) का अनुपालन सुनिश्चित हो सके तथा वे संघीय कार्यपालिका शक्ति में बाधक अथवा पूर्वाग्रही न हो (अनु0 257)

ख) यदि राज्य, केन्द्र के निदेशों का अनुपालन नहीं करता तो केन्द्र अनु0 356 का आहवान करेगा और राज्य का प्रशासन अपने हाथ में ले लेगा (राष्ट्रपति शासन)

ग) अनु0 258 (2) के अन्तर्गत, संसद को संघीय कानूनों को लागू करने के लिए राज्य की मशीनरी का प्रयोग करने की शक्ति दी गई है।

घ) यदि कोई अवांछित घटना हो जाती है तो अखिल भारतीय सेवाओं (जैसे कि भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा और भारतीय वन सेवा (वन)) के अधिकारियों को, राज्य द्वारा, केवल निलंबित किया जा सकता है। राज्य उनके विरूद्ध अनुशासनिक कार्रवाई नहीं कर सकता।

ड) केन्द्र, राज्य सरकार के ना चाहने पर भी राज्य में सेना और अर्धसैनिक बलों की तैनाती कर सकता है।

ज) अन्तर राज्यीय नदी के जल अथवा नदी घाटी के जल से संबंधित विवादों के मामले में, संसद को निर्णय सुनाने का अधिकार है। इस शक्ति के अन्तर्गत, संसद ने 3 सदस्यों का नदी जल अधिकरण गठित किया है जिसका निर्णय,

यदि संघीय सरकार के राजपत्र में प्रकाशित हो जाता है तो वह संबंधित राज्यों को मानना बाध्यकारी होगा। (अनु0 262)

छ) राज्यों के बीच समन्वय के लिए, राष्ट्रपति को अनु0 263 के अन्तर्गत विवादों को सुलझाने के लिए और अथवा राज्यों एवं संघ के बीच और राज्यों के बीच परस्पर एक–दूसरे के हितों वाले विषयों पर चर्चा करने के लिए परिषद् का गठन करने की शक्ति प्रदान की गई है। अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति ने अभी तक ऐसी तीन परिषदें् गठित की हैं (i) केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् (ii) स्थानीय स्व–सरकारी केन्द्रीय परिषद् (iii) परिवहन विकास परिषद्।

10.7 वित्तीय संबंध

10.7.1 संघ एवं रीाज्यों के बीच वित्तीय संबंधों के प्रावधान, भारत सरकर अधिनियम 1935 से बहुत अधिक व्युत्पन्न हुए हैं। संविधान कर लगाने की विधायी शक्ति तथा कर की प्राप्तियों को समायोजित करने की वित्तीय शक्ति के बीच के अंतर को दर्शाता है। परन्तु यह विभाजन जलरोधी नहीं है। यह भी कि करों से संबंधित अवशिष्ट शक्ति संसद से संबंध रखती है। व्यावहारिक तौर पर, राज्यों के पास कराधान संबंधी शक्ति बहुत ही कम है और वे वित्तीय संसाधनों के लिए केन्द्र पर बहुत अधिक निर्भर रहते हैं। इसके कारण, उन्हें प्रायः 'मंहिमामंडित नगरपालिकाएं' कहा जाता है। राज्य का मुख्य स्रोत केन्द्र से प्राप्त सहायता अनुदान है। वस्तुतः, केन्द्र के पास राज्यों के वित्त पर अत्यधिक नियंत्रण है।

10.7.2 संविधान द्वारा संघीय करों को संघ एवं राज्यों के बीच करों की वसूली एवं समायोजन के आधार पर चार श्रेणियों में विभाजित किया है यह हैंः–

क) संघ द्वारा लगाया गया कर परन्तु राज्य द्वारा वसूला एवं पूर्णतः समायोजित किया गया । (अनु0 270) यह हैं चिकित्सा एवं प्रसाधन सामग्रियों पर उत्पाद शुल्क तथा स्टांप शुल्क

ख) कर केन्द्र द्वारा लगाए एवं वसूले गए। परन्तु समग्रतः राज्य को समनुदेशीत किए गए (अनु0 269) यह हैः–

(i) कृषि भूमि के अलावा अन्य संपत्ति पर उत्तरोत्तर शुल्क लेना,

(ii) कृषि भूमि के अलावा संपत्ति पर संपदा शुल्क,

(iii)यात्रियों एवं वस्तुओं पर सीमा कर (रेलवे, समुद्री अथवा वायुयान द्वारा),

(iv)रेलवे किरायों एवं मालभाड़े पर कर,

(v) स्टॉम्प शुल्कों के अलावा स्टॉक एक्सचेंज पर शुल्क,

(vi)वस्तुओं के अन्तर राज्यीय प्रेषण पर कर, और

(vii) समाचार पत्रों की खरीद बिक्री एवं उसमें दिए गए विज्ञापनों पर कर,

ग) संघ द्वारा करों को लगाया एवं वसूला गया और संघ राज्यों के बीच संवितरित किए गए (अनु0 270) इसमें कृषि आय के अलावा आय पर कर शामिल हैं। वितरण का अनुपात, प्रत्येक पांच वर्षों के लिए राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त वित्त आयोग द्वारा निर्णीत किया जाता है।

घ) संघ द्वारा कर लगाए एवं वसूले गए परन्तु राज्यों के साथ हिस्सेदारी की गई हो। इसमें सीमा शुल्क एवं उत्पाद शुल्क शामिल हैं (औषधीय एवं प्रसाधन सामग्रियों के अलावा) यदि संसद, कानून द्वारा इस प्रकार उपलब्ध कराती हो।

10.7.3 इनके अलावा, केन्द्र को, राज्यों को ऋणों को स्वीकृत करने एवं सहायक अनुदान देने की शक्ति है (अनु0 275) विशेषकर अनुसूचित जन जातियों के कल्याण को प्रोन्नत करने के उद्देश्यों के लिए तथा अनुसूचित क्षेत्रों में प्रशासनिक स्तर को बढ़ाने में सहायता के लिए। वास्तव में, यह राज्यों के लिए आय का सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्रोत है।

10.7.4 संघीय सरकार, भारत की समेकित निधि की प्रतिभूति पर धन उधार ले सकती है, परन्तु ऋणों के लिए राज्यों को, संसद की पूर्वानुमति नेनी अपेक्षित है।

10.7.5 आगे, भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (कैग) को राज्यों के खाते के रख–रखाव का ढंग निर्धारित करने तथा उन खातों की लेखा परीक्षा करने की शक्ति प्राप्त है। 73वें तथा 74वें संशोधनों के बाद नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (कैग) अब पंचायतों एवं नगरनिगमों के खाते की भी लेखा परीक्षा कर सकते हैं।

10.7.6 वित्तीय आपत्काल के समय (नु0 360) राष्ट्रपति, राज्यों को अपने कर्मचारियों के वेतन घटाने तथा राज्यपालों को, अनुमोदन के लिए सभी धन विधेयकों को सुरक्षित रखने के लिए कह सकते हैं।

10.7.7 वस्तुतः राज्य एवं संघ के बीच विधायी, प्रशासनिक एवं वित्तीय संबंधों के उक्त ब्यौरों से यह निश्चित है कि संघ को संविधान द्वारा सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका दी गई है। बहुत से मामलों में, राज्यों को अधीनस्थ की भूमिका तथा लगभग सभी पहलुओं में संघ पर अत्याधिक निर्भर बना दिया गया है।

10.8 सहयोगशील संघवाद

10.8.1 केन्द्र राज्य विवादों को सुलझाने एवं सहयोगशील संघवाद को राष्ट्रीय अखंडता के साथ भारतीय संविधान, आस्ट्रलियन संविधान का अनुसरण करके कई प्रकार की क्रियाविधियां उपलब्ध कराता है। कतिपय संवैधानिक इतर एजेसियां भी हैं जो भारत में सहयोगशील संघवाद को बढ़ाने में सहायक हैं।

10.8.2 संविधान के महत्वपूर्ण प्रावधान

क) परामर्शात्मक मशीनरी, अनु0 263 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को केन्द्र एवं राज्यों के बीच तथा राज्यों के बीच परस्पर उत्पन्न होने वाले विवादों को सुलझाने के

लिए 'अन्तर राज्यीय परिषद' गठित करने की शक्तियां प्रदान की गई हैं जिससे उन्हें सुलझाने के लिए न्यायिक कार्यवाहियों में जाने की आवश्यकता से बचा जा सके।

जून 1990 में, अंतर राज्यीय परिषद् राष्ट्रपति द्वारा औपचारिक रूप से गठित की गई थी। परिषद् की अध्यक्षता प्रधनमंत्री द्वारा की जाती है जिसमें केन्द्रीय मंत्रिमंडल के छः मंत्री, राज्यों के मुख्य मंत्री और केन्द्र शासित प्रदेशों के (दिल्ली एवं पुद्दुचेरी) मुख्यमंत्री शामिल होते हैं। 1996 में, सरकारिया आयोग रिपोर्ट अध्ययन के लिए एक उप समिति नियुक्त की गई थी जिसमें आयोग की कौन सी सिफारिशें अपनाई जा सकती हैं, यह सुझाव देने थे।

ख) निर्णायक तंत्र– अनु0 262 के अन्तर्गत, संसद ने अन्तरराज्यीय जल विवाद अधिनियम 1956 पारित किया था जो मेरे विवाद अथवा शिकायत के संबंध में अन्तरराज्यीय नदी अथवा नदी घाटी जल के नियंत्रण अथवा वितरण, प्रयोग के संबंध में निर्णय था।

ग) पूर्ण विश्वास एवं मान्यता खंड– अनु0 261 में कहा गया है कि एक राज्य के सिविल न्यायालयों द्वारा, न कि आपराधिक न्यायालयों द्वारा दिए गए अथवा पारित किए गए अंतिम निर्णयों अथवा आदेशों को अन्य राज्यों में भी, यदि वे ऐसा चाहें तो समान रूप से लागू करने योग्य माना जाएगा। इसे पूर्ण विश्वास एवं मान्यता खंड के रूप में जाना जाता है।

घ) निष्पादक कार्यों का प्रत्यायोजन– अनु0 258 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को, संघ के कुछ निष्पादक कार्यों को, राज्य को उसकी सहमति से प्रत्यायोजित करने की शक्ति प्रदान की गई हैं। अनु0 258ए के अन्तर्गत, इसी प्रकार राज्य के राज्यपाल को, भारत सरकार की सहमति के साथ, निष्पादक कार्यों में से किसी एक को जो कि विशेष रूप से रोज्य के क्षेत्राधिकार में आता है, सौंपा जा सकता है।

5. पारस्परिक कराधान से उन्मुक्ति– अनु0 285 के अनुसार सरकारी कंपनी अथवा संवैधानिक निगम के स्वामित्व वाली संघीय संपत्त, इसके अन्तर्गत नहीं आती तथा राज्य कराधान से छूट प्राप्त है, सिवाय यदि, संसद द्वारा अन्यथा, कानून द्वारा उसे लागू किया जाए। इसी प्रकार, अनु0 289 के अन्तर्गत, राज्य की संपत्ति एवं आय संघीय कराधान से छूट प्राप्त है सिवाय राज्य सरकार अथवा उसकी ओर से किए जाने वाले व्यापार एवं कारोबार के मामले में। ऐसा मूल रूप से न केवल अनावश्यक विवादों से बचने के लिए किया गया है अपितु केन्द्र एवं राज्य के बीच पारस्परिक सहयोग के लिए स्थान बनाने के लिए भी किया गया है।

10.9.1 संवैधानिक इतर एजेंसियां

क) आंचलिक परिषदें– आंचलिक परिषदें राज्य पुर्नगठन अधिनियम 1956 के अन्तर्गत संवैधानिक इतर निकायों के रूप में गठित की गई थीं। 1956 अधिनियम द्वारा 5 आंचलिक परिषदें गठित की गई थीं–उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी, केन्द्रीय तथा छठी उत्तरपूर्वी परिषद् संसद के अधिनियम द्वारा 1971 में स्थापित की गईं थीं। प्रत्येक परिषद् में, मंख्य मंत्री तथा अंचल के प्रत्येक राज्य के दो अन्य मंत्रिगण तथा संघ शासित क्षेत्र के मामले में प्रशासक। केन्द्रीय गृह मंत्री सभी आंचलिक परिषदों के पदेन, अध्यक्ष होते हैं।

अन्तर राज्यीय परिषद्

संघीय ढांचे के भीतर, दोहरी राज्य व्यवस्था में, राष्ट्रीय तथा राज्य नीतियों के समन्वय तथा उनका क्रियान्वयन करना जटिल हो जाता है, विशेषकर सभी के समान हित वाले तथा हिस्सेदारी के कार्य में। एक सघीय फोरम जो संघीय इकाईयों को एक साथ लाने के लिए सहयोग तथा समन्वय में हो सहायक हो, अनु0 263 में उपलब्ध कराया गया।

अनु0 263 में कहा गया है–यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह महसूस हो कि जनहित परिषद् के संस्थान द्वारा सेवाएं देकर, निम्नलिखित कर्तव्यों को करके होगाः

1. राज्यों के बीच उत्पन्न हुए विवादों पर जांच पड़ताल करना एवं परामर्श देना

2. कुछ अथवा सभी राज्योंः के अथवा केन्द्र और एक राज्य अथवा अधिक राज्यों के बीच, सबके समान हित हैं, उन मुद्दों की जांच करना और विचार–विमर्श करना, अथवा ऐसे किसी विषय पर सिफारिश करना तथा विशेषकर उस विषय के संबंध में नीति एवं कार्रवाई के बेहतर समन्वय के लिए सिफारिशें करना तो वह ऐसी परिषद् का गठन कर सकते हैं।

ऐसी किसी परिषद का कार्य संबंधित मामलों की जानकारी लेना और परामर्श देना है न कि फैसला सुनाने अथवा निर्णय देने का। राष्ट्रपति ने 1990 में अन्तर राज्यीय परिषद् का गठन निम्नलिखित संघटक के साथ किया थाः

1. प्रधान मंत्री अध्यक्ष होंगे
2. राज्यों के मुख्य मंत्री तथा विधान सभा वाले केन्द्रशासति प्रदेशों के मुख्यमंत्री तथा
3. केन्द्रीय मंत्रिमंडल के 6 मंत्रीगण, सदस्यों के रूप में
4. यदि कार्य सूची में कोई संदर्भ हो तो बैठकों में, संघीय परिषदों में, राज्य के मंत्रियों को भी आमंत्रित किया जा सकता है।
5. परिषद् की कार्यवाहियां गुप्त रूप से होनी हैं तथा सभी निर्णय सर्वसम्मति से लिए जाएं
6. पहले, राष्ट्रपति ने स्थानीय स्व शासन की केन्द्रीय परिषद्, परिवहन विकास परिषद् आदि गठित की थीं।

सरकारिया आयोग ने सिफारिश की थी कि अनु0 के अन्तर्गत गठित अंतर राज्यीय परिषद् से अन्य निकायों में अंतर करने के लिए, उसे अंतर–सरकारी परिषद् अवश्य कहा जाए।

जुलाई 1997 में, अन्तर राज्यीय परिषद् की बैठक में 10वें वित्त आयोग की बैकल्पिक विकास योजना के क्रियान्वयन संकल्प को पारित किया था तथा अनु0 356 के प्रयोग को दुरूह बनाने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाने की भी सिफारिश की थी।

10.10.1 उद्देश्य

1) सामूहिक उद्देश्य को ध्यान में रखना तथा सदस्य राज्यों के एक समान समस्याओं को सुलझाना

2) विकासात्मक योजनाओं एवं परियोजनाओं के क्रियान्वयन के लिए आर्थिक एवं प्रशासनिक सहयोग को बढ़ावा देना

3) अंतर राज्य विवादों को सुलझाना तथा अंतर आंचलिक सहयोग को प्रोन्नत करना।

अन्तर राज्यीय नदी जल विवाद

भारत में, कई अन्तर राज्यीय नदियां हैं। इन नदियों तथा नदी घाटियों के जलों का विनियमन एवं विकास अन्तर राज्य विवाद का स्रोत रहा है। उदाहरण के लिए कृष्णा, गोदावरी, नर्मदा, यमुना, कावेरी तथा अन्य नदियों के जल संबंधी विवाद।

संविधान अनु0 262(1) में कहा गया है कि ''संसद, कानून के अंतर्गत किसी अंतर राज्यीय नदी अथवा नदी घाटी में अथवा उसके जल के प्रयोग वितरण अथवा नियंत्रण के संबंध में किसी विवाद अथवा शिकायत पर निर्णय दे सकती

है।'' अनुच्छेद 262(2) आगे कहता है कि इस संबंध में उच्चतम न्यायालय अथवा किसी न्यायालय के पास कोई अधिकार नहीं है। संसद में अन्तरराज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम 1956 बनाया था। इसमें केन्द्र द्वारा अधिकरण को ऐसे किसी विवाद के बारे में अभिदेश मुहैया कराया जाता है जिसमें राज्य से प्राप्त किसी शिकायत अथवा प्रतिवेदन के प्राप्त होने पर केन्द सरकार यह मानती है कि विवाद केवल बातचीत से हल नहीं होगा।

भारतीय संविधान में, जल से संबंधित राज्य के भीतर के मामले राज्यसूची में शामिल है जब कि अन्तरराज्यिक नदी जल से संबंधित मामले केन्द्र की सूची में शामिल हैं। अन्तरराज्यिक नदी जल विवाद में सर्वोत्तम हल निकालने के लिए संसद द्वारा नदी बोर्ड अधिनियम 1956 बनाया गया। इसके द्वारा नदियों एवं नदीघाटी के जल के एकीकृत विकास पर परामर्श के लिए, राज्यों के साथ केन्द्र द्वारा, परामर्श करके नदी बोर्डों की स्थापना करने की बात कही गई है। अधिनियम के प्रावधान 1956 से क्रियान्वित नहीं किए गए हैं।

अभी तक केन्द्र सरकार ने चार अन्तर राज्यीय अधिकरणों–नर्मदा, कृष्णा, गोदावरी एवं कावेरी को स्थापित किया है।

1968 में गुजरात द्वारा शिकायत करने के बाद 1969 में नर्मदा जल अधिकरण गठित किया गया था। तटवर्ती राज्यों में, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान शामिल हैं। अधिकरण ने 1978 में निर्णय दिया और 1979 में शासकी राजपत्र में प्रकाशित किया गया (प्रकाशन के बिना, क्रियान्वयन नहीं किया जा सकता) नर्मदा जल के प्रयोग का विवाद बहुत पुराना था और उन्हें सुलझाने के प्रयास 1963 तक पाए गए थे और उसके बाद अन्तराज्यीय बातचलत असफल रही। उसका कोई परिणाम सामन नहीं आया।

कृष्णा जल अधिकरण 1969 में स्थापित किया गया था और उसका निर्णय 1973 में दिया गया था। निर्णय 1976 में प्रकाशित हुआ था। इसमें कर्नाटक,

महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा ओड़िशा राज्य शामिल थे। गोदवरी अधिकरण के गठन से संबंधित पुष्ठभूमि लगभग कृष्णा अधिकरण के गठन जैसी ही है और राज्य भी वही शामिल हैं जो उसमें शामिल हैं।

कावेरी नदी जल से संबंधित विवादों का अतिहास बहुत पुराना है। विवाद की जड कर्नाटक एवं तमिलनाडु के बीच 1920 में हुए एमझौता भंग हुआ था जिसे कर्नाटक ने भंग किया था यह राज्य उच्च तटवर्ती राज्य था और इसने निर्धारित सीमा से अधिक जल स्रोतों का दोहन किया और इस प्रक्रिया में तमिलनाडु के खेत सूखे रह गए। केन्द्र ने 1991 में अधिकरण की स्थापना की और अंतरिम निर्णय अधिकरण द्वारा 1991 के मध्यम समय में दिया गया था जिसमें तमिलनाडु को 205 टन मीट्रिन्यूविक फीस (टीएम सी एफ टी) वार्षिक रूप से देने का आदेश दिया गया था। जब कर्नाटक सरकार ने आदेश को मानने से मना किया और अधिकरण की शक्तियों के अंतर्गत अंतरिम आदेश पर प्रश्न चिन्ह् लगया, राष्ट्रपति ने उच्चतम न्यायालय से परामर्श किया (अनु0 143) न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि आदेश वैधानिक था और उसे शासकीय राजपत्र में प्रकाशित किया जाना चाहिए जिसका पालन शीघ्र किया गया। अधिकरण का अंतिम आदेश अभी आना बाकी है।

केन्द्र राज्य संबंधों पर सरकारिया आयोग ने अपनी 1988 की रिपोर्ट में इस संबंध में निम्नलिखित सिफारिशें दी हैंः–

i) एक बार, अन्तर राज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम के अन्तर्गत ओवदन, तटवर्ती राज्य से प्राप्त हो जाता है तो केन्द्र सरकार को एक वर्ष के भीतर की अवधि में अधिकरण स्थापित कर देना चाहिए जिससे कि विलम्ब से बचा जा सके, जिसके कारण (बिलम्ब के कारण) जल लंबे समय के लिए व्यर्थ न होता रहे।

ii) केन्द्र सरकार को, किसी राज्य से शिकयत प्राप्त हुए बिना भी, अपने आप निर्णय लेने (विवादित विषय पर) की शक्तियां दी जानी चाहिए।

iii) अधिकरण का निर्णय, अधिकरण की स्थापना की तिथि से पांच वर्षों के भीतर प्रभावी रहना चाहिए। यद्यपि अधिकरण की समय सीमा बढ़ाई जा सकती है।

iv) अधिकरण के निर्णय को उच्चतम न्यायालय के आदेशों का बल देकर बाध्यकारी बनाना चाहिए।

10.11 कार्य

10.11.1 इसका कार्य उस परिषद् में केन्द्र एवं राज्य सरकारों के एक समान विषयों पर विशेषकर आर्थिक एवं प्रशासनिक मामले, सामाजिक योजना, सीमा विवाद भाषायी अल्पसंख्यकों की समस्याएं, अन्तराज्यीय परिवहन एवं राज्यों के पुर्नगठन से उत्पन्न हुए मामलों पर परामर्श देना है। लेकिन वास्तव में, आंचलिक परिषद् मरणासन्न हो गई हैं। आंचलिक परिषदों की बैठकें कई दशकों से आयोजित नहीं हुई हैं।

10.12.1 राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त परिषदें:

राज्यों के बीच विवादों को समाप्त करने तथा बेहतर समन्वय बनाने के लिए परिषदों की स्थापना से संबंधित अनुच्छेद 263 के अन्तर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राष्ट्रपति ने कई परिषदें, केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद्, केन्द्रीय स्थानीय स्व–शासन परिषद्, केन्द्रीय भारतीय औषध परिषद्, केन्द्रीय होम्योपैथी परिषद् आदि नियुक्त की हैं। इसके अलावा चार क्षेत्रीय परिषदें बिक्री कर से संबंधित कार्रवाई एवं नीति के समन्वय के लिए गठित की है।

सरकारिया आयोग

केन्द्र राज्य संबंधों में बढ़ते तनाव को देखते हुए संसद ने जून 1983 में न्यायाधीश आर.एस.सरकारिया की अध्यक्षता के अन्तर्गत आयोग नियुक्त किया था जिसमें केन्द्र राज्य संबंधों का व्यापक तौर पर अध्ययन करना एवं संबंधों को और अधिक सहयोगी एवं कार्यकुशल बनाने के उपायों की सिफारिश करना था। आयोग ने जनवरी 1988 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी।

आयोग ने किसी ढांचागत परिवर्तन की बान नहीं कही अपितु वर्तमान व्यवस्था को जारी रखने को ही अच्छा माना क्योंकि देश में विघटनकारी ताकतें सक्रिय हैं। तथापित आयोग ने केन्द्र राज्य संबंधों के प्रावधानों को धारा प्रवाह बनाए रखने की आवश्यकता पर बल दिया। इसने, केन्द्र को सुझाव दिया कि वह अपनी राज्यों पर वित्तीय पकड़ में ढील दे और इस संबंध में उन्हें अधिक स्वायत्ता प्रदान करे। इस क्षेत्रीय शक्तियों और जिम्मेदार होगी। सरकारिया आयोग की प्रमुख सिफारिशेंः–

1) राज्य के राज्यपाल सबंधी– राज्यपाल, भाग में देखें

2) अनु0 356 संबंधी– आयोग ने पाया कि इस अनु0 का राजनैतिक कारणों के लिए 90 प्रतिशत दुरूपयोग हुआ है। इसलिए इसने सिफारिश की कि–

क) राष्ट्रपति की उद्घोषणा में, शामिल होना चाहिए 'वह कारण कि क्यों राज्य को संविधान के सामान्य प्रावधानों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता।

ख) जहां तक संभव हो, केन्द्र को, अनुच्छेद 356 के प्रयोग की शरण में जाने से पूर्व राज्य सरकार को चेतावनी जारी करनी चाहिए।

ग) इसे राजनैतिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

घ) अनु0 356 संशोधित किया जाना चाहिए जिससे कि राष्ट्रपति को संसद द्वारा अनुमोदन मिलने के बाद ही राज्य विधान मंडल को भंग करने का अधिकार प्राप्त हो।

3) अनु0 258 पर –आयोग ने सिफारिश की कि राष्ट्रपति को कुछ संघीय कार्यपालिका के कार्य राज्यों की सहमति से प्रत्यायोजित करने चाहिएं। इससे 'संघवाद' सहयोग की भावना को और मजबूत करने में सहायता मिलेगी।

4) समवर्ती सूची पर– केन्द्र का समवर्ती सूची के विषयों पर नियंत्रण लचीला होना चाहिए और ऐसे विषयों पर कोई कानून बनाते समय राज्य सरकारों से परामर्श करना चाहिए।

5) अनु0 252 पर– संसद द्वारा 252 के अन्तर्गत कानून बनाने के मामले में (दो अथवा अधिक राज्यों के पारस्परिक परामर्श द्वारा) ऐसे कानून तीन वर्षों से अधिक अवधि के लिए लागू नहीं होने चाहिए। वर्तमानतः ऐसा कानून संसद अब कभी भी चाहे इसे निरस्त कर सकती है जबकि कानून बनाने का अधिकार राज्यों द्वारा दिया गया है।

6) अन्तरराज्यीय नदी जल अधिकरण के अधिनिर्णय स्वतः पालन करने हेतु बाध्यकारी होने चाहिए और केन्द्र द्वारा अधिसूचना जारी करने के बाद नहीं।

7) अनु0 263 के अन्तर्गत केन्द्र को 'अन्तर राज्यीय परिषद्' नियुक्त करनी चाहिए और इसका नाम परिवर्तित करके अंतर–सरकारी परिषद होना चाहिए जिससे कि राजनैतिक विषयों को बाहर रखा जा सके।

8) राज्य एवं केन्द्र के बीच निगमित कर की हिस्सेदारी अनिवार्यतः होनी चाहिए।

9) अधिभार सीमित अविध के लिए ही लगाए जाने चाहिएं।

10) उच्च न्यायालय के नयाधीशों को उनकी इच्छा के विरूद्ध स्थानातरित नहीं किया जा चाहिए।

उक्त इस सिफारिशों में से 2 (क) तथा 2 (ख) (7) एवं (8) को स्वीकार कर लिया गया। लेकिन अन्तरराज्याीय परिषद् का नाम परिवर्तित करने 'अंतर सरकारी परिषद्' नहीं किया गया, जैसा कि आयोग द्वारा सुझाव दिया गया था।

राष्ट्रीय विकास परिषद्

राष्ट्रीय विकास परिषद् (एन डी सी) का गठन 1952 में योजना आयोग के अनुलग्नक रूप में राज्यों को, योजनाओं को तैयार करने में संबद्ध करने के लिए किया गया था जिससे कि संतुलित एवं द्रुत विकास सुनिश्चित किया जा सके। परिषद् दो कार्य निष्पादित करती है।

क) समय–समय पर राष्ट्रीय योजना के कार्य की समीक्षा करना तथा,

ख) राष्ट्रीय योजनाओं के लक्ष्यों एवं उद्देयों की प्राप्ति के लिए उपायों की सिफारिश करना।

यह परिषद्, देश में योजना तैयार करने का निर्णय करने का उच्चतम निकाय है। इसकी बैठक प्रधान मंत्री की अध्यक्षता में होती है। योजना आयोग का सचिव ही इसका सचिव होता है। परिषद योजना के प्रारूप पर विचार विमर्श करती है और यदि आवश्यक हो, तो संशोधन/आशोधन करती है। परिषद् के अनुमोदन के बाद, योजना को संसद में उसके अंतिम रूप से अनुमोदन के लिए भेजा जाता है।

11. वित्त आयोग

11.11.1 अधिनियम 280, के अन्तर्गत, राष्ट्रपति को प्रत्येक पांच वर्षों पर एक वित्त आयोग गठित करने की शक्ति प्राप्त है जो कि उनके समक्ष प्रस्तुत निम्नलिखित की समीक्षा एवं संस्तुति करेगाः

क) केन्द्र एवं राज्यों के बीच वित्तीय संसाधनों के विभाजन से संबंधित कतिपय उपाय, केन्द्र द्वारा राज्यों की सुर्पुद की जाने वाली निवल प्राप्तियों का प्रतिशत तथा ऐसा विभाजन किस प्रकार किया जाएगा, यह संस्तुत करना।

ख) भारत की समेकित निधि में से राज्यों के राजस्वों का सहायता अनुदान किन सिद्धांतों पर किया जाना चाहिए, यह संस्तुत करना।

ग) वित्त स्थिति को मजबूत बनाए रखने के हित में, राष्ट्रपति द्वारा आयोग को भेजे जाने वाला कोई अन्य मामले।

11.12.1 वित्त आयोग में एक अध्यक्ष एवं चार अन्य सदस्य होते हैं। वित्त आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की योग्यता के नियम संसदीय अधिनियम, वित्त आयोग (विविध प्रावधान) अधिनियम 1951 द्वारा तैयार किए गए हैं।

11.2.2 अध्यक्ष एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसे शासकीय कार्यों का अनुभव अवश्य हो। सदस्यों की योग्यताएं निम्नानुसार होनी चाहिएः–

क) उच्च न्यायालय का न्यायाधीन अथवा ऐसे पद पर नियुक्त करने के लिए अर्हता प्राप्त व्यक्ति,

ख) ऐसा व्यक्ति जिसे सरकारी खातों एवं वित्तीय कार्यों का विशेष ज्ञान हो,

ग) वित्तीय मामलों एवं प्रशासन में व्यापक अनुभव वाला व्यक्ति, तथा

घ) अर्थशास्त्र के विशेष ज्ञान वाला व्यक्ति

12. संघ शासित प्रदेश

12.1.1 7वें संविधान संशोधन, 1956 द्वारा राज्यों का विभाजन जो तीन भागों भाग 'क ए', भाग 'ख बी' तथा 'ग सी' तथा प्रदेशों को भाग (घ डी) में, समाप्त कर दिया गया और समग्र भारत क्षेत्र को, राज्यों, संघ शासित प्रदेशों तथा अधिग्रहीत प्रदेशों, यदि कोई हो, में श्रेणीबद्ध किया गया था।

12.1.2 राज्य अथवा प्रदेश संघीय भारत की संवैधानिक इकाईयां हैं और इनका केन्द्र के साथ फैडरल संबंध है। संघ शासित क्षेत्रों की स्थिति तथा राज्यों की स्थिति के बीच अंतर दो प्रकार से अतिसूक्ष्म हैः–

क) वे संविधान के फैडरल ढांचे के हिस्से नहीं हैं और इसलिए शक्तियों के विभाजन में भाग नहीं लेते।

ख) वे राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त सरकारी मुख्य आयुक्तों (चंडीगढ़) के माध्यम से केन्द्र द्वारा सीधे ही शासित होते हैं।

12.1.3 वर्तमानतः सात संघ शासित प्रदेश हैं दिल्ली, द्वीप एवं दमन, दादर एवं नगर हवेली, पुद्दुचेरी, लक्ष्यद्वीप तथा अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह

12.2 संघ शासित क्षेत्रों (यूनियन टेरीटरी) का प्रशासन

संघ शासित क्षेत्रों का प्रशासन राष्ट्रपति के द्वारा सीधे हीं निर्वहन किया जाता है जो, प्रत्येक संघ शासित क्षेत्र के लिए उपराज्यपाल अथवा मुख्य आयुक्त के पदनाम वाले प्रशासक की नियुक्ति करते हैं। लेकिन राष्ट्रपति पड़ोसी राज्य के राज्यपाल को भी प्रशासक नियुक्त कर सकते हैं।

12.2.2 संसद को संघ शासित क्षेत्रों के लिए कानून बनाने की शक्तियां प्राप्त हैं, सिवाय दिल्ली एवं पांडिचेरी के, जहां उनकी अपनी विधान सभाएं हैं तथा संघ शासित क्षेत्रों के लिए अलग से उच्च न्यायालय गठित करने तथा संघ शासित

क्षेत्रों अथवा क्ष्त्र के पास में स्थित उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का विस्तार करके, उस संघ शासित प्रदेश को उसके अंतर्गत ला सकती है। संघ शासित क्षेत्रों में से केवल दिल्ली के पास अपना उच्च न्यायालय है। अन्य संघ शासित प्रदेशों तथा उनके संबंधित उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ पंजाब एवं हरियाणा के उच्च न्यायालय हैं।

दिल्ली	उच्च न्यायालय दिल्ली
दादरा एवं नगर	उच्च न्याययालय, मुम्बई
हवेली	उच्च न्यायाल, मुम्बई
पुद्दुचेरी	उच्च न्यायालय मुम्बई

लक्षद्वीप, अंडमान एवं निकोबार द्वीपसमूह

12.2.3 राष्ट्रपति, संघ शासित क्षेत्रों की प्रगति एवं अच्छे शासन एवं शांति के लिए नियमों एवं विनियमों को बना भी सकते हैं, सिवाय दिल्ली एवं पंडिचेरी के। लेकिन, जब पांडिचेरी की विधान सभा का सत्र नहीं हो रहा होता, तब राष्ट्रपति उनके लिए भी नियम एवं विनियम बना सकते हैं। राष्ट्रपति के विनियमों का वही प्रभाव रहेगा जो कि संसद द्वारा पारित अधिनियमों का होता है। संसद, संघ शासित क्षेत्रों में लोकतांत्रिक ढांचों के लिए उप–विधि बनाने के लिए प्राधिकृत है।

12.3 सलाहकार समितियां

12.3.1 संघ शासित प्रदेशों के बेहतर प्रशासन के लिए विशिष्ट व्यक्तियों के सहयोग लेने के लिए सलाहकार समितियां गठित की गई हैं, जिनसे नियमित रूप से सलाह ली जाती हैं–

क) राज्य सूची में नागरिक प्रशासन से संबंधित नीति के विषय में सामान्य प्रश्न।

ख) संघ शासित क्षेत्रों की वार्षिक वित्तीय विवरणियों (बजटीय) से संबंधित मामलों में।

2. न्यायपालिका

3.

13.1.1 राज्यों एवं केन्द्र के बीच विधायी एवं कार्यपालिका शक्तियों के विभाजन तो हैं परन्तु भारतीय संविधान में न्यायपालिका की शक्तियों के लिए इस प्रकार के विभाजन को नहीं अपनाया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका एवं आस्ट्रलिया स्थिति के विपरीत, जहां कि राज्यों का अपना स्वयं का अलग संविधान है, जो फैडरल से अलग है, भारत में न्यायायिक व्यवस्था एकीकृत तथा संपूर्ण है। राज्य के महत्वपूर्ण तीन अंगों में से, न्यायपालिका संविधान में सर्वोच्य स्थिति पर है।

13.2 न्यायियिक पीठों की किस्में

13.2.1 उच्चतम न्यायालय

(क) संवैधानिक/पूर्ण पीठ– उच्चतम न्यायालय के पांच अथवा अधिक न्यायाधीश होते हैं।

(ख) खंड पीठ– उच्चतम न्यायालय के दो अथवा अधिक न्यायाधीश होते हैं, परन्तु मुख्य न्यायाधीश के सम्मिलित होने पर तीन अथवा अधिक उच्चतम न्यायालय के न्यायधीश होते हैं।

13.2.2 उच्च न्यायालय

क) पूर्ण पीठ– 3 अथवा अधिक न्यायाधीश

ख) खंड पीठ– 2 अथवा अधिक न्यायाधीश

एकल पीठ– केवल एक न्यायाधीश

13.3. उच्चतम न्यायालय

13.3.1 फैडरल संविधान की सारगर्भिता है, केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन। यह विभाजन लिखित संविधान द्वारा किया गया है, जो कि यहां का सर्वोच्च कानून है। संविधान की सर्वोच्चता को बनाए रखने के लिए, केन्द्र एवं राज्यों अथवा राज्यों के बीच विवादों पर निर्णय देने के लिए एक स्वतंत्र एवं समदर्शी प्राधिकार अवश्य होना चाहिए। न्यायालय, संविधान

का अभिरक्षक एवं सर्वोच्च व्याख्याकार है। यह जनता के मूलभूत अधिकारों का भी अभिरक्षक है। यह ''सामाजिक क्रांति के अभिरक्षक'' की भूमिका निभाता है। यह देश के आम कानून का उच्चतम एवं निर्णायक व्याख्याकर भी है। इसके अलावा उच्चतम न्यायालय नागरिक (सिविल) एव आपराधिक मामलों में अपील करने के लिए उच्चतम/सर्वोच्य न्यायालय है।

13.3.2 न्यायाधीशों की संख्या जब संविधान बना था तो इसमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों की संख्या 7 से अधिक न हो, यह व्यवस्था दी गई थी। उसमें न्यायाधीशों की विशाल संख्या कानून द्वारा निर्धारित करने की शक्तियां संसद को दी गई हैं। अपनी इस शक्ति के अन्तर्गत संसद ने न्यायाधीशों की संख्या बढ़ा कर 31 कर दी है, इस संख्या में मुख्य न्यायाधीश शामिल हैं।

13.3.3 न्यायाधीशों की नियुक्तिः उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति, राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के निर्धारित संख्या में न्यायाधीशों से परामर्श करने के बाद, मुख्य न्यायाधीश के रूप में जिन्हें आवश्यक समझते हैं, उन्हें नियुक्त करते हैं। परन्तु अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति हमेशा भारत के मुख्य न्यायाधीश के साथ परामर्श करते हैं। वह यदि आवश्यक समझते हैं, तो उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के अन्य न्यायाधीशों के साथ भी परामर्श करके न्यायाधीशों की नियुक्ति कर सकते हैं।

13.3.4 न्यायाधीशों की नियुक्ति में भारत के मुख्य न्यायाधीश की भूमिका

एक ऐतिहासिक निर्णय में, उच्चतम न्यायालय में, ''सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स रिकॉर्ड एसोसिएशन बनाम केन्द्र सरकार, भारत'' (1993) मामले में निर्णय दिया था कि उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के स्थानांतरण में, भारत के मुख्य न्यायाधीश का मत सर्वोपरि रहेगा। इस निर्णय द्वारा उच्चतम न्यायालय ने अपने पहले निर्णय को रद्द कर दिया था। एस.पी.गुप्ता बनाम भारत के

राष्ट्रपति (1980) मामले में, यह कहा गया था कि भारत के मुख्य न्यायाधीश के मत को मानने की भारत के राष्ट्रपति पर कोई बाध्यता नहीं है।

13.3.5 न्यायालय ने निर्णय दिया कि न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया सर्वोत्तम एवं सबसे योग्य व्यक्तियों में से न्यायाधिश चुचने के लिए ''सम्पूर्ण सहभागी एवं परामर्शक'' प्रक्रिया है। भारत के मुख्य न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के प्रस्तावों पर निर्णय लेने वाले एकल प्राधिकारी हैं। वह इस भूमिका को उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति एवं स्थानांतरणों के संबंध में, उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों के साथ निभाते हैं।

13.3.6 भारत के मुख्य न्यायाधीश का मत, उच्च न्यायाधीशों के मुख्य न्यायाधीशों तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के स्थानांतरण के मामले में निर्धारक कारक है।

13.3.7 जहां, भारत के मुख्य न्यायाधीश से यह अपेक्षा की जाती है कि वे शीर्ष न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में अपने दो वरिष्ठतम सहयोगियों (अब चार वरिष्ठतम सहयोगी) से परामर्श करेंगे, उनसे यह अपेक्षा है कि वे उच्च न्यायालय विशेष में नियुक्तियों की सिफारिश करते हुए, वहां कार्यरत, उन सहयोगियों से भी परामर्श करेंगे जो उस उच्च न्यायालय के कामकाज से भली–भांति परिचित होंगे। भारत के मुख्य न्यायाधीश उच्च न्यायालय के न्यायाधीश अथवा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का मत भी ले सकते हैं। ऐसे मत लिखित रूप में लिए जाने चाहिएं।

13.3.8 <u>उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की निष्पक्षता बनाए रखने वाले बचावकारी उपाय</u>

किसी न्यायपालिका का प्रमाण चिन्ह् है उसकी निष्पक्षता और इसके लिए न्यायाधीशों की स्वतंत्रता आवश्यक है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की स्वतंत्रता संविधान द्वारा सुरक्षित रखी जानी चाही गई है।

क) किसी व्यक्ति/पात्र व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करने से पूर्व राष्ट्रपति को भारत के प्रधान न्यायाधीश के साथ सलाह मशविरा करना होगा।

ख) एक बार नियुक्त होने पर, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को केवल राष्ट्रपति द्वारा, संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित संकल्प के आधार पर, जिस न्यायाधीश को अयोग्य अथवा कदाचार सिद्ध होने के आधार पर, संसद के सदनों में अलग–अलग उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई से कम बहुमत न हो, इस प्रकार मतदान के आधार पर, ही हटाया जा सकता है।

ग) सेवा निवृत्ति के बाद, उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश प्रैक्टिस अथवा किसी न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में अथवा भारत में किसी प्राधिकारी के समक्ष कार्य नहीं कर सकता। केवल अपवाद है कि जब भारत के मुख्य न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय के तदर्थ न्यायाधीश के रूप में कार्य करने हेतु नियुक्त करते हैं।

घ) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन एवं भत्ते तथा न्यायालय के प्रशासनिक खर्चे भारत की समेकित निधि पर प्रभारित होते हैं और संसद की स्वीकृति की शर्त नहीं है।

ड) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन एवं भत्ते उनके अहित करते हुए किसी भी रूप में परिवर्तित नहीं किए जा सकते सिवाय वित्तीय आपतकाल के दौरान।

च) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश का आचरण संसद में उठाया जा सकता है सिवाय इसके हटाए जाने के संकल्प पर चर्चा के।

13.3.9. <u>पिछले 50 वर्षों में संविधान को मजबूत करने में उच्चतम न्यायालय की भूमिका</u>

संविधान के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय विविध प्रकार की भूमिकाएं निभाता है जैसे कि संविधान का अभिरक्षक, मूलभूत अधिकारों का प्रतिभू तथा संविधान का व्याख्याता। उच्चतम न्यायालय को निरंतर संवैधानिक समागम के रूप में

वर्णित किया जाता है क्योंकि यह भारतीय समाज की बढ़ती हुई मांगों के साथ, समनुरूपता में, संविधान के आयाम को विस्तार देता है।

13.3.10 यह प्राथमिक तौर पर न्यायियक समीक्षा की शक्ति का माध्यम है कि न्यायालय, संविधान को विकसित अवस्था में लाने में सहायता प्रदान कर रहा है। इस संबंध में सबसे अधिक मूलभूत योगदान यह है कि यह इस बात पर बल देता है कि भारत में संविधान ही सर्वोच्च है जब कभी भी संसदीय खतरा हुआ है तो साबित हुआ है कि संवैधानिकता ही सर्वोच्च है। जब कभी भी संसदीय खाता हुआ है, संविधान को जैसे केसवानंद भारती मामले में, जो कि विचारार्थ प्रस्तुत किया गया था तो न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों के माध्यम से 'मूलभूत ढांचा' सिद्धांत की पराकाष्टा बता कर सफलता पाई है।

13.3.11 संविधान की उदार व्याख्या उपलब्ध कराकर विशेषकर अनु0 19 एवं 21, इससे मूलभूत अधिकारों के कार्यक्षेत्र में विस्तार करके शिक्षा, निजता, कर्मचारियों के स्वास्थ्य के अधिकारों को शामिल करके तथा संविधान के भाग–III के अन्तर्गत विधिवत् कानूनी प्रक्रिया की संकल्पना को शामिल किया गया है। इससे संविधान के दो महत्वपूर्ण भागों– भाग–III तथा भाग IV के बीच सुसंगता लाने में भी सफलता मिली है–जैसा कि मिनर्वा मिल्स मामले में दिए गए निर्णय से स्पष्ट है। इससे जटिल अनुच्छेदों अर्थात् 352 तथा 356 की न्यायायिक समीक्षा के आयाम को विस्तार देने में भी सफलता प्राप्त हुई है।

13.3.12 इसने अपने ऊपर न्यायायिक सक्रियतावाद के रूप में, जाने जाने वाले नए अपूर्व चमत्कार के माध्यम से भारत की सभी जनता के लिए भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन एवं साफ सुथरे रहने लायक वातावरण को लाने के उद्देश्य से धर्मयोद्धा की भूमिका भी अपना ली है। इसने कार्यपालिका के उत्तरदायित्वों को बढ़ाने के लिए भारतीय विधि शास्त्र के भाग के रूप में जनहित याचिका (पी आई एल) (पिल) की संकल्पना को भी सफलता पूर्वक शामिल कर लिया है।

जनहित याचिका

जनहित याचिका (पी आई एल) अभी हाल ही के वर्षों में विधायी एवं कार्यपालिका के कानूनी दायित्वों को लागू करने के लिए भारत में न्याय पाने के लिए, सबसे अधिक शक्तिशाली हथियारों में से एक है। इसका उद्देश्य जनता के हितों की रक्षा करने में सहायता करना तथा न्याय दिलाना है। इसे जनता के हितों के बचाव में व्यापक पैमाने पर दायर याचिका के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह सामान्यतः जन–समूह के हितों को बचाने के लिए दायर की जाती है न कि व्यक्तिगत हित के लिए, जिनके लिए मूलभूत अधिकार उपलब्ध कराए गए हैं। जनहित याचिका (पी आई एल) जारी करने का अधिकार उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के पास उपलब्ध है। जनहित याचिका की संकल्पना, का मूल उद्गम आस्ट्रेलिया में है यह संविधान की न्यायायिक समीक्षा की शक्ति से उत्पन्न हुआ है। उच्चतम न्यायालय ने अपने विभिन्न निर्णयों में पी.आई.एल से संबंधित नियम विकसित किए हैं। जनहित याचिका (पी.आई.एल) किसी भी लोक कल्याण की भावना वाले व्यक्ति अथवा संगठन द्वारा दायर की जा सकती है। यहां तक कि एक पोस्ट कार्ड पर लिखित समस्या को भी समादेश याचिका माना जा सकता है। न्यायालय द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली राहत प्रायः राज्य को आदेश अथवा निदेश के रूप होता है जिसमें प्रभावित पक्षों को क्षतिपूर्ति देना भी शामिल होता है। जनहित याचिका द्वारा चार महत्पूर्ण उद्देश्य पूर होते हैंः–

1) इससे आम जनता के बीच अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता में पर्याप्त वृद्धि हुई है तथा न्यायपालिका के रूप में संस्थागत व्यवस्थाएं कियान्वित हुई हैं। यह कहा जाता है कि जनहित याचिका ने न्यायापालिका को प्रजातांत्रिक बना दिया है।
2) जनहित याचिका के माध्यम से, उच्चतम न्यायालय ने अनु0 32 तथा 226 की उदार व्याख्या करके मूलभूत अधिकारों के आयाम को व्यापक विस्तार दे दिया है।

3) इसने कार्यपालिका एवं विधानमंडल को आम जनता के प्रति संवैधानिक दायित्वों को निभाने के प्रति दबाव डाला है।

4) इसने जनता के लिए भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन एवं रहने योग्य साफ–सुथरा वातावरण उपलब्ध कराने का प्रयास किया है। लेकिन जनहित याचिका बिना आलोचना वाली नहीं है। कहा यह जाता है कि इससे न्यायालयों की सामान्य न्याय प्रक्रिया में हस्तक्षेप होता है। यह भी कहा जाता है कि इससे कुछ मामलों में, कुछ चीजों में विलम्ब करने के लिए ही छिछोरी याचिकाए दायर की जाती हैं।

1) न्यायपालिका द्वारा जनहित याचिकाओं के अध्ययन करने के लिए एक जांच समिति नियुक्त की जा सकती है जो समय की बचत के लिए उपाय संबंधी रिपोर्ट भी प्रस्तुत करेगी।

2) न्यायपालिका लचीली, छिछोरी जनहित याचिकाओं को दायर करने पर जुर्माना भी लगा सकती है।

3) न्यायपालिका जनहित याचिकाओं को और अधिक प्रभावी ढंग से निपटाने के लिए न्याय मित्र (न्यायालय के मित्र) का उदार ढंग से प्रयोग कर सकती है।

4) सामान्य नियम के तौर पर याचिकाकर्ताओं को याचिका में लगाए गए आरोपों के साक्ष्य अवश्य प्रस्तुत करने चाहिए।

ताजमहल पर प्रस्तावित यान्नी संगीत समारोह (तब) के विरूद्ध जनहित याचिका पर कार्रवाई के दौरान मार्च 12, 1997 को उच्चतम न्यायालय ने अपनी मौखिक संवीक्षा में कहा था कि जनहित याचिका दायर करते समय याचिका में प्रतिकूल तथ्यों की, जिसे व्यक्तिगत जानकारी हो उसे एक शपथपत्र भी अपनी बात के समर्थन में लगाना चाहिए।

न्यायायिक सक्रियतावाद

यह न्यायपालिका द्वारा, राज्य के अन्य अंगों को उनके जो कर्तव्य संविधान द्वारा सौंपे गए हैं, जो कि जनता की सुविधा के लिए होते हैं, उन्हें लागू करवाने के लिए, उसकी निश्चयात्मक भूमिका की ओर इंगित करता है। न्यायायिक सक्रियतावाद, तात्विक रूप में, न्यायपालिका के ऊपर एक असंवेदनशील तथा गैर प्रतिक्रियावादी प्रशासन थोपा गया है जो जनता के हितों की अवहेलना करता है। यह चमत्कार ही है जो कि अभी हाल ही वर्षों में उच्चतम न्यायालय द्वारा लोकप्रिय बनाया गया है, यह सुनिश्चित् करने के लिए कि देश का प्रशासन, कार्यपालिका तथा विधानमंडलों की ओर से की गई लापरवाही का शिकार न हो। न्यायायिक सक्रियतावाद की शक्ति संविधान की न्याययिक संविक्षा की शक्ति से उत्पन्न हुई है।

लेकिन, न्याययिक सक्रियतावाद अल्प काल के लिए स्वागत योग्य चमत्कार है। यदि इसे दीर्घावधि के लिए चलाया जाएगा तो यह बिना समुचित जांच पडताल के कार्यपालिका एवं विधानमंडल से अधिक शक्तियॉ मानकर न्यायपालिका के साथ शक्ति के विलगन की संकल्पना को समाप्त कर देगी। इसलिए न्यायपालिका को आत्म संयम बरतना होगा तथा न्यायाधीशों के लिए नैतिक संहिता विकसित करनी होगी और वे जब न्यायायिक सक्रियतावाद में शामिल हों तो उसे केवल अंतिम सहरा मान कर ही उसका प्रयोग करें।

न्यायायिक सक्रियतावाद पर नियंत्रण की आवश्यकता

i) आलोचक तर्क देते हैं कि उच्चतम न्यायालय अनु0 32 तथा अनु0 226 की संवैधानिक सीमा रेखा को, उन मामलों की सुनवाई करके तथा उन मामलों पर निर्णय देकर कलंकित कर रहा है जो मूलभूत अधिकारों के उल्लंघनों से संबंधित हैं।

ii) उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश, जे.एस. वर्मा ने स्वंय इस बात पर खेद व्यक्त किया था कि चारा घोटाले के मामले में पटना उच्च

न्यायालय पीठ द्वारा "मानिटरिंग" की कवायद की जा रही थी। पीठ द्वारा 29 अगस्त, 1977 के आदेश पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है जब इसने बिहार के तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री लालू प्रसाद यादव की गिरफ्तारी पर सेना की सहायकता किन परिस्थितियों में मांगी गई थी, इसकी जांच गठित करने के केन्द्र सरकार के अधिकार पर प्रश्न चिन्ह तक लगा डाला।

iii) उच्चतम न्यायालय ने दिल्ली उच्च न्यायालय को श्री जोगिन्दर सिंह के बाद, केन्द्र द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरों के निदेशक के रूप में श्री आर.सी.शर्मा की नियुक्ति को चुनौती देने वाली याचिका पर कार्रवाई करने के निर्णय को अप्रत्यक्ष रूप से एवं नरमी से अनुचित ठहराया।

13.3.13 वस्तुतः इसने देश में सामाजिक एवं आर्थिक बदलाव के माध्यम के रूप में भी भूमिका निभाई है।

13.3.14 राष्ट्रपति के अभिदेश के मामले (1998) भारत के राष्ट्रपति ने न्यायाधीशों की नियुक्ति में भारत के मुख्य न्यायाधीश की भूमिका के संबंध में कतिपय स्पष्टीकरण मांगे। अपने निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति के बारे में अपने विचार देते समय मुख्य न्यायाधीश द्वारा निम्नलिखित मार्गदर्शी बातों का अनुपालन करने की बात कही है:–

क) भारत के मुख्य न्यायाधीश को नए न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में चार वरिष्ठ न्यायाधीशों के साथ परामर्श करना चाहिए।

ख) इन 4 न्यायाधीशों द्वारा प्रगट किए गए विचारों को लिखित रूप में सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

ग) यदि सरकार, भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियुक्ति के लिए संस्तुत न्यायाधीय की नियुक्ति न करने के लिए महत्वपूर्ण साक्ष्य उपलब्ध कराती है, तब मुख्य न्यायाधीश को अन्य न्यायाधीशों के साथ परामर्श करना चाहिए।

घ) यदि भारत के मुख्य न्यायाधीश की सिफारिशें शर्तों एवं परामर्शक प्रक्रिया की अपेक्षाओं की अनुपालन किए बिना की जाती हैं तो ऐसी सिफारिशों को मानने के लिए भारत सरकार बाध्य नहीं होगी।

13.3.15 <u>उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हताएं</u>

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए व्यक्ति को निम्न शर्तें पूरी करनी होंगीः–

क) भारत का नागरिक होना चाहिए, और

ख) कम से कम लगातार पांच वर्षों तक उच्च न्यायालय अथवा दो अथवा अधिक ऐसे न्यायालयों के न्यायाधीश के रूप में कार्य का अनुभव हो, अथवा

ग) राष्ट्रपति के मतानुसार विशिष्ट न्यायाधीश होना चाहिए।

13.3.16 <u>कार्यकाल एवं वेतन</u> : उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु होने पर, राष्ट्रपति को संबोधित त्याग पत्र द्वारा अथवा अयोग्य अथवा कदाचार सिद्ध होने के आधार पर संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित संकल्प, जिसमें, प्रत्येक सदन के उपस्थित एवं मतदान करने वाले दो तिहाई सदस्यों से कम न हों, द्वारा, राष्ट्रपति द्वारा हटाए जाने पर कार्यमुक्त होता है।

13.3.7 भारत के मुख्य न्यायाधीश को 1,00,000–रू0 तथा न्यायाधीशों को 90,000–रू0 प्रति माह वेतन मिलता है। वेतन के अलावा वे अन्य भत्तों तथा कियारा मुक्त सरकारी आवास के पात्र होते हैं।

13.3.18 कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश की नियुक्तिः भारत के मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त होता है अथवा जब मुख्य न्यायाधीश अपनी ड्यूटी को निभाने में असमर्थ हों तो, राष्ट्रपति न्यायालय के न्यायाधीशों में से किसी एक को उनके स्थान पर नियुक्त कर सकते हैं। (अनु0 126)

13.3.19 तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्तिः यदि किसी समय न्यायालय में किसी सत्र में, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के कोरम में कमी के कारण कार्य में व्यवधान आ रहा है तो भारत के मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति की पूर्व सहमति तथा संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करने के बाद

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश (अनु0 127) के रूप में नियुक्त हाने के लिए विधिवत् रूप से अर्हता प्राप्त उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में? जितनी अविध के लिए आवश्यक हो, तदर्थ न्यायाधीश के रूप में न्यायालय की सुनवाईयों के समय उपस्थित रहने का लिखित रूप में अनुरोध कर सकते हैं।

13.3.20 उच्चतम न्यायालय की न्याय व्यवस्था उच्चतम न्यायालय की न्याय व्यवस्था पांच प्रकार की है अर्थात् मौलिक, रिट, अपील, सलाहकारी एवं संशोधनात्मक न्याय व्यवस्था।

क) मौलिक न्याय व्यवस्थाः उच्चतम न्यायालय की मौलिक न्याय व्यवस्था विशुद्धतः फैडरल विशेषता वाली है, तथा इसका, भारत सरकार तथा एक अथवा अधिक राज्यों के साथ परस्पर, कानून अथवा तथ्य से संबंधित किसी विवाद को निर्धारित कनूने का विशेष अनन्य अधिकार है। लेकिन, संविधान अधिनियम, 1956 (सातवां संशोधन) के अनुसार उच्चतम न्यायालय की मौलिक न्याय व्यवस्था उन विवादों पर नहीं है, यदि वे किसी संधि, करार, प्रसंविदा, प्रबंधन, सनद अथवा इसी प्रकार के अन्य प्रपत्र के किसी प्रावधान पर उत्पन्न हुए हैं जो कि 26 जनवरी 1950 से पूर्व निष्पादित अथवा उस पर समझौता किया गया हो और उसके बाद परिचालन में लगातार हो अथवा उसके बाद अथवा जिसमें ऐसे विवाद की सीमा उक्त क्षेत्राधिकार में नहीं आती परन्तु उच्चतम न्यायालय, राष्ट्रपति द्वारा सलाह मांगे जाने पर अपने सलाहकारी विचार प्रस्तुत कर सकता है। संविधान में कतिपय प्रावधान ऐसे हैं जो कि उच्चतम न्यायालय के मौलिक न्याय व्यवस्था से बाहर अपवर्जित करते हैं।

कतिपय विवाद, जिनका निर्धारण अन्य न्यायाधिकरणों में निहित हैं

i) अनु0 363(1) के प्रावधान में निर्दिष्ट विवाद

ii) अनु0 262 में दिए गए संवैधानिक न्यायाधिकरण को भेजे गए, अन्तर राज्यीय जल आपूर्ति हस्तक्षेप की शिकायते (चूंकि संसद ने अन्तर राज्यीय जल विवाद अधिनियम 1956 अधिनियमित किया है)

iii) वित्त आयोग को भेजे जाने वाले मामले (अनु0 280)

iv) केन्द्र एवं राज्यों के बीच कतिपय खर्चों का समायोजन (अनु0 290)

v) केन्द्र एवं राज्यों के बीच कतिपय खर्चों का समायोजन (अनु0 290)

ख) रिट न्याय व्यवस्थाः अनु0 32 में मूलभूत अधिकारों को लागू करने का दायित्व सर्वोच्च न्यायालय को सौंपा गया है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत, प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अपने मूलभूत अधिकारों पर किसी प्रकार से अतिक्रमण होने पर सीधे ही सर्वोच्च न्यायालय में न्याय की गुहार लगा सकता है। रिट न्याय व्यवस्था को कई बार उच्चतम न्यायालय की मौलिक न्याय व्यवस्था कहा जाता है। परन्तु कठोर अर्थ में मौलिक न्याय व्यवस्था संविधान की फैडरल विशेषता वाली है।

ग) अपीलीय न्याय व्यवस्थाः उच्चतम न्यायालय की अपीलीय न्याय व्यवस्था तीन प्रकार की हैंः–

i) संवैधानिकः संवैधानिक मामलों में, उच्चतम न्यायालय में अपील तब स्वीकार्य होती है, यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करता है कि प्रस्तुत किए गए मामले में संविधान की व्याख्या से संबंधित पर्याप्त कानूनी सवाल सुलझाने वाले हैं। यदि उच्च न्यायालय प्रमाण पत्र देने से मना करता है तो उच्चतम न्यायालय, इस बात से संतुष्ट होने पर कि मामले में इस प्रकार के सवाल हैं जिन पर कानूनी व्याख्या आवश्यक है तो वह अपील के लिए विशेष अनुमति दे सकता है।

ii) सिविलः सिविल मामलो में, उच्चतम मामलो में अपील तब स्वीकार्य होती है यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करता है कि विवाद की विषय वस्तु का मूल्य 20,000–रू0 से कम नहीं है अथवा यह मामला उच्चतम न्यायालय में अपील के लिए उपयुक्त है। सिविल मामलों में न्यायालय की अपीलीय न्याय व्यवस्था को बढ़ाया जा सकता है यदि संसद इस संबंध में कानून पारित कर दे।

iii) आपराधिकः आपराधिक मामलों में, उच्चतम न्यायालय में अपली तब स्वीकार्य होती है यदि उच्च न्यायालय ने (i) अभियुक्त की दोषमुक्ति के आदेश को

उलट दिया और मृत्युदंड दे दिया, अथवा (ii) किसी अधीनस्थ न्यायालय से किसी मामले को जांच से पूर्व ही स्वतः अपने पास ले लिया और ऐसी जांच में उभियुक्त को दंडित करके मृत्यु दंड दे दिया अथवा (iii) प्रमाणित किया कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील के लिए उपयुक्त है । अपराधिक मामलों में उच्चतम न्यायालय की अपीलीय न्याय व्यवस्था को संसद द्वारा विस्तारित किया जा सकता है, बशर्ते कि ऐसी शर्तें एवं सीमाएं उसमें निर्दिष्ट की जाएं।

iv) अनु0 136 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय को, किसी निर्णय, डिक्री, आदेश अथवा किसी मामले में दंडादेश अथवा किसी न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण द्वारा पारित कोई मामला हो, सिवाय कोर्ट मार्शल मामले के। विशेष अनुमति देने की शक्ति प्राप्त है।

घ) सलाहकारी न्याय व्यवस्थाः भारत के उच्चतम न्यायालय की महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है इसकी सलाहकारी भूमिका (अनु0 143) राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय को कानून का समस्यात्मक विषय अथवा तथ्यात्मिक समस्या, समाधान हेतु भेज सकते हैं बशर्ते उसका विषय सार्वजनिक महत्व का हो। लेकिन, यह न्यायालय के लिए अनिवार्य नहीं है कि वे अपनी सलाह दे। आगे, राष्ट्रपति को अधिकार है कि वे संविधान के बनने से पूर्व निष्पादित अथवा तैयार हुए किसी संधि, करार आदि में उत्पन्न विवादों पर उच्चतम न्यायालय से सलाह मांगे। ऐसे मामलों में, भारतीय संविधान के अन्तर्गत, न्यायालय के लिए यह बाध्यकर है कि वे राष्ट्रपति के समक्ष अपने सुझाव प्रस्तुत करे।

5. संशोधनात्मक न्याय व्यवस्थाः अनु0 137 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपने किसी निर्णय अथवा आदेश में दृष्टिगत किसी त्रुटि अथवा अशुद्धि को हटा सके जिससे उस निर्णय अथवा आदेश में चटख (क्रैप्ट) उत्पन्न न हो। इसका तात्पर्य यह है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित किए गए सभी निर्णयों तथा आदेशों को भारत के सभी न्यायालयों के

लिए मामने की बाध्यता है परन्तु उच्चतम न्यायालय के लिए वे बाध्यकारी नहीं है।

13.3.21: उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाना: अनु0 124(4) के अन्तर्गत संविधान द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को उसकी अयोग्यता, कदाचार के प्रमाणित होने के बाद, संसद के प्रत्येक सदन द्वारा, कुल सदस्यता के बहुमत द्वारा और उस सदन में उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई सदस्यों से कम न हो उतने सदस्यों के वोट के समर्थन से, राष्ट्रपति द्वारा दोनों सदनों को संबोधित करने के बाद हटाया जा सकता है।

13.2.22 आगे, संसद, अनु0 124(5) के अन्तर्गत, कानून द्वारा, न्यायाधीश की अक्षमता अथवा दुर्व्यवाहर के साक्ष्य तथा जांच के लिए एवं संबोधन के प्रस्तुतिकरण के लिए, प्रक्रिया को नियंत्रित कर सकती है। तद्नुसार संसद ने 1968 में न्यायाधीश (जांच) अधिनियम पारित किया था।

13.3.23 इस अधिनियम के अन्तर्गत न्यायाधीश को हटाने के लिए वांछित प्रस्ताव को संसद के किसी भी सदन के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि इसे लोकसभा में प्रस्तुत किया जाना है, तो इस पर लोकसभा के 100 सदस्यों से कम सदस्यों के हस्ताक्षर नहीं होने चाहिए अर्थात् कम से कम 100 सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिए। यदि इसे राज्य सभा में प्रस्तुत किया जाना है तो प्रस्ताव पर कम से कम 50 सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिए।

न्यायायिक सुधार

आम जनता की आवश्यकताओं के प्रति न्यायपालिका को और अधिक संवेदनशील बनाने के लिए तथा न्याय प्रक्रिया में तेजी लाने के लिए, वह लोगों की पहुंच में हो तथा लागते भी कम लगे, इसके लिए निम्नलिखित कार्य अवश्य किए जाने चाहिए:

1. मामलों के द्रुत निपटान के लिए समूचे देश में कम्प्यूटरीकरण करना।

2. पदरिक्तियों को भरना। वर्तमानतः उच्चतम न्यायालय में लगभग 20 प्रतिशत पद रिक्त हैं। इलाहाबद उच्च न्यायालय में स्वीकृत पदों की संख्या 77 है परन्तु इतिहास में यह कमी भी संभव नहीं हो पाया कि सभी पद भरे हों।

3. विधिज्ञ वर्ग के सक्षम एवं योग्य सदस्यों को अधीनस्थ स्तर के न्यायायिक पदों के लिए ''आकर्षित'' करना।

4. स्वीकृति आदेशों तथा स्थगन आदेशों की जाली को अवश्य घटाना चाहिए।

5. बहुत सारी राज्य सरकारों द्वारा, निर्धारित न्यायालय शुल्क जो बहुत अधिक है, उसे अवश्य घटाना, क्योंकि इससे न्याय की लागत बढ़ती है।

6. विलम्ब से लागत बढ़ती है जितना अधिक विलम्ब उतने ही स्थगन तथा मुकद्दमे की लागत बढ़ना, इसलिए विलम्ब में कटौती अवश्य होनी चाहिए, दो से अधिक स्थगनों की अनुमति नहीं होनी चाहिए।

7. बकाया मामलों की समस्या को अनु0 141 को कड़ाई से लागू करके सुलझाया जा सकता है जिसके अनुसार उच्चतम न्यायालय के निर्णय, सभी न्यायालय मानने को बाध्य हैं।

8. स्थगनों के संबंध में नियम, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XVII में दिए गए अनुसार कड़ाई से अनुपालन में लाने चाहिए जिससे कि बार–बार स्थगन न किए जा सकें।

13.3.24 उस न्यायाधीश को 14 दिनों के पूर्व नोटिस देने के बाद ही प्रस्ताव लाया जा सकता है।

13.3.25 समुचित रूप से प्रस्तुत करने के बाद, उस सदन के पीठासीन अधिकारी तीन सदस्यीय न्यायायिक समिति नियुक्त करते हैं जो अभियुक्त न्यायाधीश के दुर्व्यवहार को अक्षम ठहराने की जांच करता है। न्यायायिक समिति का अध्यक्ष, उच्चतम न्यायालय के सेवारत् न्यायाधीश होंगे। अन्य दो सदस्यों में से एक उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के सेवारत सदस्य होने चाहिए और अन्य सदस्य प्रसिद्ध न्यायाविद् हो सकते हैं।

13.3.26 अभियुक्त न्यायाधीश को यह अधिकार है कि वह न्यायायिक समिति के समक्ष स्वयं अथवा अपने वकील के माध्यम से अपनी सफाई प्रस्तुत करे। समिति, सदन को उस पीठासीन अधिकारी को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करती है जिसमें प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था।

13.3.27 संसद न्यायायिक समिति की रिपोर्ट पर कार्रवाई करे अथवा ना करे। लेकिन, यदि न्यायायिक समिति दुर्व्यवहार अथवा अक्षमता के साक्ष्य को स्थापित करने में विफल रहती है तो संसद, प्रस्ताव नहीं उठा सकती।

13.3.28 यदि प्रस्ताव, प्रस्ताव प्रस्तुत करने वाले सदन द्वारा वांछित बहुमत से पारित हो जाता है तो इसे अन्य सदन में ले जाया जाएगा जिसे, उस प्रस्ताव को, उसी बहुमत से पारित करना चाहिए। इसके बाद, इसे संसद के उसी सत्र में राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है जिसमें अभिभाषण पारित किया गया है इसके बाद राष्ट्रपति अभियुक्त न्यायाधीश को पदेन/कार्यालय से हटाते हैं।

13.4. उच्च न्यायालय

13.4.1 उच्च न्यायालय, राज्य में न्यायापालिका का शीर्ष होता है। राज्यों में, न्यायपालिका में उच्च न्यायालय एवं अधीनस्थ न्यायालय होते हैं। लेकिन, संसद, कानून द्वारा दो अथवा अधिक राज्यों के लिए अथवा एक अथवा अधिक राज्यों के लिए और एक अथवा अधिक संघ शासित क्षेत्रों के लिए एक ही उच्च न्यायालय स्थापित कर सकती है।

13.4.2 न्यायाधीशों की नियुक्तिः प्रत्येक उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश होता है तथा समय–समय पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त ऐसे अन्य न्यायाधीश होते हैं। उच्चतम न्यायालय की भांति, यहां संविधान द्वारा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की अधिकतम संख्या का यहां कोई निर्धारण नहीं होता। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को नियुक्त करने के अलावा राष्ट्रपति को अधिकारी है कि वे (i) उच्च न्यायालय में बकाया कार्य को निपटाने के लिए, अस्थायी अवधि के लिए, जो कि दो वर्षों से अधिक न हो, अतिरिक्त न्यायाधीशों की

नियुक्ति कर सकते हैं, (ii) जब उच्च न्यायालय का स्थायी न्यायाधीश (मुख्य न्यायाधीश के अलावा) अस्थायी रूप से अनुपस्थित अथवा अपनी ड्यूटी पर उपस्थित होने में असमर्थ है अथवा उसे मुख्य न्यायाधीश के रूप में अस्थायी रूप से नियुक्त किया गया है तो अन्य कार्यवाहक न्यायाधीश की नियुक्ति कर सकते हैं। कार्यवाहक न्यायाधीश स्थायी न्यायाधीश के कार्यभार ग्रहण करने तक कार्य कर सकता है। परन्तु ना तो अतिरिक्त न्यायाधीश और न ही कार्यवाहक न्यायाधीश 62 वर्ष की आयु के बाद (अब 64 वर्ष) सेवारत रह सकते हैं।

13.4.3 उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति करते समय, राष्ट्रपति को, भारत के मुख्य न्यायाधीश राज्य के राज्यपाल तथा उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के साथ परामर्श करना होता है जब वे मुख्य न्यायाधीश के अलावा अन्य न्यायाधीश की नियुक्ति करते हैं।

13.4.4 <u>उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यताएं:</u>

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति के लिए संविधान के अन्तर्गत वांछित आवश्यक योग्यताएं

क) भारत का नागरिक अवश्य होना चाहिए, तथा

ख) कम से कम दस वर्षों के लिए भारत के राज्य में न्यायायिक कार्यालय में कार्य करने का अनुभव अथवा उच्च न्यायालय का वकील अवश्य होना चाहिए अथवा दो अथवा अधिक ऐसे न्यायालयों में कम से कम दस वर्षों के लिए लगातार कार्य किया हो।

13.4.5 <u>उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की स्वतंत्रता से कार्य करने हेतु प्रावधानः</u>

संविधान ने उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने हेतु निम्नलिखित उपाय सुरक्षित किए हैंः–

क) उच्च न्यायालय का न्यायाधीश केवल राष्ट्रपति द्वारा संसद के प्रत्येक सदन में उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई मतदान एवं सदन में बहुमत द्वारा उस

न्यायाधीश के दुर्व्यवहार अथवा अक्षमता साबित होने पर ही पद से हटाया जा सकता है।

ख) सेवा निवृत्ति के बाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश किसी न्यायालय में अथवा भारत में किसी प्राधिकरण में कार्य नहीं कर सकते, सिवाय उच्चतम न्यायालय तथा, जिस उच्च न्यायालय में वह कार्य करते थे, उसके अलावा अन्य उच्च न्यायालय में।

ग) उनके वेतन एवं भत्ते, नियुक्ति के बाद के बाद उनका अहित करते हुए परिवर्तित नहीं किए जा सकते, सिवाय वित्तीय आपतकाल के दौरान आगे, उनके वेतन एवं भत्ते भारत की समेकित निधि के खर्चे से होते हैं और संसद में मतों की शर्त पर नहीं होते।

घ) उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के आचरण पर संसद में चर्चा नहीं की जा सकती सिवाय न्यायाधीशों को हटाए जाने के संकल्प के।

13.4.6 <u>न्यायाधीश का एक उच्च न्यायालय से अन्य उच्च न्यायालय में स्थानांतरण:</u> उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का स्थानांतरण, उनकी मर्जी के बिना राष्ट्रपति द्वारा किया जा सकता है। (अनु0 222) परन्तु भारत के मुख्य न्यायाधीश के साथ विस्तृत चर्चा एवं प्रभावी ढंग से परामर्श अवश्य लिया जाना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के स्थानांतरण से संबंधित सभी तथ्य, भारत के मुख्य न्यायाधीश को अवश्य उपलब्ध कराए जाने चाहिए। मुख्य न्यायाधीश के मत को प्राथमिकता देनी होगी तथा राष्ट्रपति को उनका मत मानना बाध्यकारी है।

13.4.7 <u>उच्च न्यालयों प्रशासनिक कियाकलाप:</u> उच्च न्यायालय, अपने अधनीस्थ न्यायालयों के कार्यों का नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण करते हैं तथा उनके कारोबार के व्यवहारों के लिए नियम एवं विनियमों को बनाते है। अनु0 227 के अंतर्गत, प्रत्येक उच्च न्यायाल को उनके प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के भीतर कार्य करने वाली सशस्त्र बलों की सेनाओं को छोड कर, सभी न्यायालयों एवं न्यायाधिकरणों के अधीक्षण का अधिकार है। इस शक्ति का प्रयोग करते हुए

उच्च न्यायालय (i) अपने अधीनस्थ न्यायालयों से विवरणियां मंगा सकता है (ii) अपने अधीनस्थ न्यायालयों की प्रक्रिया एवं कार्यवाहियों का नियमन करने के लिए सामान्य नियम बनाना एवं जारी कर सकता है (iii) बहियों एवं खातों के लिए प्रपत्रों का निर्धारण कर सकता है जिसमें इन अधीनस्थ न्यायालयों के खाते रखे जाने होंगे तथा (iv) एक न्यायालय से अन्य दूसरे न्यायालय को मामलों का स्थानांतरण।

उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार

क) मूल क्षेत्राधिकारः अपनी न्यायायिक क्षमता में, प्रेसीडेंसी नगरों (कोलकाता, मद्रास एवं मुम्बई) के उच्च न्यायालयों में मूल एवं अपीलीय अधिकारिता दोनों ही हैं। जबकि अन्य उच्च न्यायालयों में, सिविल मामलों में अधिकारिता उनमें है जिसमें 2000–रू0 से अधिक राशि जुड़ी है तथा आपराधिक मामलों में जो मामले उन्हें प्रेसीडेंसी दंडनायक द्वारा सुर्पद किए गए हैं।

ख) अपीलीय क्षेत्राधिकारः अपील के न्यायालयों के रूप में, सभी उच्च न्यायालय, अपने स्वयं के द्वारा अपीलें लेने के साथ–साथ अपने अधीनस्थ न्यायालयों से सिविल एवं आपराधिक मामलों में, अपीलों पर कार्यवाही करते हैं। लेकिन, देश के सशस्त्र बलों से संबंधित कानूनों के अन्तर्गत स्थापित न्यायाधिकरणों पर उनकी कोई अधिकारिता नहीं है।

ग) रिट क्षेत्राधिकारः संविधान के अनु0 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालयों को न केवल मौलिक अधिकारों को लागू करवाने के लिए रिटों की जारी करनी की शक्तियां हैं अपितु अन्य उद्देश्यों के लिए भी रिट जारी करने की अधिकारिता है। इस शक्ति का प्रयोग करते हुए, न्यायालय एक ही प्रकार की रिटें, आदेश अथवा निर्देश जारी कर सकता है जिन्हें अनु0 32 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय को जारी करने की शक्तियां प्राप्त है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत रिटों को जारी करने की अधिकारिता, उच्च न्यायालयों के मामले में विशाल है, जबकि उच्चतम न्यायालय उन्हें केवल तभी जारी कर सकता है जहां मूलभूत अधिकारों का उल्लेघन किया गया हो, उच्च न्यायालय न केवल ऐसे मामलों

में, अपितु वहां भी रिट जारी कर सकता है जहां एक सामान्य कानूनी अधिकार का भी उल्लंघन किया गया है।

13.4.8 आगे, अनु0 235 के अन्तर्गत, उच्च न्यायालय जिला न्यायालयों अपने अधीनस्थ न्यायालयों में तैनाती पदोन्नति आदि मामलों में अपना नियंत्रण रखते हैं। संविधान के अनु0 229 के अनुसार प्रत्येक उच्च न्यायालय को अपने कर्मचारी वर्ग के सभी सदस्यों पर पूर्णतः नियंत्रण रखना सुनिश्चित किया गया है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को न्यायालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को नियुक्त करने का अधिकार है। उन्हें कर्मचारियों की सेवा शर्तों को नियंत्रित करने का अधिकर है तथा किसी को भी (कर्मचारियों में से) न्यायालय की सेवाओं से निकालने का अधिकार है।

13.4.9 उच्चतम न्यायालय की भांति, प्रत्येक उच्च न्यायालय रिकार्ड का न्यायालय होता है और उसके पास कोर्ट की सभी शक्तियां होती हैं।

लोक अदालतें

1987 के विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम के अन्तर्गत लोक अदालतों को संवैधानिक प्रतिष्ठा प्रदान की गई है। लोक अदालतों के उद्देश्य हैंः–

1. कमजोर वर्गों के लिए न्याय सुरक्षा
2. लागत एवं विलम्ब की कटौती के लिए मामलों का सामूहिक निपटान

लोक अदालतों को विधिक सेवाएं अधिकनयिम के अन्तर्गत राज्य अथवा जिला प्राधिकरणों द्वारा आयोजित कराया जाएगा। लोक अदालतें राज्य अथवा जिला निकायों के अन्तर्गत कार्य करेंगी अर्थात् लोक अदालतों के प्राधिकार उन पर, राज्य अथवा जिला निकायों द्वारा प्रदान किए जाएंगें।

लोक अदालतों की अधिकारिता, उनको राज्य अथवा जिला निकायों द्वारा प्रदान की जाएगी।

लोक अदालतों का क्षेत्राधिकार व्यापक है–सिविल, आपराधिक, राजस्व न्यायालय अथवा न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार में आने वाल कोई भी मामला।

कोई मामला लोक अदालत में तब जाता है जब दो पक्षकार समझौते के लिए संयुक्त आवेदन करते हैं। लोक अदालत द्वारा दिया गया निर्णय सभी पक्षकारों को मानना बाध्यकारी है। संक्षेप में, लोक अदालतों को सिविल न्यायालयों की अधिकारिता दी गई है। उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय समय–समय पर लोक अदालतें आयोजित करते हैं और हजारों मामलों का निपटान करते हैं। अक्टूबर 2, 1996 को लोक अदालतों के माध्यम से एक मिलियन मामलों का निपटान करने का राष्ट्र् व्यापी कार्यक्रम आरंभ किया गया था।

14. प्रशासनिक अधिकरण

14.1.1 संघ एवं राज्य सरकारों की सार्वजनिक सेवाओं में कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए सेवा शर्तों तथा स्थनांतरण, भती, पदोन्नति से संबंधित मामलों में निर्णय देने के लिए, केन्द्रीय एवं राज्य प्रशासनिक अधिकरण स्थापित करने के लिए 1976 में 42वें संविधान संशोधन द्वारा अनु0 323 ए बनाया गया।

14.1.2 प्रावधान के अनुसरण में, संसद ने, 1985 में प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम द्वारा निर्दिष्ट शहरों में शाखाओं सहित केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (कैट) स्थापित करने का अधिनियमित किया। कई राज्यों को भी राज्य प्रशासनिक अधिकरण उपलब्ध कराए गए।

14.13एक अधिसूचना जारी करके यह व्यवस्था दी गई कि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पी एस यूस) के कर्मचारियों से संबंधित सेवा मामलों को केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (कैट) अथवा राज्य प्रशासनिक अधिकरण (सैट) जैसा भी मामला हो, लाया जा सकता है।

14.1.4 अधिकरण के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समकक्ष माने जाते हैं और उनकी सेवा निवृत्ति आयु 65 वर्ष है। अन्य सदस्यों की सेवा निवृत्ति की आयु– प्रशासन से संबंधित 62 वर्ष है।

14.1.5 निम्नलिखिता श्रेणियों के कर्मचारी, प्रशासनिक अधिकरणों (ए टी एस) के विस्तार क्षेत्र में नहीं आते

क) उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के कर्मचारीगण।

ख) सशस्त्र बलों के कार्मिक, तथा

ग) लोकसभा एवं राज्यसभा के सचिवालय के कर्मचारी

14.1.6 इन अधिकरणों को स्थापित करने का उद्देश्य न्याय की न्याय प्रक्रिया में तीव्रगति लाना एवं न्यायालयों के काम के बोझ को कम करना है।

42वें संशोधन अधिनियम के अनुसार, सेवा मामलों से संबंधित कतिपय मामलों में केवल उच्चतम न्यायालय ही विचार कर सकता है।

14.1.7 राष्ट्रपति, कैट एवं सैट के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों की नियुक्ति, भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श के बाद करते हैं।

14.1.8 अध्यक्ष, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश अथवा जिन्होंने उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में अथवा अधिकरण के उपाध्यक्ष के रूप में कम से कम दो वर्ष तक कार्य अवश्य किया हो, उन्हें ही नियुक्त किया जाएगा।

15. पंचायती राज

15.1.1 जब से इतिहास लिख गया है, उसके आरंभ से ही पंचायतें, भारतीय ग्रामों की आधार कड़ी हैं। राष्ट्रपिता, गांधीजी ने 1946 में बिल्कुल सही कहा था कि भारत की स्वतंत्रता निचले स्तर से आरंभ होनी चाहिए तथा प्रत्येक ग्राम को गणतंत्र अथवा पंचायत होनी चाहिए जिसके पास कार्य करने की शक्तियां होनी चाहिए। ग्रामीण पुर्ननिर्माण में लोगों की भागीदारी प्राप्त करने के लिए तीन स्तरों पर पंचायती राज व्यवस्था का आरंभ करके, गांधीजी के स्वप्न को साकार किया गया था।

15.2 पृष्ठभूमि

1. 1909 के सत्र में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारत में पंचायतों के पुनरूत्थान करने के लिए संकल्प अपनाया था।
2. संविधान सभा ने अनु0 40 द्वारा निदेशक सिद्धांतों में पंचायती राज व्यवस्था के लिए प्रावधान किया।
3. 1952 में, सरकार ने एक उच्च स्तरीय समिति नियुक्त की जिसका कार्य ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज की उपयुक्तता पर विचार करना था। समिति अपनी रिपोर्ट 1954 में प्रस्तुत की थी।
4. 1956 में, बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक सरकारी समिति, पंचायती राज की सभी समस्याओं को जांचने तथा उसको आरंभ करने के लिए रचनातंत्र के लिए सुझाव देने हेतु गठित की गई थी।
5. 1958 में, भारत सरकार ने संस्तुति की कि जहां पंचायती राज संस्थान की मूलभूत बातें तथा व्यापक ढांचा एक समान हो, ढांचे के ब्यौरों में किसी प्रकार की कठोरता नहीं होनी चाहिए।
6. राजस्थान पहला राज्य था जिसने पंचायती राज व्यवस्था की शुरूवात की। परन्तु राज्य में इस पर कार्य करने में कोई उत्साह वर्धक परिणाम नहीं थे।
7. 1964 में, भारत सरकार ने, सादिक अली की अध्यक्षता में एक सरकारी समिति का गठन किया जिसका कार्य राजस्थान में पंचायती राज की कार्य पद्धति पर

रिपोर्ट तैयार करना था। समिति ने अपनी रिपोर्ट में विभिन्न कारणों से लोगों की सहभागिता की कमी को सूचित किया थाः–

1. लोगों को उत्साहित करने में नेतृत्व की विफलता
2. गांव में कार्यात्मक विभाजन का होना
3. शहरों एवं गांवों के बीच भेदभाव करने की सामान्यतः सोच
4. सरकार एवं लोगों की प्राथमिकताओं में अंतर होना
5. लोगों में गरीबी एवं अज्ञानता का होना
6. समुचित वित्तीय संसाधनों की कमी होना

15.2.2 राजीव गांधी सरकार ने, पंचायती राज के संबंध में, विस्तृत कानूनों को अधिनियमित करके राज्यों के विधानमंडलों के लिए मार्गदर्शी बातों के रूप में उपलब्ध कराने के लिए संविधान में प्रावधानों को बनाने के लिए कार्रवाई आरंभ की थी। यह प्रयास, 73वां संशोधन बिल, 1992 पारित होने के साथ फलीभूत हुआ था। इसी के साथ–साथ, संसद ने महानगर पालिकाओं के लिए भी 74वां संशोधन बिल पारित किया था तथा संविधान में भाग IX ए शामिल किया था।

15.3. 73वां संशोधन अधिनियम, 1992

15.3.1 संविधान अधिनियम 1992 (73वां संशोधन) का पारित होना देश के संघीय लोकतंत्र ढांचे में एक नए युग का आरंभ होना तथा पंचायती राज्य संस्थानों को संवैधानिक दर्जा उपलब्ध कराता है। इस अधिनियम के लागू होने के परिणाम स्वरूप, लगभग सभी राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों, सिवाय जम्मू एवं कश्मीर, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एन सी टी) दिल्ली तथा अरूणाचल प्रदेश ने अपने कानून बना लिए है। सिवाय असम, अरूचालय प्रदेश, बिहार राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली, पांडुचेरी तथा गोवा (जिला परिषद्), सभी अन्य राज्यों/संघ शासित प्रदेशों ने पंचायती राज निकायों के चुनाव करा लिए हैं। इसके परिणाम स्वरूप, देश में ग्राम स्तर पर लगभग, 2,27,698 पंचायतें मध्यवर्ती स्तर पर 5,906 पंचायतें तथा जिला स्तर पर 474 पंचायतें गठित की

गई हैं। इन पंचायतों में सभी स्तरों पर पंचायतों के लगभग 34 लाख चुन गए प्रतिनिध हैं। वस्तुतः समूचे विश्व में विकसित अथवा अविकसित, किसी भी देश में यह सबसे बड़ा विस्तृत प्रतिनिधि आधार है।

15.3.2 अधिनियम की मुख्य विशेषताएं हैं:

क) 20 लाख से ऊपर की जनसंख्या वाले सभी राज्यों के लिए पंचायती राज की 3 स्तरीय पद्धति,

ख) प्रत्येक 5 वर्षों पर नियमित रुप से पंचायत चुनाव,

ग) अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन जातियों तथा महिलाओं के लिए (33%) सीटों का आरक्षण,

घ) पंचायतों की वित्तीय शक्तियों के संबंध में सिफारिशों के लिए राज्य वित्त आयोज नियुक्त करना, तथा

ड) समग्र जिले के लिए विकास योजना के प्रारूप को तैयार करने के लिए जिला योजना समिति गठित करना।

15.3.3 संविधान के अनुसार, पंचायती राज संस्थानों को स्व शासन के संस्थानों के अनुसार जितनी शक्तियां एवं प्राधिकार आवश्यक हो सकते हैं वे सब दिए गए हैं इस अधिनियम में समुचित स्तर पर पंचायतों पर शक्तियों एवं दायित्वों की सुर्पुदगी के प्रावधान निम्न संदर्भों के अनुसार दिए गए हैं:–

i) आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय के लिए योजनाओं को तैयार करना,

ii) आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय के लिए ऐसी योजनाओं का कियान्वयन कराना जो उन्हें सौंपी गई हों।

15.4 <u>तीन स्तरीय पंचायती राज</u>

(i) ग्राम सभा एवं ग्राम पंचायत– यह ग्राम स्तर पर होती है। इसमें ग्राम सभा, स्थानीय नागरिकों की आम सभा होती है जबकि ग्राम पंचायत कार्य पालिका समिति होती है। ग्राम सभा को वर्ष में कम से कम दो बार बैठक

करनी होती है और ग्राम पंचायत कार्यालय के प्रहरी के रूप में कार्य करना होता है जो कि ग्राम पंचायत का कार्यकारी हथियार है।

15.4.1 ग्राम पंचायत के सदस्य ''पंच'' कहलाते हैं तथा इसके अध्यक्ष ''सरपंच'' कहलाते हैं। इसके मुख्य कार्य हैंः–

क प्रशासनिकः बजट एवं खातों का रख–रखाव, जन्म, मृत्यु एवं विवाहों का पंजीकरण

ख. कानून एवं व्यवस्थाः प्रहरी सेवा एवं ग्राम स्वयं सेवक बल का शासन संभालना

ग. वाणिज्यिकः पंचायत उद्यमों, समुदाय बागानों एवं मछली पालन की निगरानी करना

घ. नागरिकः ग्रामों की साफ–सफाई तथा रख–रखाव, गंदे जल की निकासी एवं साफ सफाई, कुओं, टैंकां की सफाई, प्रकाश व्यवस्था

ड. कल्याण कार्यः विद्यालयों, पुस्तकालयों, ग्राम्य मेलों का प्रबंधन, सूखा, बाढ़ राहत कार्य में सहयोग

च. विकास कार्य कृषि एवं सिंचाई योजनाओं को तैयार करना एवं निष्पादित करना, लघु उद्योगों को बढ़ावा देना।

15.4.2 आय के स्रोत हैंः

क. संपत्ति, व्यावसायों आदि पर स्थानीय कराधान से

ख. राज्य सरकार से सहायता अनुदान राशि

ग. सार्वजनिक अंशदानों एवं स्वैच्छिक दानों से

15.4.3 न्याय पंचायतः कतिपय राज्यों में, ग्रामों में, ग्रामिणों को शीघ्रता से एवं सस्ता एवं सुलभ न्याय दिलाने के लिए न्याय पंचायतों का गठन किया गया है, यह न्यायायिक पंचायतें होती हैं। इनके पास आपराधिक मामलों अथवा कारागार में डालने की शक्तियां नहीं होतीं परन्तु यह अर्थदंड लगा सकती है।

2. पंचायत समिति

यह निकाय खंड स्तर पर होता है। यह पंचायती राज व्यवस्था का ''किंगपिन'' है और यह ग्राम एवं जिले के बीच महत्वपूर्ण कड़ी है। इसका अध्यक्ष 'प्रधान' अथवा 'प्रमुख कहलाता है। यह तीन स्तरों पर कार्य करती है।

क) प्रत्यायोजितः राज्य सरकार के नीति निदेशकों को समन्वित करना एवं क्रियान्वित करना।

ख) विकासात्मकः समाज कल्याण कार्यक्रम की योजना बनाना एवं क्रियान्वित करना।

ग) पर्यवेक्षणः ग्राम पंचायत, खंड विकास अधिकारी (बी डी ओ) विकास अधिकरी एवं अन्यों के कार्यों का पर्यवेक्षण करना।

आय का स्रोतः

इसके राजस्व के स्रोत राज्य सरकार से सहायता अनुदान राशि तथा भू–राजस्व के हिस्से से प्रोद्भूत करों का राजस्व है।

3. जिला परिषद

जिला परिषद् अथवा डिस्ट्रिक्ट काउंसिल, जिला स्तर पर होती है। इसके मुख्य कार्य हैंः

क) परामर्शकः सरकार को विकासात्मक विषयों पर परामर्श देना एवं उसके कार्यक्रमों को कार्यान्वित करना।

ख) वित्तीयः पंचायत समितियों के बजटों की जांच करना एवं अनुमोदन करना तथा उनके बीच, जिले को आवंटित निधियों का संवितरण करना।

ग) पर्यवेक्षणः जिले में खंडों (ब्लॉक्स) द्वारा तैयार किए गए विकासात्मक कार्यों को समन्वित करना एवं पंचायत समितियों तथा ग्राम पंचायतों के क्रियाकलापों का पर्यवेक्षण करना।

घ) विकासात्मक कार्यः खंडों में विकासात्मक योजनाओं एवं परियोजनाओं का परिरक्षण एवं निष्पादन एवं जिला स्तर पर उनकी देखभाल करना।

ड) नागरिक सुविधाएंः सार्वजनिक सड़कों, पार्कों, जन आपूर्ति भवनों आदि का निर्माण एवं रख–रखाव।

च) क्ल्याणकारी कार्यः बाजारों की स्थापना करना, मेलों पर्वों को आयोजित करना, पुस्तकालयों, अस्पताओं आदि को चलाना जिला परिषद में पांच स्थायी समितियों होती हैंः विकास, शिक्षा, समाज कल्याण, निर्माण कार्य एवं वित्त।

आय के स्रोत

जिला परिषद् की आय के स्रोत हैंः

क) राज्य सरकार से सहायता अनुदान

ख) विकासात्मक क्रियाकलापों के लिए आबंटित निधियॉ, तथा

ग) भू राजस्व एवं अन्य करों में हिस्सेदारी

15.4.4 आज देश के सभी राज्यों में किसी न किसी रूप में पंचायती राज है सिवाय मेघालय, मिजोरम एवं नागालैंड जहां पर उनके स्थान पर जनजाति परिषद्ें हैं। लेकिन कुछ राज्यों ने अभी तक 73वें संविधान संशोधन की मार्गदर्शी बातों के अनुरूप कानून पारित नहीं किए हैं।

15.5 तीन स्तरीय नगरपालिका व्यवस्था

15.5.1 उक्त कथित पंचायती राज व्यवस्था के अनुरूप ही शहरी केन्द्रों के 3 स्तरीय नगरपालिका निकायों को नगरपालिका अधिनियम, 1992 द्वारा उपलब्ध कराया गया। एक अनुमान के अनुसार 2020 तक कुल सनसंख्यसा का 50 प्रतिशत भाग शहरी जनसंख्या का होगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए नगर पालिकाओं की तीन श्रेणियां गठित की गई हैं।

1) 10,000 से 20,000 तक की जनसंख्या वाले शहरी केन्द्र के लिए नगर पंचायत।

2) नगर परिषद् 20,000 से 3 लाख की जनसंख्या वाले शहरी केन्द्र के लिए।

3) 3 लाख से ऊपर की जनसंख्या वाले शहरी केन्द्रों के लिए नगर निगम।

15.5.2 ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थानों के अनुसार ही अनुसूचित जातियो, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्ग की जातियों के साथ–साथ महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण उपलब्ध कराया गया है।

15.5.3 नगरपालिकाओं को विकास एवं योजना बनाने के साधन के रूप में कार्य करना है तथा स्थानीय क्रियाकलापों के लिए निधियों का संचालन भी करना है।

16. निर्वाचकीय पद्धति

16.1.1 भारत में निर्वाचकीय पद्धति, ग्रेट ब्रिटेन में परिचालन पद्धति में से उधार ली गई है।

अथवा

भारत में निवाचक पद्धति ग्रेट ब्रिटेन से प्रभावित है। लेकिन, भारत में सब कुछ विधानमंडल पर नहीं छोड़ा गया और इस संबंध में संविधान स्वयं विस्तृत प्रावधान बनाता है। संविधान ने संसद को निर्वाचन से संबंधित सभी मामलों के संबंध में कानून बनाने की शक्तियां भी प्रदान की हैं। इस प्रावधान के अनुसरण में संसद ने निम्नलिखित अधिनियम पारित किए हैं

1. पीपल्स एक्ट (जन प्रतिनिधि अधिनियम) 1950 का निरूपण जो 1988 तथा 1996 में संशोधित हुआ, जिसमें आम चुनावों के लिए प्रशासनिक मशीनरी मतदान, उपचुनाव आदि विषयों पर विस्तार से चर्चा की गई है।
2. पीपल्स एक्ट, 1951 का निरूपण जिसमें, मतदाताओं की योग्यता, निर्वाचकीय मतदाता सूचियां तैयार करने तथा अन्य संबंधित मामलों के बारे में बताया गया है।
3. परिसीमन अधिनियम, 1950 जिसमें निर्वाचन क्षेत्रों के लिए परिसीमन एवं आरक्षण के बारे में निर्देश हैं तथा राष्ट्रपतिय एवं उपराष्ट्रपतिय निर्वाचन अधिनियम, 1952 अधिनियमों के इन ढांचों के भीतर, निर्वाचकीय पद्धति को निम्नानुसार वर्णित किया जा सकता है।

16.1.2 निर्वाचकीय पद्धति, वयस्क मतदान पर आधारित है जिसके द्वारा भारत का प्रत्येक नागरिक, जो 18 वर्ष तथा उससे अधिक आयु का है तथा संविधान अथवा समुचित विधान मंडल द्वारा कतिपय आधारों पर तैयार नियमों के अन्तर्गत अन्यथा अयोग्य नहीं है, उसे मतदाता के रूप में पंजीकृत होने का अधिकार है। अनु0 326 के अनुसार अनिवासी, दिमागी तौर पर कमजोर,

अपराध अथवा भ्रष्टाचार का कोई उसके विरूद्ध रिकार्ड हो तो वह मतदान करने का अधिकारी नहीं है।

16.1.3 यह भौगोलिक निरूपण पर आधारित है। अनुच्छेद 325, प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र के लिए समग्रतः एक आम निर्वाचकीय मतदान की सिफारिश तथा धर्म, नस्ल जाति अथवा लिंग के आधार पर, अलग से निर्वाचन की प्रतिबंधता की घोषणा करता है। इससे ब्रिटिश राज के दौरान अलग से अथवा सांप्रदायिक निर्वाचनों के प्रचलन पर रोक लग गई।

16.1.4 केवल एक सदस्य प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र हैं और कोई कार्यात्मक अथवा बहु निर्वाचन क्षेत्र नहीं है। पहले 1961 तक कुछ दोहरे सदस्य निर्वाचन क्षेत्र होते थे परन्तु उसी वर्ष एक अधिनियम पारित करके इस परंपरा को बंद कर दिया गया।

16.1.5 प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र से आम बहुमत मतदान द्वारा एक प्रतिनिधि चुना जाता है। जो प्रत्याशी उम्मीदवार सबसे अधिक मत पाता है उसे चुना गया घोषित किया जाता है। उम्मीदवार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसे पूर्ण बहुमत प्राप्त हो।

16.2 एक सदस्य निर्वाचन व्यवस्था

16.2.1 इस व्यवस्था के अन्तर्गत चुनाव के परिणाम मतदान किए गए मतों के बहुमत के आधार पर निर्धारित किए जाते हैं और जो उम्मीदवार अन्य उम्मीदवारों की तुलना में अग्रणी होगा, चाहे एक ही मत से आगे हो, चाहे मतदाताओं की बहु संख्या में उसके पक्ष में मत न मिले हों तो भी वह चुना गया माना जाएगा। इस व्यवस्था को ''फर्स्ट पास्ट द पोस्ट'' व्यवस्था भी कहा जाता है। भारत में इस व्यवस्था का अनुपालन किया जाता है।

16.3 लाभ

1. लोकतांत्रिक व्यवस्था में निर्वाचन का यह सबसे सरल तरीका है।
2. इस व्यवस्था से बहुमत प्राप्त सरकार बनाने में बहुत सहायता मिलती है।

3. इस व्यवस्था से धर्म, नस्ल, जाति के समुपयोजन पर राजनैतिक दलों की संकीर्णता वाली प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने में सहायता मिलती है।

16.4 त्रुटियां

क) सबसे मुख्य त्रुटि जो इस व्यवस्था में पाई जाती है वह है कि केवल संबंधित बहुमत को ही विचारार्थ लिया जाता है। चूंकि, अधिकतम संघर्ष बहुकोणीय होते हैं, कई बार, एक निर्वाचन क्षेत्र में 30 से 40 प्रतिशत मतों के मतदान होने पर भी प्रत्याशी जीता हुआ घोषित होता है। इसके परिणाम स्वरूप, अधिकांश निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधि तो होता ही नहीं है।

ख) इस व्यवस्था के विरूद्ध एक अन्य गंभीर दोष यह पाया जाता है कि जिस दल को वोटों की अल्पमतता प्राप्त होती है वह बहुसंख्या में साटें जीत लेता है। इस प्रक्रिया में अल्पमत वाले दल निकल जाते हैं क्योंकि उनकी राजनैतिक क्षमता छिन्न–भिन्न हो जाती है। इससे अल्पसंख्यक वाले दलों का प्रतिनिधित्व कम हो जाता तथा बहुसंख्यकों का बहुमत होने से, प्रतिनिधित्व का आधिक्य हो जाता है।

ग) इस व्यवस्था के विरूद्ध एक और भी बात है कि इसमें अल्पसंख्यक मतों का प्रतिनिधित्व नहीं हों पाता। परन्तु संविधान ने इस व्यवस्था को चुना क्योंकि भारतीय परिवेश में यह सबसे अधिक उपयुक्त है।

16.5 आनुपातिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था

16.5.1 आनुपातिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था के अन्तर्गत चुने जाने के लिए किसी उम्मीदवार को कुल डाले गए मतों का 50 प्रतिशत से अधिक भाग मिलना चाहिए। इस व्यवस्था के अन्तर्गत, विधानमंडल की सीटों की संख्या के अधिकतम निकट तक, जीतने वाले दल के पक्ष में, डाले गए मतों की, यथासंभव आनुपातिक सीटें होनी चाहिए। आनुपातिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था उन

अल्पसंख्यक दलों द्वारा अत्यधिक समर्थित की जाती हैं जो एक सदस्य निर्वाचन क्षेत्र व्यवस्था की निर्वाचक विकृति से पीड़ित होते हैं। लेकिन, तो भी इस व्यवस्था में कमियां बहुत हैं, आनुपातिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था में राजनैतिक दलों की बहुतायतता एवं मिलीजुली सरकार की उत्पत्ति होती है।

16.5.2 लेकिन, यहां यह स्पष्ट किया जाता है कि आनुपातिक प्रतिनिधि व्यवस्था बहुत ही जटिल एवं बोझिल है। यह जाति, समुदाय, धर्म एवं इसी प्रकार के विषयों पर आधारित संकीर्ण निष्ठाओं को बढ़ाती है, पैना करती हैं तथा समेकित करती है। यह राजनैतिक दलों के अपखंडन को भी बढ़ाती है। यह बड़े देशों के लिए विशेष रूप से अयोग्य है।

16.5.3 आनुपातिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था का जो देश अनुसरण करते हैं उनमें फ्रांस, ग्रीस, इज़रायल, स्पेन, स्विटजरलैंड एवं आस्ट्रिया शामिल हैं। आनुपातिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था कई प्रकार की हैं। यह हैः

16.6.1 एकल हस्तांतरणीय मत अथवा अधिमान्यता क्रम (आर्डर ऑफ च्वायस) एकल हस्तांतरणीय मत अथवा सिंगल ट्रांसफरेबल वोट (एस टी वी), निर्वाचन के लिए, भारत में, राज्यसभा, राज्य विधान सभा परिषद्ों एवं राष्ट्रपति तथा उप राष्ट्रपति के कार्यालयों के लिए प्रयुक्त होता है। यह आस्ट्रलेलिया में, फैडरल स्तर पर, प्रतिनिधि सदन (हाउस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव) के चयन के लिए प्रयुक्त होता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत, प्रत्येक निर्वाचक को अपनी पसंद के, जितने उम्मीदवारों को अधिमानता देनी हो उतनों पर चिन्ह्, एकल मतपत्र पर, वे लगा सकते हैं। इस प्रक्रिया में प्रत्याशियों के आधिक्य वाले मतों का वितरण प्रथम अधिमानता मतों के न्यूनतम संख्या में मत पाने वाल को, तथा उनके दूसरे अथवा परवर्ती अधिमानता वाले क्रम वाले मतों को इन मतों के साथ मैदान में बाकी बचे उम्मीदवारों के पक्ष में जमा किया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक वांछित संख्या में उम्मीदवारों का चयन न हो जाए।

16.7.1 सूची व्यवस्था

जर्मन मॉडल को सूची व्यवस्था के नाम से जाना जाता है। यह निचले सदन–बंडर स्टैग के निर्वाचन के लिए प्रयुक्त होता है, यह एकल सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों से कुल सीटों के 50 प्रतिशत प्रत्यक्ष चयन तथा आधे के लिए सूचियों पर आधारित आनुपातिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था का सम्मिश्रण है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत, प्रत्येक मतदाता के दो मत होते हैं, एक निर्वाचन क्षेत्र के प्रतिनिधि चुनने के लिए तथा अन्य पार्टी सूचियों के बीच से चुनने के लिए। एकल सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष चयन में, जो उम्मीदवार मतदान (बहुसंख्या में) करते है, वे विजयी होते हैं। दलों के बीच सीटों का वितरण, समूचे निर्वाचक क्षेत्र में उनके द्वारा दूसरे मतों के मतदान की कुल संख्या को आनुपातिक रूप में बांटा जाता है, लेकिन यह, दल की सूची से किसी सीट की पात्रता होने की शर्त पर होता है, दल को दल की सूची के मतों का कम से कम पांच प्रतिशत प्राप्त करने की आवश्यकता है अथवा संविधान के स्तर पर कम से कम तीन सीटें जीतनी चाहिएं।

16.8 हानियां

16.8.1 लोगों का चुने जाने वाले संसद सदस्यों (एमपी) के साथ कोई संपर्क नहीं होता। संसद सदस्य राजनैतिक दलों के साथ जुड़े होते हैं।

16.8.2 लोगों के हितों का समुचित रूप से ध्यान नहीं रखा जाता क्योंकि राजनैतिक दल केवल समष्टि नीति (मैक्रे पॉलिसी) पर चर्चा करते हैं।

16.9.1 दो मतदान व्यवस्था

फ्रांस एवं रूप से राष्ट्रपति पद के लिए दो मतदान व्यवस्था का अनुपालन किया जाता है जिससे की 50 प्रतिशत से अधिक मतों को जीतने वाला प्रत्याशी चुना जा सके। मतदान का दूसरा दौर तब होता है जब कोई भी उम्मीदवार पहले दौर में 50 प्रतिशत से अधिक मतों से न जीत पाए। दूसरे दौर में, यदि आवश्यक हो तो केवल शीर्षस्थ वाले दो उम्मीदवारों को ही

चुनाव लड़ने की अनुमति होती है। इस व्यवस्था से राजनैतिक दलों में संकीर्ण प्रवृत्तियों को नियंत्रित रखने में सहायता मिलती है।

16.10.1 चुनाव आयोग

चुनाव आयोग में एक मुख्य चुनाव आयुक्त (सी ई सी) तथा दो चुनाव आयुक्त होते हैं। चूंकि चुनाव आयोग का कार्यालय बहुत महत्वपूर्ण होता है, संविधान में इसे पर्याप्त सुरक्षा एवं बचावकारी उपाय उपलब्ध कराए गए हैं। 1993 के अध्यादेश द्वारा चुनाव आयोगों के सदस्यों की शक्तियां, मुख्य चुनाव आयुक्त की शक्तियों के बराबर कर दी गई हैं। लेकिन आयोग, मुख्य चुनाव आयुक्त के समग्रतः पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण के अन्तर्गत कार्य करता है। बाद में संसद ने इस आशय का एक कानून भी पारित किया था और इन प्रावधानों को संविधान के अनुच्छेद 324 का हिस्सा बनाया है।

मुख्य चुनाव आयुक्त के कार्यालय के संवैधानिक संरक्षण

मुख्य चुनाव आयुक्त का कार्यकाल छः वर्षों का अथवा 65 वर्ष की आयु, जो भी पहले हो, है।

1. वह उच्चतम न्यायाल के न्यायाधीशों की भांति कार्यालय से मुक्त किए जाते हैं।
2. उन्हें इस पद पर पुनः नियुक्त नहीं किया जा सकता
3. अपनी सेवा निवृत्ति के पश्चात् वह किसी कार्यालय में कार्य नहीं कर सकते।
4. उनके वेतन एवं भत्ते भारत की समेकित निधि से दिए जाते हैं।

16.11.1 चुनाव आयोग की शक्तियां एवं कार्य

चुनाव आयोग की शक्तियां एवं कार्य बहुत ही व्यापक हैं। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण बाते निम्नानुसार हैंः

1. संसद, राज्य विधान सभाओं, स्थानीय निकायों (पंचायतों एवं नगरपालिकाओं) के लिए चुनाव हेतु मतदाताओं की सूची तैयार करना, संशोधित करना एवं

उनका रख–रखाव करना एवं राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के चुनावों का समस्त कार्य

2. चुनाव कराना, पर्यवेक्षण एवं उप–चुनाव कराना
3. निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन एवं उनमें से प्रत्येक को सीटों की संख्या आबंटित करना।
4. चुनाव कार्यक्रम की तिथियां निर्धारित करना मतदान–बूथों आदि की संख्या निश्चित करना एवं परिणाम घोषित करना।
5. राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल को, सदस्यों की अयोग्यता से संबंधित प्रश्नों सहित, सभी निर्वाचक मामलों में परामर्श देना।
6. राजनैतिक दलों के उम्मीदवारों तथा मतदाताओं के लिए आचरण संहिता के लिए मार्गदर्शी बातें तैयार करना।
7. चुनाव खर्चों की सीमा निर्धारित करना एवं निर्वाचक खर्चों के खातों की जांच करना
8. राजनैतिक दलों की मान्यता के लिए मानदंड निर्धारित करना एवं उनके चुनाव चिन्हों का निर्धारण करना।
9. निर्दलीय उम्मीदवारों के आबंटन के लिए ''मूल प्रतीकों की सूची'' तैयार करना।
10. राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल द्वारा प्रेषित चुनाव विवादों एवं याचिकाओं को निपटाना।

16.12 चुनावों के लिए राज्य से निधियां देना

16.12.1 यह मांग रही है कि राज्यों से निधियां देना आरंभ किया जाए जिससे कि

1. चुनावों में धन शक्ति की कटौती की जा सके।
2. नेतृत्व गुणों के आधार पर, सच्चे उम्मीदवार को, चुनाव लड़ने के अवसर प्राप्त हो, निर्धन उम्मीदवारों को भी दिए जा सकते है।
3. राजनैतिक, अपराधी–व्यापारी अंर्तबंधन में प्रबल कटौती की जा सकती है।

16.12.2 वस्तुतः चुनावों में, राज्य से निधियों की प्राप्ति होने से, मुक्त एवं निष्पक्ष चुनावों की मांग को कुछ सीमा तक पूरा करने के लिए आरंभ किया जा सकता है। लगभग सभी उन्नतिशील लोकतंत्रों में, जैसे कि जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य देशों में राज्य से कुछ निधियों की प्राप्ति होना प्रचलन में हैं।

16.12.3 राज्य से, निधियां प्राप्त करने के संबंध में गोस्वामी समिति रिर्पोट में कुछ सुझाव पाए गए थे, जिनके आधार पर 1990 में संसद में बिल प्रस्तुत किया गया था। लेकिन, बिल, गिर गया था क्योंकि केन्द्र में शासन करने वाले दल की सरकार परिवर्तित हो गई थी। समिति के महत्वपूर्ण सुझाव इस प्रकार हैं:–

1. चुनावी मदों की उन प्रमुख मदों को चिन्हित करना चाहिए जिसके लिए केवल सरकारी पैसा दिया जाए तथा गैर सरकारी निधियां, चुनावी खर्चों में अनुमत न की जाएं।
2. राज्य निधियां केवल वस्तु रूप में होनी चाहिए नगदी में नहीं।

16.12.4 केवल मान्यता प्राप्त दलों को –राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय को निधियां अवश्य दी जाएं तथा जिन उम्मीदवारों को निधियां मिलने की पात्रता प्राप्त नहीं है, यदि उनका चयन हो जाए तो उन्हें निधियों की प्रतिपूर्ति की जा सकती है।

16.13 चुनावों में राज्य निधियों को देने पर इन्द्रजीत गुप्ता समिति की सिफारिशें

16.13.1 मई, 1998 में सर्वदलीय सम्मेलन द्वारा एक आठ सदस्यीय समिति गठित की गई थी जिसने अपनी रिर्पोट निम्नलिखित सिफारिशों सहित जनवरी 1999 में प्रस्तुत की थीः

1. राज्य निधियां 'वस्तु' रूप में होनी चाहिए, दलों को कोई वित्तीय सहयोग नहीं दिया जाना चाहिए तथा दलों के वित्तीय बोझ का हिस्सा आरंभिक तौर पर राज्य द्वारा वहन किया जाना चाहिए।

2. केन्द्र से रू0 600 करोड़ का अंशदान तथा इतनी राशि राज्यों से, वार्षिक रूप से 'समग्र चुनाव निधि' उद्देश्य के लिए रखा जाना चाहिए।

3. केवल निर्वाचन आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त दलों को मुद्रित सामग्री तथा सुविधाओं के रूप में, इलैक्ट्रॉनिक संचार माध्यम का समयः वाहन एवं ईंधन आदि के रूप में राज्य सहयोग दिया जाना चाहिए।

4. राजनैतिक दलों को अपने वार्षिक खातों को प्राप्तियां एवं व्यय दर्शाते हुए, आयकर विभाग को अनिवार्यतः प्रस्तुत किए जाने चाहिए अन्यथा उम्मीदरवार को राज्य का सहयोग निधि रूप में छोड़ना होगा।

5. राजनैतिक दलों द्वारा चुनाव आयोग के समक्ष चुनाव व्यय के पूरे खाते को प्रस्तुत करना चाहिए।

6. रू0 10,000 से अधिक के सभी चंदे, दलों द्वारा चैक/ड्राफ्ट के रूप में लेने चाहिए तथा चंदा देने वालों के नाम खातों में दर्शाए जाने चाहिएं।

7. राजनैतिक उद्देश्यों के लिए सरकारी कंपनियों द्वारा चंदा देने पर प्रतिबंध जारी रहेगा, परन्तु अन्य कंपनियां चंदा दे सकती हैं अथवा नहीं यह संसद द्वारा निर्धारित किया जाना है।

समिति के अनुसार राज्य द्वारा निधियां देना संवैधानिक रूप से एवं वैधानिक रूप से न्यायसंगत एवं जनहित में है।

16.14 <u>निर्वाचक सुधारों पर विधि आयोग की सिफारिशें</u>

16.14.1 भारत में दीर्घ काल से कानून बनाने वालों के साथ–साथ विद्वानों के लिए भी निर्वाचक व्यवस्था के स्थिर एवं उचित प्रतिनिधि प्राप्त हो सके,यह चिंता का विषय रहा है क्योंकि चुनावों की लागतें बढ़ रही हैं और बार–बार चुनाव कराने से लोग उदासीन हो सकते हैं और नीतियां बनाना कठिन हो सकता है। उदाहरण के लिए, 1967 से, लोकसभा चुनाव कराने की लागत 8000ः तक बढ़कर 1999 में 1200 करोड़ रू0 हो गई है। 1996 से 1999 तक देश में 3 लोकसभा चुनाव हुए और देश ने एक के बाद एक प्रधानमंत्रियों को आते–जाते देखा। देश राजनैतिक अस्थिरता को झेलने में असमर्थ है। इसलिए,

विधि आयोग ने अपनी 170वीं रिपोर्ट में राजनैतिक व्यवस्था को स्थिर करने के लिए कुछ ढांचागत सुधारों का प्रस्ताव पेश किया है।

16.14.2 सर्वप्रथम, किसी भी दल को, जिसके पास 5 प्रतिशत से कम लोकप्रियता मत हो, लोकसभा में उसके प्रतिनिधि नहीं होने चाहिएं। इससे छोटे दलों का सफाया होगा और उन्हें बड़े दलों के साथ आवश्यक तौर पर मिलने के लिए मजबूर होना पड़ेगा, जिससे 'दो मोर्चा' दल व्यवस्था के लिए मार्ग प्रशस्त होगा जो कि अपेक्षाकृत स्थिर होगा। वर्तमानतः 5 प्रतिशत के मानदंड को केवल कांग्रेस (आई) बीजेपी तथा सीपीआई(एम) लोकसभा में पूरा कर पाएगी जबकि अन्य दल अयोग्य घोषित हो जाऐंगे। इसका तात्पर्य है 44 प्रतिशत के राष्ट्रीय मत (इन बड़े तीन दलों के अलावा अन्य दलों का सहयोग) 12वीं लोकसभा में अयोग्य घोषित हो जाऐंगे। परन्तु यदि एक बार सुधार को अपनाया जाता है, तो समायोजन, निर्वाचक और सैद्धांतिक–समायोजन से वास्तविक स्थिरता बनेगी। यह नियम जर्मनी में लागू है तथा इससे राजनैतिक दलों के प्रचुरोद्भव में बचाव हुआ है।

16.14.3 आयोग ने सुझाव दिया था कि यदि कोई उम्मीदवार किसी निर्वाचन क्षेत्र से चुना जाता है परन्तु उसका दल, वैध लोकप्रिय मतों की अनिवार्यता को पूरा नहीं कर पाता तो उससे द्वितीय स्थान को प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को अधिमानता दी जाए बशर्ते कि उसका दल 5 प्रतिशत लोकप्रिय मत की शर्त को पूरा करता हो।

16.14.4 द्वितीयतः, आयोग ने सूचीबद्ध व्यवस्था को आंशिक रूप से अपनाने की सिफारिश, मतदान किए गए मतों एवं प्राप्त की गई सीटों के बीच होने वाली विषमता को कम करने के लिए की थी। आयोग के अनुसार इसमें, लोकसभा एवं राज्य विधान परिषदों की क्षमता में 25 प्रतिशत वृद्धि होनी चाहिए, जिससे सूचीबद्ध व्यवस्था द्वारा समूची वुद्धि हुई संख्याएं दर्ज की जा रही है, ऐसा हो सके। वर्तमानतः 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट' व्यवस्था प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों पर आधारित है, जो उम्मीदवार अपेक्षाकृत बहुमत पाता है उसे

चुना गया घोषित किया जाता है। चाहे उसे वैध वोट का छोटा सा प्रतिशत ही प्राप्त हो। वस्तुतः प्रायः उम्मीदवार, निर्वाचन क्षेत्र का वास्तविक तौर पर प्रतिनिधित्व नहीं करता। जाति एवं अन्य विचार संतुलन गड़बड़ देते हैं। सूचीबद्ध व्यवस्था में प्रत्येक दल को उम्मीदवारों को नामित करने की संख्या बताई जाएगी कि वह कितने उम्मीदवार खड़े कर सकते हैं। यह संख्या सूचीबद्ध व्यवस्था के लिए उपलब्ध कुल सीटों के आधार पर निर्भर करेगी। इन उम्मीदवारों को निर्धारित मानकों का अवश्य पालन करना होगा और 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट' माध्यम से भाग नहीं लेना चाहिए। सूची को 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट' व्यवस्था के लिए चुनावों के समय प्रस्तुत किया जाना है। एक बार परिणाम घोषित हो जाएं और प्रत्येक मान्यता प्राप्त दल के लोकप्रिय मतों की गिनती हो जाए, तो दलों को तद्नुसार सीटें आबंटित की जाती हैं। यह 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट' व्यवस्था में असंतुलन का प्रति संतुलन करने के लिए है। सूचीबद्ध व्यवस्था दो महत्वपूर्ण कार्यों को पूरा करती है।

1. प्रबुद्ध वर्ग का चयन करने में सहायता मिलती है
2. निर्वाचित निकायों की प्रतिनिधि विशेषता छवि में सुधार होता है।

16.14.5 यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि भारतीय जनता पार्टी एवं कांग्रेस (आई) ने कमोवेश 12वीं लोकसभा में लोकप्रिय वोटों की समान संख्या जीती थीं, परन्तु प्रत्येक के द्वारा जीती गई सीटों की संख्या में बहुत बड़ा अंतर था।

16.14.6 सूचीबद्ध व्यवस्था 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट' व्यवस्था के प्रतिस्थानी के रूप में नहीं है अपितु केवल इसमें सुधार के लिए है।

16.14.7 बहुत ही अर्थगर्भित रूप से, आयोग ने सुझाव दिया है कि जब तक कोई उम्मीदवार 50 प्रतिशत से अधिक वोट नहीं जीतता उसे निर्वाचित नहीं माना जाएगा। यदि कोई प्रतियोगी प्रथम बार में ऐसा बहुमत प्राप्त नहीं कर पाता तो विषयांतर निर्वाचन ('रन ऑफ) होता है। इलैक्ट्रॉनिक मतदान मशीनों (इ वी एम्स) के आने से, यह प्रक्रिया ना तो महंगी है ना ही

प्रशासनिक रूप से मुश्किल है। इससे वोट बैंक की राजनीति की प्रथा की समाप्ति एवं दलों को एक साथ आने पर दबाव बनेगा।

16.14.8 इसके अलावा, दसवीं अनुसूची में संशोधन कर राजनैतिक दल की परिभाषा में बदलाव लाकर चुनाव पूर्व मिलना अथवा उन दलों का एक मोर्चा बनाना शामिल किया है, जिसे उन्हें निर्धारित दिवस एक चुनाव आयोग को सूचित करना चाहिए कि उन्होंने मिलकर एक मोर्चा बनाया है।

16.14.9 आयोग ने लोकसभा में, कार्य के आचरण एवं नियमों की प्रक्रिया के नियम 198 में परिवर्तन का सुझाव व्यवस्था की स्थिरता को सुनिश्चित् करने के लिए दिया था। (यह नियम लोकसभा अध्यक्ष द्वारा सदन में राजनैतिक दलों के परामर्श से बनाए जाते हैं)

16.14.10 आरंभ में, यह सुझाव दिया गया कि अविश्वास प्रस्ताव तब तक पारित श्नहीं किया जा सकता जब तक एक वैकल्पिक प्रधान मंत्री भी समर्थित निर्वाचित हो जिससे कि निरंतरता बनी रहे और सदन के बचाव को कोई जोखिम नहीं, यह भरोसा रहे (प्रलक्षित विश्वास मत)

16.14.11 इसी प्रकार, अविश्वास प्रस्ताव के आरंभ होने के बाद, ऐसे अगले प्रस्ताव के लिए 2 वर्षों का अंतर अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए।

16.14.12 स्वतंत्र उम्मीदवारों पर भी प्रतिबंध लगाने की सिफारिश की गई थी क्योंकि इससे भी मतों का विभाजन होता है और यह व्यवस्था को अस्थिर करते हैं। लेकिन इस प्रस्ताव को आलोचना का शिकार होना पड़ा क्योंकि यह व्यक्ति की चुनाव लड़ने के मूल अधिकार पर प्रहार करता है।

16.14.13 लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम में भाग–2ए के रूप में शामिल करने की सिफारिश की गई थी जिससे कि जो दल बाह्य व्यवस्था में लोकतंत्र के लिए लड़ते हैं उनके दलों के भीतर भी लोकतंत्र हो। आयोग ने बाम्मई मामले में (1994) में उच्चतम न्यायालय निर्णय को उद्धृत किया है और वह कहता है कि हमारे संविधान की व्यवस्था का मूल तत्व लोकतांत्रिक जवाबदेही एवं धर्म निरपेक्षता है, तो यह सोचा भी नहीं जा सकता कि जिन दलों के भीतर

लोकतंत्र नहीं है उनका अस्तिव कैसे हो सकता है। इनका सुझाव है कि दल की कार्यकारी समिति निर्वाचित अवश्य होनी चाहिए। उप–समितियां कार्यकारी समिति के सदस्यों द्वारा अवश्य निर्वाचित होनी चाहिएं। चुनाव आयोग को चुनाव के लिए उम्मीदवारों का चयन स्थानीय इकाईयों की सिफारिशों एवं प्रस्तावों के आधार पर करना चाहिए।

16.14.14 अपसरण निरोधी कानून में पैरा 3 एवं 4 को हटाने का सुझाव विभाजनों एवं विलयों को गैर कानूनी करार देने के लिए है। राजनैतिक दलों एवं उनके खातों का कड़े विनियमन का भी सुझाव दिया गया है।

चुनाव एवं अपराधी

एन एन वोहरा समिति ने 80 के दशक के उत्तरार्ध में राजनेताओं एवं अपराधियों के बीच बढ़ते जोड़–तोड़ को शोभनीय बताया था। मध्य प्रदेश सरकार द्वारा नियुक्त सोहानी समिति, जिसकी रिर्पोट अभी हाल ही में जारी की थी उसके द्वारा भी इस बात की पुष्टि हुई थी। चुनाव को 'जीतने की योग्यता' पहलू की सनक, चाहे इसके लिए कोई भी माध्यम अपनाना पड़े, निर्वाचक प्रक्रिया में सुरक्षा की कमी निर्वाचक प्रक्रिया के अपराधीकरण के मुख्य कारण हैं जिससे अपराधियों का विधान मंडलों में प्रवेश बढ़ा है। चुनाव आयोग के अनुसार 12वीं लोकसभा के चुनावों में आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं बिहार में आपराधिक पृष्टभूमि के प्रत्याशियों की संख्या क्रमशः 180, 520 तथा 350 थी।

विधि आयोग के अनुसार किसी उम्मीदवार को अयोग्य ठहराने के लिए सिर्फ आरोप लगाना ही काफी है। आगे उनका कहना है कि चुनाव से संबंधित दंड की प्रकृति अवश्य बढ़ाई जानी चाहिए जो कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम तथा भारती दंड संहिता में उद्धृत अपराधों से संबंधित है।

यदि उम्मीदवचार आपराधिक मामलों में लिप्त होने की बात को कबूलते हैं, यदि कोई हो, तो नामांकन पत्र बदल दिया जाना चाहिए।

विधान सभा परिसरों से अपराधियों को बाहर रखने की जिम्मेदारी प्राथमिक रूप से राजनैतिक दलों की है और उसका निम्नानुसार निर्वन किया जा सकता हैः–

1. अपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को टिकट न देना।
2. यदि उम्मीदवार पर आरोप लगा हुआ है, तो यही बात उसे टिकट न देने के लिए काफी है और उसे दोषी सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। यदि आरोप न्यायिक जांच के बाद लगाए गए हैं और अपराध के कारण उम्मीदवार को निर्वाचक दुष्टि से अयोग्य ठहरा सकता है तो उम्मीदवार के टिकट नहीं दिया जाना चाहिए।

उक्त सिफारिशें जनप्रतिनिधित्व अधिनियम में संशोधन करके लागू हो सकती हैं जोकि आज लागू हैं तो, अभियोग (आरोप पत्र दाखिल न हुआ हो) के मामले में छः वर्षों के लिए उम्मीदवार निम्नलिखित तयीन मामलों के होने पर, अयोग्य हो सकता हैः

अस्प्रश्यता, अतः धार्मिक तनावों को भड़काना, बलात्कार आदि जैसे सामाजिक विषयों से संबंधित अपराध।

1. दहेज, सतीप्रथा आदि जैसे अपराधों के मामले में, यह काफी नहीं है कि उम्मीदवार को दंडित किया गया है, अपितु उसे कम से कम छः महीनों के लिए दंडित किया जाए जिससे कि उसे अयोग्य साबित किया जा सके।
2. किसी भी प्रकार से दो वर्षों के लिए कारावा। चुनाव आयोग ने उम्मीदवार के विरूद्ध कभी आरोप पत्र दाखिल हुआ हो, दंड आदि दिया गया है इसके लिए उम्मीदवार द्वारा दिए जाने वाले ब्यौरों के प्रपत्र को संशोधित किया है जिससे कि जो जमानत पर है तथा अभियोग के विरूद्ध अपील की हुई है, उन्हें चुनाव लड़ने से रोका जा सके।

राजनैतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र

1994 में, मुख्य चुनाव आयुक्त ने आदेश जारी करके सभी राजनैतिक दलों को अपने अपने दलों के संगठनात्मक चुनावों को पूरा करने को कहा था।1997 में, यह आदेश पुनः जारी किए गए थे तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आई), जनता दल एवं अन्य दलों ने इन आदेशों का पालन किया था। चुनाव आयोग का प्राधिकार है कि वे राजनैतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र को लागू करें क्योंकि जन प्रतिनिधित्व अध्यादेश, 1951 की धारा 29(ए) के अन्तर्गत, जो राजनैतिक दल चुनाव आयोग के साथ पंजीकृत हैं उसे अपने बनाए गए संविधान द्वारा चलना होगा क्योंकि वह चुनाव आयोग के साथ जुड़ने से एक कानूनी संस्था बन जाती है। यह न केवल पंजीकृत है अपितु सिंबल आदेश, 1968 के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त है। दल के द्वारा चुनाव आयोग के साथ किया जाने वाला पत्र व्यवहार दल के उन पदाधिकरयिों द्वारा जारी होना चाहिए जिन्हें दल के संविधान के अनुसार चुना जाना है। जहां दल द्वारा कोई संगठनात्मक चुनाव, जैसे कि महाराष्ट्र की शिव सेना नहीं कराए जाते, चुनाव आयोग को दल के भीतर चुनावों की अनियमितताओं की जांच करने की आवश्यकता है, या तो दल को उन्हें निपटाना चाहिए अथवा विवादों के साथ कानूनी अदालत के माध्यम से निपटना चाहिए।

16.15अपसरण–निवारण कानून

16.15.1 अपसरण की राजनीति 1967 से (चौथा आम चुनाव) भारतीय राजनीति का एक सुस्पष्ट लक्षण रहा है। 1985 में, संसद ने 52वें संविधान संशोधन द्वारा इस प्रवृत्ति पर लगाम लगानी चाही यह अधिनियम निषेधात्मक है और विधायक की अयोग्यता के बारे में बताता है। इस अधिनियम के अनुसार किसी विधायक के लिए अयोग्य होने के आधार हैंः

1. यदि कोई विधायक, जिस दल के टिकट पर निर्वाचित हुआ है उस दल से स्वेच्छा से त्याग पत्र दे दे।

2. जिस दल का वह सदस्य है उस दल के अध्यक्ष द्वारा जारी व्हिप के विरोध में मतदान करे अथवा अपने मूल दल द्वारा जारी किसी निर्देश का उल्लंघन करते हुए मतदान करने से बचे, इसके लिए राजनैतिक दल से पूर्व अनुमति भी न ले तथा ऐसे मतदान अथवा अनुपस्थिति को, मतदान की तिथि के 15 दिनों के भीतर उस दल द्वारा उसे क्षमा न किया जाए। उच्चतम न्यायालय ने 1992 में अपने एक निर्णय में व्हिप के प्रयोग को केवल विश्वास मत एवं अविश्वास मतों, धन विधेयकों एवं राष्ट्रपति के अभिभाषण के धन्यवाद प्रस्तावों के मतों तक समिति कर दिया था। यह तात्पर्य है कि विधायक को अन्य मामलों में व्हिप के विरूद्ध मत का अधिकार है क्योंकि, उच्चतम न्यायालय के अनुसार, विधायक को राजनैतिक विसंम्मति का अधिकार है।
3. यदि कोई निर्दलीय सदस्य किसी राजनैतिक दल का सदस्य बनता है।
4. यदि विधान मंडल का नामित सदस्य अपने मनोनयन के छः महीनों के बाद राजनैतिक दल का सदस्य बनता है। इसका तात्पर्य है कि यदि वह इस कार्य को इस निर्दिष्ट अवधि से पूर्व करता है तो वह अयोग्य नहीं ठहराया जाएगा।
5. यदि दल में विभाजन होता है, विछिन्न समूह के सदस्य मूल दल के सदस्यों के एक तिहाई संख्या से कम है।
6. यदि, किसी अन्य दल में विलय होता है, जो दल विलय चाहता है उस दल के दो तिहाई सदस्यों द्वारा इसका अनुमोदन नहीं किया जाता

16.15.2 लेकिन, यदि संघ एवं राज्य विधानमंडलों के अधिकारी लोकसभा अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष, राज्य सभा के उपसभापति, विधानसभा के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष तथा विधान परिषद् के अध्यक्ष, इस अधिनियम के अन्तर्गत अयोग्य नहीं होंगे, यदि वे अपने कार्यालयों के पदों पर कार्य नहीं करते और अपने राजनैतिक दल (दलों) में पुनः वापस आते हैं तो।

16.15.3 इस अधिनियम के अनुसार अपसरण मामले से संबंधित कोई निर्णय, अध्यक्ष अथवा स्पीकर, जैसा भी मामला हो, द्वारा लिए गए निर्णय ही अंतिम होंगे। लेकिन, नवम्बर 1991 में संवैधानिक पीठ द्वारा दिए गए निर्णय में,

उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया था कि ऐसे खंड 'न्यायायिक समीक्षा के विशिष्ट अधिकार को दूर ले जाते हैं जो कि संविधान का 'मूल ढांचा' है। वस्तुतः अध्यक्ष अथवा स्पीकर का निर्णय, जैसा भी मामला हो, अंतिम होगा, बशर्ते न्यायालय के न्यायायिक समीक्षा हुई हो।

16.16 विफलता के कारण

1. नामित सदस्य द्वारा छः महीनों के भीतर राजनैतिक दल का सदस्य बनने का कोई औचित्य नहीं है।
2. कानून इस विषय में स्पष्ट नहीं है कि 1/3 विभाजन के लिए अथवा 2/3 विलय के लिए क्या सिद्धांत होगा। 'अधिनियम में कमियां/बचाव है अतः जो एक बड़े समूह द्वारा नहीं किया जा सकता, विभाजन के बाद किया जा सकता है।
3. कानून द्वारा यह परिभाषित नहीं किया गया कि क्या अपसरण एक बारगी का कार्य है अथवा एक निरन्तर प्रक्रिया।

16.16.1 कानून द्वारा इस विषय में नहीं बताया गया कि जब तक राजनैतिक दल विधान मंडल के अपने कुछ सदस्यों को जान बूझ कर बर्खास्त करते हैं क्योंकि वे दल के विभाजन को रोकते नहीं हैं।

16.16.2 इस पर निर्णय का एकल अधिकार अध्यक्ष के पास है अतः इस मामले पर राजनैतिक रंग चढ़ना संभव है।

16.17.1 <u>आचरण संहिता का मॉडल</u>

उन नैतिक नियमों एवं सिद्धांतों को राजनैतिक दलों द्वारा सहमति के आधार पर अनुपालन के लिए अपनाया जाता है जिन्हें चुनाव समय के दौरान उम्मीदवारों द्वारा अनुपालन करना नहीं होता है। यह नियम चुनाव आयोग द्वारा लागू किए जाते हैं तथा राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल द्वारा चुनाव की अधिसूचना जारी करने के एकदम बाद, सामान्यतः लागू किए जाते हैं। इस आचरण का उल्लंघन करने पर चुनाव आयोग, उम्मीदवार को छः वर्षों के लिए चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य करार कर सकता है।

16.18.1 डाक द्वारा मतदान कर सकने वाले नागरिकों की श्रेणियां

i) सेवारत सिविल सेवक (पदाधिकारी)

ii) दूर दराज के क्षेत्रों में तैनात रक्षा कार्मिक

iii) दूतावास मिशनों के सदस्य एवं उनके परिवारिक सदस्य

iv) निवारक निरोधक कानून के अन्तर्गत रखे गए व्यक्ति

v)चुनाव आयोग द्वारा प्राधिकृत कोई व्यक्ति

16.19.1 निर्वाचक अपराधः संसद के अधिनियमों द्वारा बनाए गए निर्वाचक कानूनों के विरूद्ध किसी व्यक्ति अथवा प्राधिकारी द्वारा किए गए अपराध।

16.20.1 निर्वाचक कदाचारः यह, निर्वाचन आयोग, किसी प्राधिकारी द्वारा, असामाजिक बदमाशों द्वारा अथवा राजनैतिक दल द्वारा निर्धारित आचरण संहिता का उल्लंघन हैं।

16.21.1 अखिल भारतीय दलः कम से कम चार राज्यों मे पिछले आम चुनाव में कुल वैध मतदान के कम से कम 4 प्रतिशत भाग को प्राप्त करने वाले वह राजनैतिक दल को चुनाव आयोग द्वारा अखिल भारतीय दल का ओहदा दिया जाता है।

16.22.1 द्विदल व्यवस्था जब देश में केवल दो ही दल हों उनमें से एक निर्वाचक मत का प्रमुख हिस्सा मिलने से पर्याप्त मजबूती से जीतते हैं तथा राजनैतिक नियंत्रण प्राप्त करते हैं ऐसे देश को द्वि–दल राजनैतिक व्यवस्था वाला देश कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अन्य दलों का अस्तित्व नहीं है, परन्तु वे बिना निर्वाचक प्रभाव वाले होते हैं अतः राष्ट्रीय राजनीति में कोई प्रभावी भूमिका नहीं निभा पाते। यह व्यवस्था बंगलादेश एवं श्रीलंका में सुचारू रूप से कार्य कर रही है।

16.23.1 चुनाव अधिकारी एवं पीठासीन अधिकारीः चुनावा अधिकारी समूचे निर्वाचन क्षेत्र का, नामांकन से लेकर चुनाव परिणामों की घोषणा होने तक, का प्रभारी अधिकारी होता है। सामान्यतः जिला मजिस्ट्रेट को चुनाव अधिकारी

नियुक्त किया जाता है। दूसरी ओर, पीठासीन अधिकारी चुनाव अधिकारी के नियंत्रण मं मतदान केन्द्रों एवं अन्य संबंधित कार्यों का शीर्षाधिकारी होता है।

16.24.1 <u>प्रत्यादेश देना एवं पुनः मतदान कराना:</u> प्रत्यादेश देने से तात्पर्य है पूरे मतदान को नए सिरे से कराना जबकि पुनः मतदान से तात्पर्य है, कतिपय निश्चित् मतदान केन्द्रों पर मतदान दोबारा से कराना।

17. संकटकालीन प्रावधन

आपतकालीन प्रावधान

17.1.1 भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताओं में से एक संघ कार्यपालिका में, पर्याप्त संकटकालीन शक्तियों का समावेश करना। चूंकि फैडरल सरकार में शक्तियों का विभाजन होता है, अतः इसे एक कमजोर सरकार माना जाता है। आकस्मिक परिस्थितियों के खतरों से बचने के लिए, संविधान ने केन्द्र पर संकट कालीन शक्तियां संकेन्द्रित की हैं। राष्ट्रपति को तीन प्रकार की संकट कालीन स्थितियां घोषित करने की शक्तियां दी गई हैंः

1) युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह द्वारा भारत की सुरक्षा को खतरे के आधार पर (अनु0 352)
2) राज्य में संवैधानिक मशीनरी के विफल होने के आधार पर (अनु0 356), तथा
3) वित्तीय संकट (अनु0 360)

17.1.2 संविधान द्वारा प्रयुक्त संकटकाल की घोषणा'' अनु0 352 के अन्तर्गत राष्ट्रीय संकटकाल अथवा प्रथम किस्म का संकटकाल कहा गया है। दूसरे प्रकार का संकटकाल अनु0 356 के अन्तर्गत आता है जिसे ''राष्ट्रपति शासन'' नाम से लोकप्रियता प्राप्त है। तीसरे प्रकार के संकट काल की घोषणा अनु0 360 के अन्तर्गत ''वित्तीय संकटकाल'' कही जाती है।

17.2 राष्ट्रीय आपातकला (अनु0 352)

17.2.1 यदि राष्ट्रपति इस बात से सहमत हैं कि बहुत ही कठिन आपातकाल है जिससे भारत अथवा भारत के किसी भाग की सुरक्षा खतरे में है, चाहे युद्ध है अथवा बाह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह है, वह समग्र भारत अथवा उसके किसी हिस्से के लिए जहां उक्त समस्या उत्पन्न हुई हो, आपातकाल की स्थिति की घोषणा कर सकते हैं। यहां तक कि आपातकाल की उद्घोषणा, राष्ट्रपति द्वारा, युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र

विद्रोह के वास्तविक रूप में घटित होने से पूर्व, यदि वह यह मानते हैं कि खतरा टल नहीं सकता, तो भी वह कर सकते हैं। बाद में, राष्ट्रपति द्वारा इस प्रकार के आपातकाल की घोषणा को वापिस लिया अथवा परिवर्तित किया जा सकता है। राष्ट्रपति आपातकाल की उद्घोषणा अथवा परिवर्तन केवल तभी कर सकते हैं जब केन्द्रीय मंत्रीमंडल का निर्णय लिखित रूप में उन्हें प्राप्त होता है। राष्ट्रपति द्वारा आपात्काल की उद्घोषणा अनु0 352 के अन्तर्गत की जाती है बशर्ते इसकी न्यायिक समीक्षा कराई जा सकती है तथा इसकी संवैधानिकता को विधिक न्यायालय में इसके असद् भावना के आधार पर चुनौती दी जा सकती हैं/जांच कराई जा सकती है।

17.2.2 अनु0 352 के अन्तर्गत की गई प्रत्येक उद्घोषणा, सिवाय पिछली उद्घोषणा को वापस लेने के, संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखी जानी चाहिए एवं उद्घोषणा करने के बाद एक माह के भीतर, उसे अनुमोदित अवश्य कराना चाहिए जिसके लिए उस सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत एवं उस सदन के दो तिहाई सदस्यों से अधिक बहुमत द्वारा, उपस्थिति एवं उनके द्वारा मतदान हुआ होना चाहिए। यदि संसद ऐसी उद्घोषणा का अनुमोदन करने में असफल रहती है तो इस उद्घोषणा को, एक माह के बाद समाप्त माना जाएगा। यदि संसद में इसका अनुमोदन हो जाता है तो यह, संसद द्वारा अनुमोदित होने की तिथ से छः महीनों के लिए लागू रहेगा, जबतक कि इसे पहले ही वापस न ले लिया जाए। संसद द्वारा इसका अनुमोदन चाहे जितनी बार किया जा सकता है परन्तु एक समय में छः महीनों से अधिक नहीं। लेकिन यदि लोकसभा आपातकाल की उद्घोषणा अथवा इसे जारी रखने का अनुमोदन नहीं करती तो राष्ट्रपति आपातकाल की उद्घोषणा को रद्द करेंगें। यदि लोकसभा का सत्र नहीं चल रहा, तो लोकसभा के सदस्यों का एक हिस्सा जो 1/10 हिस्से से कम नहीं होना चाहिए, राष्ट्रपति को आपातकाल की उद्घोषणा का अनुमोदन न करने की मंशा से और यदि लोकसभाा का सत्र जारी है तो लोकसभा अध्यक्ष को, लोकसभा की एक विशेष बैठक बुलाने

का नोटिस दे सकते हैं जो कि ऐसे संकल्प पर विचार करने के लिए चौदह दिनों के भीतर आयोजित की जाएगी।

17.2.3 अनु0 352 में 1978 में संवैधानिक संशोधन (14वां) संशोधन अधिनियम) में कई बचावकारी उपाय बताए गए, वे हैंः–

i) 44वें संशोधन अधिनियम 1978 से पूर्व, आपतकाल की उद्घोषणा युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक अशांति के आधारों पर जारी की जा सकती थी। ''आंतरिक अशांति'' वाक्यांश अभिव्यक्ति अस्पष्ट है और कार्यपालिका द्वारा इसका दुरूपयोग किया जा सकता है। अतः अधिनियम में ''आंतरिक अशांति'' के स्थान पर ''सशस्त्र विद्रोह'' वाक्यांश अभिव्यक्ति को रखा गया।

ii) पहले राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की मौखिक सलाह पर आपातकाल की उद्घोषणा कर सकते थे, जैसा कि 1975 में हुआ। अब समूचे मंत्रिमंडल का अनुमोदन आवश्यक है तथा इसे राष्ट्रपति के समक्ष लिखि रूप में भिजवाना चाहिए।

iii) 1978 में अधिनियम के लागू होने से पूर्व, राष्ट्रपति द्वारा जारी उद्घोषणा का संसद द्वारा अनुमोदन, उद्घोषणा होने के दो महीनों के भीतर अनुमोदित कराना होता था। अब, इसे एक माह के भीतर अवश्य अनुमोदित करा लेना चाहिए। पहले, एक बार अनुमोदित होने पर, यह अनिश्चित कालीन अविध के लिए लागू रहता था परन्तु अधिनियम लागू होने के बाद, इसकी अवधि केवल छः महीनों के लिए निर्धारित की गई है। पहले इसका अनुमोदन केवल साधारण बहुमत के आधार पर होता था, परन्तु अब इसके लिए विशेष प्रकार के बहुमत की आवश्यकता है।

iv) एक बार आपातकाल की उद्घोषणा का अनुमोदन संसद द्वारा हो जाता था तो, बाद में कोई संसदीय नियंत्रण नहीं रहता था। परन्तु अब उसकी असहमति पर विचार करने के उद्देश्य से लोकसभा की विशेष बैठक बुलाई जा सकती है।

v) अनु0 358 के अन्तर्गत, 44वें संशोधन अधिनियम के लागू होने से पूर्व चाहे राष्ट्रीय आपातकाल की उद्घोषणा, बाह्य आक्रमण, युद्ध अथवा आंतरिक अशांति के आधार पर की गई हो, अनु0 19 के अन्तर्गत, परिगणित मूलभूत अधिकर स्वतः ही स्थगित हो जाते थे। परन्तु अब, अनु0 358 के अन्तर्गत, अनु0 19 स्वतः केवल तभी स्थगित होगा जब आपातकाल की उद्घोषणा युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण के आधार पर घोषित हुआ न कि सशस्त्र विद्रोह के आधार पर, अर्थात् अनु0 19 तब स्वतः स्थगित नहीं होगा यदि आपातकाल की उद्घोषणा सशस्त्र विद्रोह के आधार पर हुई होगी।

अप) 44वें संशोधन अधिनियम के बाद, आपातकाल के दौरान अनु0 20 एवं 21 स्थगित नहीं किए जा सकते। अधिनियम से पूर्व कोई अथवा सभी मूलभूत अधिकार स्थगित किए जा सकते थे, यदि आपातकाल लागू हुआ हो तो।

17.3 <u>आपातकाल की उद्घोषणा के प्रभाव</u>

17.3.1 आपातकाल की उद्घोषणा का प्रभाव है कि समग्रतः केन्द्रीकृत सरकार का प्रादुर्भाव हो गया है। इसके प्रभाव निम्नलिखित शीर्षों के अन्तर्गत अध्ययन किए जा सकत हैं (1) कार्यपालिका (2)विधानसभा (3) वित्तीय एवं (4) मूलभूत अधिकार।

1. <u>कार्यपालिका</u>ः जब आपातकाल की उद्घोषणा परिचालन में हो, तब राष्ट्रपति को राज्यों को निर्देश देने की शक्तियों प्राप्त हैं कि वे किस प्रकार अपनी कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग करेंगे। सामान्य परिस्थिति में, राष्ट्रपति को राज्यों को केवल कुछ मामलों में निर्देश देने की शक्ति है जैसे कि संचार प्रणाली का रख रखाव, रेलवे आदि का संरक्षण। परन्तु आपातकाल के दौरान वह राज्यों को सभी मामलों में निर्देश जारी कर सकते हैं। अतः प्रशासन केन्द्रीकृत व्यवस्था में बदल जाएगा
2. <u>विधानसभा</u>ः जब आपातकाल की उद्घोषणा का परिचालन होगा, संसद, राज्यसूची के अन्तर्गत परिगणित विषयों पर भी कानून बना सकती है। राज्य

की विधानपरिषदें स्थगित नहीं होती अपितु आपातकाल के दौरान संघ एवं राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का विभाजन स्थगित हो जाता है। संसद को भी कानून द्वारा लोकसभा की अवधि को पांच वर्ष की अविध से आगे बढ़ाने की शक्तियां प्राप्त हो जाती है परन्तु एक समय में एक वर्ष से अधिक नहीं परन्तु किसी भी मामले में, आपातकाल की उद्घोषणा के समाप्त होने के बाद एक भी महीना आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। राज्य विधान परिषदों की कार्यकाल अवधि को भी कानून के अन्तर्गत, संसद द्वारा इसी प्रकार से आगे बढ़ाया जा सकता है।

3. वित्तीयः राष्ट्रपति, आपातकाल अवधि के दौरान, केन्द्र एवं राज्यों के बीच वित्तीय स्रोतों के विभाजन से संबंधित संविधान के प्रावधानों को आशोधित कर सकते हैं। राष्ट्रपति के इस प्रकार के आदेश का प्रभाव आपतकाल की उद्घोषणा के परिचालन की समाप्ति के बाद उस वित्तीय वर्ष से आगे कोई प्रभाव नहीं रहेगा। राष्ट्रपति के आदेश संसद के अनुमोदन की शर्त पर जारी होंगे।

4. मूलभूत अधिकारः अनु0 358 में कहा गया है कि जैसे ही युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण (परन्तु सशस्त्र विद्रोह के आधार पर नहीं) के आधार पर आपातकालीन उद्घोषणा की जाती है, अनु0 19 के अन्तर्गत परिगणित छः मूलभूत अधिकार स्वतः स्थगित हो जाते हैं। राज्य अनु0 19 द्वारा लगाई गई सीमाओं से मुक्त हैं।, नागरिक अनु0 19 के अन्तर्गत परिगणित मूलभूत अधिकारों के प्रवर्तन के लिए न्यायालय में नहीं जा सकते।

17.3.2 आगे, अनु0 359 के अन्तर्गत राष्ट्रपति युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह के आधार पर आपातकाल की उद्घोषणा होने पर किसी अन्य मूलभूत अधिकारों के परिचालन को स्थगित कर सकते हैं। लेकिन, जब राष्ट्रीय आपातकाल चाहे प्रवर्तित भी हो अनु0 20 एवं 21 के अन्तर्गत गारंटी वाले मूलभूत अधिकारों को स्थगित नहीं किया जा सकता। यहां यह ध्यान रखा जाए कि अनु0 359 के अन्तर्गत केवल मूलभूत अधिकारों का परिचालन

ही स्थगति होता है न कि मूलभूत अधिकार ही। परन्तु अनु0 358 के अन्तर्गत, अनु0 19 ही स्थगित होता है।

17.4 अनु0 356 के अन्तर्गत आपातकाल

अनुच्छेद 356 के अनुसार, यदि राज्य के राज्यपाल अथवा अन्य ढंग से रिर्पोट की प्राप्ति पर राष्ट्रपति इस तथ्य से संतुष्ट होते हैं कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि राज्य की सरकार, संविधान के प्रावधानों के अनुसार कार्य नहीं कर सकती, तो वे उद्घोषणा कर सकते हैं। उस उद्घोषणा के द्वाराः

(1) राष्ट्रपति स्वयं के पास अथवा राज्यपाल के पास सारी अथवा कुछ शक्तियां अभिगृहीत मान सकते हैं।

(2) राष्ट्रपति घोषणा कर सकते हैं कि राज्य की विधान परिषद् की शक्तियॉ संसद द्वारा प्रयोग की जाएंगी।

17.4.2 लेकिन, राष्ट्रपति उच्च न्यायालय में निहित शक्तियों में से किसी को अपने पास अभिगृहीत नहीं मान सकते।

17.4.3 संसद, राज्य के लिए कानून बनाने की शक्ति राष्ट्रपति को दे सकती है। संसद, राष्ट्रपति को उनके द्वारा निर्दिष्ट किसी अन्य प्राधिकारी को ऐसी, शक्ति प्रत्यायोजित करने के लिए प्राधिकृत कर सकती है यदि लोकसभा का सत्र नहीं चल रहा, तो राष्ट्रपति संसद को, राज्य की समेकित निधि से ऐसे व्यय के लिए लंबित पड़ी संस्वीकृति के लिए प्राधिकृत कर सकती है।

बिहार का अनुभव

अक्तूबर, 1998 में, भारत के राष्ट्रपति ने बिहार में राष्ट्रपति शासन लागू करने की केन्द्रीय मंत्रिमंडल की सिफारिश को पुर्नविचार करने के लिए लौटा दिया था। राष्ट्रपति द्वारा उठाए गए बिन्दु उल्लेखनीय हैं:–

1. यह आरोप, कि राज्य की संवैधानिक शासन व्यवस्था असफल हो रही थी, तार्किक आधार पर साबित नहीं हो पाई थी।
2. उस सिफारिश से पहले, चेतावनियां, निर्देश एवं स्पष्टीकरणों के निष्कर्ष आने चाहिए थे, पर वे नहीं आए।
3. राबड़ी देवी मंत्रिमडल का विधान सभा में बहुमत था, उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता था।

राष्ट्रपति ने आगे यह भी उद्धृत किया कि संसदीय मार्गाधिकार अपने आप में ही संदेहास्पद था क्योंकि मिली–जुली सरकार के भीतर ही मतभेद थे और राज्यसभा में उसका बहुमत नहीं था।

वस्तुतः हाल के वर्षों में, अनु0 356 का परीक्षण निम्न से उभर कर हुआ है:

1. उच्चतम न्यायालय
2. राष्ट्रपति
3. सरकार के मिले–जुले भागीदार
4. राष्ट्रीय राजनैतिक परिदृश्य में क्षेत्रीय दलों के बढ़ते वर्चस्व के कारण सरकार का संवेदनशील होना।
5. अंतःराज्य परिषद् प्रतिमानक एवं अन्य ऐसे ही कारण

17.4.4 यह ध्यान दिया जाए कि अनु0 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति, राज्यपाल की रिर्पोट पर अथवा अन्यथा निर्णय करते हैं। अब राष्ट्रपति, राज्यपाल की रिर्पोट के बिना भी निर्णय करते हैं।

17.4.5 अनु0 356 के अन्तर्गत जारी उद्घोषणा को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष अवश्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यह दो माह की अवधि

समाप्ति पर परिचालन से बंद जो जाएगी, यदि उस अवधि से पूर्व इसे संसद के दोनों सदनों द्वारा इसे अनुमोदित नहीं किया गया होगा। संसद द्वारा इसे और आगे छः महीनों की अविध के लिए अनुमोदित किया जा सकता है। इस प्रकार से अनुमोदित की गई उद्घोषणा, जब तक रद्द न हो, उद्घोषणा की जारी तिथि से छः महीनों के लिए परिचालन में रहेगी। संसद द्वारा इसे और आगे छः महीनों के लिए अनुमोदित किया जा सकता है। इसलिए, अनु0 356 के अन्तर्गत जारी आपातकाल उद्घोषणा, एक साथ सामान्यतः केवल एक वर्ष की अधिकतम अवधि के लिए, लागू रहेगी। यद्यपि संसद द्वारा इसे एक वर्ष से अधिक आगे बढ़ाया जा सकता है परन्तु किसी भी सूरत में उद्घोषणा के जारी करने की अवधि से तीन वर्षों से अधिक नहीं, यदिः

प) आपातकाल की उद्घोषणा अनु0 352 के अन्तर्गत समग्र भारत में अथवा किसी पूरे राज्य अथवा उसे किसी भाग में ऐसे संकल्प को पारित करने के समय परिचालन में हो, और

पप) चुनाव आयोग यह प्रमाणित करता है कि एक वर्ष की अवधि से अधिक आपातकाल उद्घोषणा को लागू रखना आवश्यक है क्योंकि संबंधित राज्य की राज्य विधानसभा के आम चुनाव कराने में कठिनाईयां हैं।

17.5 <u>अनु0 356 के संदर्भ में 42वां एवं 44वां संशोधन अधिनियम</u>

17.5.1 42वें संशोधन अधिनियम द्वारा अनु0 356 संशोधित किया गया तथा एक बार में एक वर्ष के लिए संसद का अनुमोदन अनुमत किया गया। परन्तु 44वें संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा एक बार में , संसद द्वारा छः महीनों के लिए अनुमोदन की मूल अविध पुनः बहाल की गई। मूल संविधान में अनु0 356 के अन्तर्गत आपातकाल उद्घोषणा की एक वर्ष से अधिक अवधि बढ़ाने के विषय में कोई शर्त लागू नहीं की गई थी। इससे पूर्व इसे संसद द्वारा अधिकतम तीन वर्षों की अवधि के लिए बढ़ाया जा सकता था, बशर्ते एक बार में छः महीनों के अनुमोदन से अधिक नहीं। परन्तु 44वें संशोधन अधिनियम से

एक वर्ष की अवधि से आगे उद्घोषणा के अनुपालन को जारी रखने के लिए दो शर्तें अधिरोपित की गई थीं, जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है।

17.6 अनु0 356 एवं न्यायायिक समीक्षा

17.6.1 एक ऐतिहासिक निर्णय में, उच्चतम न्यायालय ने मार्च, 1994 में निर्णय दिया कि राष्ट्रपति की, राज्य में आपातकाल की उद्घोषणा जारी करने की शक्ति की न्यायायिक समीक्षा की जा सकती है, जिसका आधार (i) यह जांचना कि क्या यह समग्रतः किसी प्रासंगिक महत्वपूर्ण आधार पर जारी की गई थी अथवा (ii) क्या उसका महत्व प्रासंगिक था अथवा (iii) क्या उद्घोषणा शक्ति का दुर्भावना पूर्ण प्रयोग था।

17.6.2 न्यायालय द्वारा एक अन्य महत्वपूर्ण सिद्धांत बनाया गया कि राष्ट्रपति द्वारा राज्य विधान सभा केवल तभी भंग की जा सकती है जब उद्घोषणा का अनुमोदन संसद के दोनों सदनों द्वारा अनुमोदित हो।

17.7.1 अनु0 352 तथा 356 के बीच अंतर

अनु0 352 के अन्तर्गत, राज्य की मशीनरी को निलंबित नहीं किया जा सकता। राज्य विधान सभा एवं राज्य कार्यपालिका कार्य करना जारी रखेगी। केवल उसका असर यह होगा कि केन्द्र को विधान सभा की समावर्ती शक्तियों तथा राज्य मामलों के प्रशासन की शक्तियां प्राप्त हो जाएंगी। अनु0 352 के अन्तर्गत, केन्द्र के साथ सभी राज्यों के संबंध परिवर्तित हो जाते हैं जबकि अनु0 356 के अन्तर्गत केन्द्र के साथ राज्य का संबंध ही प्रभावित होता है।

17.8 वित्तीय आपातकाल

17.8.1 अनु0 360 के अनुसार, यदि राष्ट्रपति इस बात से संतुष्ट होते हैं कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिससे कि वित्तीय स्थिरता अथवा भारत की अथवा उसके किसी हिस्से की साख, खतरे में है तो वह वित्तीय आपातकाल की स्थिति की घोषणा कर सकते हैं। उस अवधि के दौरान जब आपातकाल की उद्घोषणा कर दी गई है और परिचालन में है, केन्द्र की कार्यकारी शक्तियां बढ़ जाती है और वह किसी राज्य को, निर्देशों में निर्दिष्ट

किए गए अनुसार वित्तीय औचित्य के लिए ऐसे कानूनों को जांच सकता है। ऐसे निदेश में यह भी शामिल है (i) केन्द्र अथवा राज्य में सेवारत व्यक्ति की सभी अथवा किसी श्रेणी के वेतन एवं भत्तों में वांछित कटौती के प्रावधान (ii) राज्य की विधानसभा द्वारा पारित होने के बाद सभी धन विधेयकों अथवा अन्य वित्तीय विधेयकों को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के लिए वांछित प्रावधान।

17.8.2 अनु0 360 के अंतर्गत जारी कोई उद्घोषणा, दो माह के लिए लागू रहेगी, जब तक कि अवधि समाप्ति के पूर्व संसद के दोनों सदनों द्वारा अवधि अनुमादित नहीं हो जाती। एक बार अनुमादित हो जाने के बाद यह तब तक लागू रहेगी जब तक राष्ट्रपति द्वारा रद्द न की जाए। अनु0 360 के अन्तर्गत कोई आपातकाल अब तक घोषित नहीं हुआ है।

00000000